महाकवि कालिदास

कृत

रघुवंश

2

प्रियबन्धुवर डाक्टर सत्यव्रत
और उषाजी को
शास्त्री दम्पति की
ओर से सस्नेह.

उज्जयिनी
कालिदास समारोह

अनन्तलाल शास्त्री
३.११.६२

महाकवि कालिदास

कृत

रघुवंश

कालिदास समारोह समिति के लिये सूचना तथा प्रकाशन,
मध्यप्रदेश, द्वारा प्रकाशित

[मूल्य : ६ रु.]

प्रकाशन के सम्बन्ध में

कालिदास समारोह समिति ने यह निश्चय किया था कि कालिदास की महान् रचनाओं का सरल भाषा में अनुवाद कर उन्हें जन-जन तक पहुंचाया जाय। गत वर्ष कालिदास समारोह के अवसर पर 'भारत सुषमा' के नाम से एक प्रकाशन निकाला गया था जिसमें मेघदूत तथा कालिदास द्वारा भारत वर्णन के रूप में विद्यमान श्लोकों का संग्रह सरस एवं सुबोध हिन्दी अनुवाद के साथ दिया गया था। कालिदास की रचनाओं के प्रति प्रेम रखने वाली सहृदय जनता तथा विद्वानों ने इसे पसन्द किया।

इस वर्ष समारोह के अवसर पर कालिदास की श्रेष्ठ रचना 'रघुवंश को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। यह अनुवाद सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय के विषेश कर्त्तव्यस्थ अधिकारी, श्री अनन्त मराल शास्त्री, एम. ए., एम. ओ. एल., ने किया है। कालिदास के सर्वश्रेष्ठ स्मारक उनके ग्रन्थ ही हैं। उनके पठन-पाठन की दिशा में इस प्रकाशन से निश्चय ही सहायता मिलेगी। आशा है इससे एक ऐसी कमी की पूर्त्ति होगी जिसे हम सभी देर से अनुभव करते आये हैं।

कैलासनाथ काटजू,
अध्यक्ष, कालिदास समारोह समिति

प्रथमः सर्गः

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।१।।

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।।२।।

मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ।।३।।

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ।।४।।

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।।५।।

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथाऽपराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ।।६।।

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ।।७।।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।८।।

पहला सर्ग

१. वाणी और अर्थ के सही ज्ञान के लिये मैं जगत् के माता-पिता पार्वती और शिव की वन्दना करता हूं, जो वाणी और अर्थ के समान एक दूसरे से निरन्तर मिले हुए हैं।

२. कहां वह सूर्य का वंश और कहां यह मेरी सीमित गति वाली बुद्धि मोह में पड़कर मैं कठिनाई से पार किये जान वाले समुद्र को छोटी सी नाव से पार करना चाहता हूं।

३. कवि कहलाने की चाह में मुझ मतिमन्द की उसी प्रकार हंसी होगी जिस प्रकार लम्बे मनुष्य की पहुंच वाले फल को पाने के लिये, अपनी बाहों को लोभवश ऊपर उठाने वाल बौने की होती है।

४. अथवा पहले के कवियों ने अपनी वाणी से इस वंश का वर्णन करके जो द्वार बनाया है उसमें मैं उसी प्रकार प्रवेश करूंगा जिस प्रकार हीरे की सुई से विंधे मणि में सूत प्रवेश करता है।

५-६-७-८-९. इस प्रकार मैं वाणी की थोड़ी सी सामर्थ्य होते हुए भी उनके गुणों को सुनकर चपल हो उठा हूं और जीवन पर्यन्त संस्कारों से शुद्ध रहने वाले फल की प्राप्ति तक निरन्तर कर्म करने वाले, समुद्र पर्यन्त भूमि पर राज्य करने वाले, स्वर्ग तक अपने रथ को ले जाने वाले, विधिपूर्वक यज्ञ करने वाले, इच्छा के अनुसार याचकों का सत्कार करने वाले, अपराध को देखते हुए दण्ड देने वाले, समय के अनुसार जागरूक होकर काम करने वाले, त्याग के लिये धन का संग्रह करने वाले, सत्य के लिये मर्यादा में रहकर बात करने वाले, सन्तान के लिये

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ।।९।।

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा ।।१०।।

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ।।११।।

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः ।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव ।।१२।।

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः ।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः ।।१३।।

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना ।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना ।।१४।।

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः ।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः ।।१५।।

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम् ।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः ।।१६।।

गृहस्थ-धर्म का पालन करने वाले, बाल्यावस्था में विद्या पढ़ने वाले, युवावस्था में विषय सुख की इच्छा रखने वाले, बुढ़ापे में मुनियों का जीवन बिताने वाले और अन्त में योग द्वारा शरीर का त्याग करने वाले राघवों के वंश का वर्णन कर रहा हूं।

१०. गुण और दोष बताने की क्षमता वाले सज्जन उसे सुनें क्योंकि सोने की शुद्धता या कलुषता आग में पड़कर ही दिखाई देती है।

११. विद्वानों में पूजनीय सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु वेदों में ओंकार के समान राजाओं में पहले राजा थे।

१२. उस पवित्र कुल में और भी पवित्र, राजाओं में चन्द्रमा के समान राजा दिलीप उत्पन्न हुए मानों क्षीर समुद्र से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई हो।

१३. उनका वक्षस्थल चौड़ा, कन्धे बैल के समान और विशाल भुजायें शाल वृक्ष के समान लम्बी थीं। ऐसा जान पड़ता था मानों क्षात्र-धर्म ने अपने कर्म की क्षमता रखने वाले शरीर को देख उसे अपना आश्रय बना लिया हो।

१४. सभी प्राणियों से अधिक बली होने, अपने तेज से सबको अभिभूत करने तथा स्वयं सबसे बड़े होने के कारण वे पृथ्वी को दबा कर बैठे हुए मेरु पर्वत जैसे जान पड़ते थे।

१५ उनकी आकृति के समान ही उनकी व्यापक बुद्धि थी, बुद्धि के समान ही उनका शास्त्र-ज्ञान था, शास्त्र-ज्ञान के अनुरूप ही उनका कर्म था और कर्म के अनुसार ही उनकी सिद्धि थी।

१६. भय तथा आकर्षण उत्पन्न करने वाले अपने राजोचित गुणों के कारण अपने आश्रितों के लिये वे जलचर जीवों तथा रत्नों से युक्त समुद्र की भांति अगम्य भी थे और भलीभांति गम्य भी।

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम् ।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः ।।१७।।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ।।१८।।

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम् ।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता ।।१९।।

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च ।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव ।।२०।।

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः ।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत् ।।२१।।

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः ।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव ।।२२।।

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः ।
तस्य धर्मरतेरासीद्वृद्धत्वं जरसा विना ।।२३।।

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ।।२४।।

१७. नियम में रहने वाले अपने राजा के रथ की लीक पर चलने में अभ्यस्त उनकी प्रजा मनु के समय से चले आ रहे मार्ग से रेखा मात्र भी अलग नहीं हुई।

१८. प्रजा की समृद्धि के लिये ही वे उनसे कर लेते थे जैसे हजार गुना करके बरसाने के लिये ही सूर्य पानी ग्रहण करता है।

१९. अपनी सेना से विभूषित उस राजा के लिये अपने उद्देश्य की सिद्धि के दो ही साधन थे, एक शास्त्रों में अप्रतिहत बुद्धि और दूसरा धनुष पर चढ़ी हुई डोरी।

२०. अपने विचारों को गुप्त रखने वाले तथा अपनी आकृति और चेष्टा आदि को व्यक्त न होने देने वाले उस राजा के कार्यों का अनुमान पूर्व के संस्कारों के समान ही फल को देखकर किया जा सकता था।

२१. निर्भय होकर उन्होंने अपने शरीर की रक्षा की, नीरोग रहकर धर्म का आचरण किया, निर्लोभ रहकर धन ग्रहण किया और अनासक्त होकर सुख का अनुभव किया।

२२. ज्ञान होने पर भी मौन रहना, शक्ति होते हुए भी क्षमा करना, त्याग करके उसके सम्बन्ध में कुछ न कहना, ये उनके ऐसे गुण थे जो आपस में जुड़े होने के कारण एक दूसरे के सहोदर बन गये।

२३. विषयों के प्रति झुकाव न रखने, विद्याओं में पारंगत होने तथा धर्म में निरत रहने के कारण वे बूढ़े न होने पर भी बड़े-बूढ़ों के समान थे।

२४. प्रजाजनों को सन्मार्ग पर चलाने, उनकी रक्षा करने और उनका पोषण करने के कारण वे ही उनके पिता थे; उनके पिता तो केवल जन्म देने वाले थे।

स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्परणेतुः प्रसूतये ।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः ।।२५।।

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् ।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ।।२६।।

न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः ।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता ।।२७।।

द्वेष्योऽपि संमतः शिष्टस्तस्यार्त्तस्य यथौषधम् ।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता ।।२८।।

तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना ।
तथा हि सर्वे तस्यासन्परार्थैकफला गुणाः ।।२९।।

स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम् ।
अनन्यशासनामुर्वीं शशासैकपुरीमिव ।।३०।।

तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा ।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा ।।३१।।

कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि ।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाऽधिपः ।।३२।।

२५. दण्ड के भागी लोगों को लोक की मर्यादा रखने के लिये दंडित करने वाले तथा सन्तान के लिय ही विवाह करने वाले उन मनीषी राजा के लिये अर्थ और काम भी धर्म ही थे।

२६ उस राजा ने यज्ञ के लिये पृथ्वी का दोहन किया और इन्द्र ने सस्य के लिये द्युलोक का। इस प्रकार अपनी अपनी सम्पदा का विनिमय करके उन दोनों ने दोनों भुवनों का पोषण किया।

२७. दूसरे राजाओं ने भय आदि से रक्षा करने वाले राजा दिलीप क यश का अनुगमन नहीं किया क्योंकि दूसरे की सम्पत्ति से सम्बन्ध न रहने के कारण चोरी केवल कानों स सुनने की बात रह गई थी।

२८. सज्जन विरोधी होने पर भी रोगी की दवा के समान उनके लिये ग्रहणीय था पर दुष्ट प्रिय होने पर भी सांप द्वारा काटी गई उंगली के समान त्याग देने योग्य।

२९. ब्रह्मा ने राजा दिलीप को निश्चय ही महाभूतों को मिला कर बनाया था क्योंकि उनक सारे गुण दूसरों को लाभ पहुंचाने वाले ही थे।

३०. उन्होंने समुद्रतट रूपी परकोटे वाली तथा समुद्र रूपी खाई से घिरी हुई पृथ्वी पर जिसमें कहीं भी दूसरे का शासन नहीं था इस प्रकार शासन किया मानों वह कोई नगरी हो।

३१. यज्ञ के लिये दक्षिणा के समान मगध वंश में उत्पन्न और परम्परा से उदारता के लिये प्रसिद्ध नामवाली सुदक्षिणा उनकी पत्नी थी।

३२. बड़े रनिवास के होते हुए भी समृद्ध पृथ्वी के अधिपति राजा दिलीप ने अपनी मनस्विनी पत्नी और राजलक्ष्मी से ही अपने आपको पत्नी वाला समझा।

तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः ।
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः ।।३३।।

संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता ।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ।। ३४।।

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया ।
तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम् ।।३५।।

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ ।
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव ।।३६।।

मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव ।।३७।।

सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः ।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः ।।३८।।

मनोऽभिरामाः श‍ृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः ।।३९।।

परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु ।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु ।।४०।।

३३. अपनी उस मनोनुकूल पत्नी में अपने पुत्र रूप में स्वयं जन्म लेने के लिये उत्सुक होकर उन्होंने देर में सफल होने वाले अपने मनोरथ को लिये हुए अपना समय बिताया।

३४. सन्तान के लिये अनुष्ठान करने के उद्देश्य से उन्होंने पृथ्वी के भारी भार को अपनी भुजाओं से उतार कर अपने मन्त्रियों पर रख दिया।

३५. इसके अनन्तर पुत्र की अभिलाषा से ब्रह्मा की पूजा करके उन दोनों ने गुरु वसिष्ठ के आश्रम के लिये प्रस्थान किया।

३६. मधुर और गंभीर शब्द करने वाले एक ही रथ में बैठे हुए वे ऐसे लग रहे थे मानों बरसात के बादल में बिजली और ऐरावत बैठे हों।

३७. आश्रम के लोगों को कष्ट न हो इस उद्देश्य से थोड़े से सेवकों के साथ होते हुए भी वे दोनों अपने तेज से ही ऐसे लगते थे मानों उनके चारों ओर सेना उपस्थित हो।

३८. वे शाल वृक्ष से निकलने वाली सुगन्ध से युक्त वन की पंक्तियों को झुमाने वाली, फूलों के पराग को बिखेरने वाली तथा स्पर्श से आनन्दित करने-वाली हवा का आनन्द लेते जा रहे थे।

३९. वे रथ के पहियों के बाहरी घेरे से उठे शब्द को सुनकर ऊपर मुंह उठाये हुए मयूरों द्वारा दोनों प्रकार के षड्ज स्वरों में बोली गई मनोहर बोली को सुनते जा रहे थे।

४०, वे मार्ग से हटकर और पास खड़े होकर रथ पर अपनी दृष्टि गड़ाये हुए मृगों के जोड़ों में एक दूसरे की आंखों की समानता देखते जाते थे।

श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम् ।
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ ॥४१॥

पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंसिनः ।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ ॥४२॥

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम् ।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम् ॥४३॥

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिन्हेषु यज्वनाम् ।
अमोघाः प्रतिगृह्णन्तावर्घ्यानुपदमाशिषः ॥४४॥

हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान् ।
नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम् ॥४५॥

काऽप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः ।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥४६॥

तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः ।
अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः ॥४७॥

स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः ।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः ॥४८॥

४१. पंक्तिबद्ध होने से बिना खम्भे के बन्दनवार की रचना करते हुए और मधुर बोली बोलते हुए सारसों को देखने के लिये वे अपना मुंह कुछ कुछ ऊपर उठा लेते थे।

४२. मनोरथ की सफलता की सूचना देने वाली हवा की अनुकूलता के कारण घोड़ों के खुरों से खुदकर उड़ी हुई धूल से उनकी केशराशि और पगड़ी बिलकुल अछूती थी।

४३. तालाबों में लहरियों के चलने से शीतल अपने निःश्वास का अनुकरण करने वाली कमलों की सुगन्ध को वे श्वास के रूप में ग्रहण करते जा रहे थे।

४४. यज्ञों में पशुओं के बांधने के लिये गाड़े गये खंभों की पहचान वाले अपने द्वारा दान में दिये गये गांवों में वे अर्घ्य और उसके बाद अमोघ आशीर्वाद दोनों ग्रहण करते जा रहे थे।

४५. एक दिन पहले दुहे गये दूध से तैयार घी लेकर उपस्थित वयोवृद्ध ग्वालों से वे रास्ते के जंगली पेड़ों का नाम पूछते जाते थे।

४६. उज्ज्वल वस्त्र पहनकर जाते हुए उनकी शोभा विशेष योग उपस्थित होने पर शीत ऋतु से मुक्त चित्रा और चन्द्रमा के समान अनिर्वचनीय थी।

४७. अपनी पत्नी को तरह तरह की वस्तुओं को दिखाते हुए वे प्रियदर्शी और बुध के समान ज्ञानी राजा यह न जान सके कि उन्होंने अपना रास्ता तय कर लिया है।

४८. दूसरों के लिये दुर्लभ यश के भागी राजा दिलीप, जिनके घोड़े थक गये थे, सायंकाल अपनी रानी के साथ संयमशील महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में पहुंचे।

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः ।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः ।।४९।।

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः ।
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः ।।५०।।

सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् ।
विश्वासाय विहङ्गानामालवालाम्बुपायिनाम ।।५१।।

आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः ।
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गनभूमिषु ।।५२।।

अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान् ।
पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः ।।५३।।

अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः ।
तामवारोहयत्पत्नीं रथादवततार च ।।५४।।

तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः ।
अर्हणामर्हते चक्रुर्मुनयो नयचक्षुषे ।।५५।।

विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ।।५६।।

४९. अग्निहोत्र करने के कारण अदृश्य अग्नियों के प्रिय तपस्वियों से जो समिधा, कुश और फल लेकर दूसरे वन से लौट रहे थे वह आश्रम भरा हुआ था।

५०. ऋषि पत्नियों की सन्तान के समान कुटियों का द्वार रोकने वाले मृगों से जो नीवार के चावल में अपने हिस्से के अधिकारी थे वह आश्रम व्याप्त था।

५१. जल सींचने के बाद थाले के पानी को पीने वाले पक्षियों के भरोसे के लिये मुनियों की कन्यायें वहां वृक्षों के पौधों के पास से तत्काल ही हट गई थीं।

५२. कुटियों के आंगनों की भूमि पर धूप के चले जाने से ढेर किये गये नीवार पर बठे हुए हिरन वहां जुगाली कर रह थे।

५३. वहां होम की अग्नि के प्रज्वलित होने की सूचना देने वाला आहुति की गन्ध से सुगन्धित तथा हवा से उड़ाया गया धुआं आश्रम की ओर आनेवाले अतिथियों को पवित्र कर रहा था।

५४. सारथी को यह आदेश देकर कि घोड़ों को विश्राम कराओ, राजा ने रानी को रथ स उतारा और स्वयं भी उतर पड़े।

५५. अपनी इन्द्रियों को अत्यधिक वश में रखने वाले कुलीन मुनियों ने शास्त्र की दृष्टि से देखने वाले, अपनी पत्नी के साथ आये हुए तथा शास्त्र की मर्यादा के अनुसार आचरण करने वाले अपने पूजनीय रक्षक की पूजा की।

५६. सायंकालीन उपासना की विधि समाप्त होने पर उन्होंने मुनि के दर्शन किये। अरुन्धती क साथ बैठे हुए वे एसे लगते थे जैसे स्वाहा के साथ अग्नि।

तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी ।
तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः ।।५७।।

तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ।।५८।।

अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरः पुरः ।
अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वरः ।।५९।।

उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे ।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम् ।।६०।।

तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः ।
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः ।।६१।।

हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु ।
वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम् ।।६२।।

पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः ।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम् ।।६३।।

त्वयैवं चिन्त्यमानस्य गुरुणा ब्रह्मयोनिना ।
सानुबन्धाः कथं न स्युः संपदो मे निरापदः ।।६४।।

५७. राजा ने और मगधराजकुमारी रानी ने उनके चरण छूकर उन दोनों को प्रणाम किया। गुरु और गुरु की पत्नी दोनों ने ही प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देकर उन्हें आनन्दित किया।

५८. रथ में यात्रा करने के कष्ट से उत्पन्न थकान के अतिथिसत्कार द्वारा दूर हो जाने पर मुनि वसिष्ठ ने राज्यरूपी आश्रम के मुनि राजा दिलीप से राज्य की कुशल पूछी।

५९. शत्रु के नगरों पर अधिकार करने वाले, बोलने वालों में श्रेष्ठ एवं ऐश्वर्य के स्वामी राजा दिलीप अथर्ववेद की निधि के स्वामी ऋषि वसिष्ठ के सामने सारगर्भित वाणी में बोले—

६०. जब दैवी तथा मानुषी विपत्तियों से मेरी रक्षा करने के लिये आप विद्यमान हैं तो मेरे राज्य के सातों अंग कुशल से क्यों न होंगे ?

६१. आप मन्त्रों के निर्माता हैं। दूर से ही शत्रुओं का शमन करने वाले आपके मन्त्र देखे हुए लक्ष्य का वेध करने वाले मेरे बाणों को मानो लौटा देते हैं।

६२. हे होता, आपके द्वारा विधिपूर्वक अग्नि में डाली गई होम की सामग्री वर्षा की बाधा से सूखने वाली फसल के लिये वर्षा बनकर बरसती है।

६३. मेरी प्रजा पूर्ण आयु का भोग करती है, उसे कोई भय नहीं और न अकाल आदि भौतिक विपत्तियों की उसे बाधा है। यह सब आपके व्रत अध्ययनआदि का ही फल तो है।

६४. आप स्वयं ब्रम्हा के पुत्र हैं, आपके द्वारा इस प्रकार मेरे हित की चिन्ता करने पर मैं संकटमुक्त कैसे न होऊं और मेरी सम्पदा अखण्ड क्यों न हो ?

किन्तु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम् ।
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी ।।६५।।

नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः ।
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः ।।६६।।

मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया ।
पयः पूर्वैः स्वनिःश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते ।।६७।।

सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः ।।६८।।

लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् ।
सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ।।६९।।

तया हीनं विधातर्मां कथं पश्यन्न दूयसे ।
सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद्वन्ध्यमाश्रमवृक्षकम् ।।७०।।

असह्यपीडं भगवन्नृणमन्त्यमवेहि मे ।
अरुन्तुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः ।।७१।।

तस्मान्मुच्ये यथा तात ! संविधातुं तथार्हसि ।
इक्ष्वाकूणां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः ।।७२।।

६५. किन्तु आपकी इस पुत्रवधू से मुझ जैसी सन्तान न होते देख मुझे द्वीपों से युक्त रत्न उत्पन्न करने वाली पृथ्वी भी प्रसन्नता प्रदान नहीं करती।

६६. मेरे बाद पिण्डदान की परम्परा का खण्डन होते हुए देखकर मेरे पितर लोग जो स्वधा के संग्रह में तत्पर रहते हैं श्राद्ध के समय इच्छानुसार अपना भोजन नहीं ग्रहण करते यह तो सत्य ही है।

६७. यह समझकर कि मेरे बाद उनके लिये यह दुर्लभ हो जायगा मेरे पितर अपने निःश्वास के कारण गरम हो जाने पर ही मेरा दिया हुआ जल पी पाते हैं।

६८. यज्ञ से मेरी आत्मा विशुद्ध हो चुकी है किन्तु सन्तान के उत्पन्न न होने से मैं अंधकार मग्न हो गया हूं। इस प्रकार मेरी स्थिति उस पर्वत के समान है जो एक साथ ही प्रकाश और अन्धकार से व्याप्त होता है।

६९. तप और दान से होने वाला पुण्य परलोक में सुख देता है किन्तु शुद्धवंश में उत्पन्न सन्तान इस लोक और परलोक दोनों के लियं सुखकारी होती है।

७०. हे विधाता, स्नेहपूर्वक स्वयं ही सींचे गये फल न देने वाले अपने आश्रम के छोटे वृक्ष के समान मुझे उस सन्तान से हीन देखकर आप कैसे दुखी नहीं होते।

७१. हे भगवन्, मेरे पितृ ऋण को आप बिना नहाये-धोये बंधे हुए हाथी के मर्म को चुभाने वाले बांधने के रस्से के समान असह्य पीड़ा देने वाला समझिय।

७२. हे तात, उस ऋण से मेरे छुटकारे का उपाय आप कर सकते हैं। इक्ष्वाकु वंश के लोगों को दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति में सफलता दिलाना आपके हाथ में है।

इति विज्ञापितो राज्ञा ध्यानस्तिमितलोचनः ।
क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः ।।७३।।

सोऽपश्यत्प्रणिधानेन संततेः स्तम्भकारणम्।
भावितात्मा भुवो भर्तुरथैनं प्रत्यबोधयत् ।।७४।।

पुरा शक्रमुपस्थाय तवोर्वीं प्रति यास्यतः ।
आसीत्कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि ।।७५।।

धर्मलोपभयाद्राज्ञीमृतुस्नातामिमां स्मरन् ।
प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधु नाचरः ।।७६।।

अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति ।
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा ।।७७।।

स शापो न त्वया राजन्न च सारथिना श्रुतः ।
नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे ।।७८।।

ईप्सितं तदवज्ञानाद्विद्धि सार्गलमात्मनः ।
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ।।७९।।

हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः ।
भुजङ्गपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति ।।८०।।

७३. राजा के द्वारा यह निवेदन करने पर ऋषि ने ध्यान लगाया जिससे उनकी आंखें स्थिर हो गईं। क्षण भर के लिये वे उस सरोवर के समान हो गये जिसकी मछलियां सो गई हों।

७४. चित्त को एकाग्र करके शुद्ध अन्त:करण वाले उन ऋषि ने पृथ्वी का पालन करने वाले राजा के सन्तान न होने के कारण को जान लिया और उसके बाद राजा को बताया।

७५. पुरानी बात है, इन्द्र की सेवा में उपस्थित रहने के बाद जब तुम पृथ्वी की ओर जा रहे थे उस समय तुम्हारे मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी।

७६. ऋतु स्नान से निवृत्त होने पर अपनी इस रानी से न मिलने के कारण कहीं धर्म का पालन करने में त्रुटि न हो जाय, इस भय से इसे स्मरण करते हुए तुमने प्रदक्षिणा की अधिकारिणी उस कामधेनु के प्रति उचित व्यवहार नहीं किया।

७७. उसने तुमको यह शाप दिया कि जिस कारण से तुमने मेरा तिरस्कार किया है उसका यह फल होगा कि मेरी सन्तान की आराधना के बिना तुम्हें सन्तान न होगी।

७८. हे राजा, वह शाप न तो तुमने सुना और न तुम्हारे सारथी ने क्योंकि आकाश गंगा के प्रवाह में विशाल और मस्त दिग्गज चिंघाड़ रहे थे।

७९. तुम यह जान लो कि उस गाय के अपमान से ही तुम्हारे मनोरथ में बाधा पड़ गई है। पूजनीय की पूजा में मर्यादा का उल्लंघन कल्याण के लिये बाधक सिद्ध होता है।

८०. वह कामधेनु इस समय वरुणदेव के देर तक चलने वाले यज्ञ के लिये दूध, घी आदि की पूर्त्ति के लिये पाताल में गई हुई है जहां का द्वार नागों ने रोक रखा है।

सुतां तदीयां सुरभेः कृत्वा प्रतिनिधिं शुचिः ।
आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि सा ।।८१।।

इति वादिन एवास्य होतुराहुतिसाधनम् ।
अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुराववृते वनात् ।।८२।।

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला ।
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं सन्ध्येव शशिनं नवम् ।।८३।।

भुवं कोष्णेन कुण्डोध्नी मेध्येनावभृथादपि ।
प्रस्नवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्तिना ।।८४।।

रजःकणैः खुरोद्धूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात् ।
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः ।।८५।।

तां पुण्यदर्शनां दृष्ट्वा निमित्तज्ञस्तपोनिधिः ।
याज्यमाशंसितावन्ध्यप्रार्थनं पुनरब्रवीत् ।।८६।।

अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः ।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् ।।८७।।

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम् ।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि ।।८८।।

८१. उस कामधेनु की सन्तान को उसका प्रतिनिधि मानकर शुद्ध मन से अपनी पत्नी के साथ उसकी आराधना करो। प्रसन्न होने पर वह निश्चय ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेगी।

८२. उनके ऐसा कहते-कहते ही होम करने वाले उन मुनि के लिये आहुति के लिये साधन-स्वरूप प्रशंसनीय नन्दिनी नाम की गाय वन से लौटी।

८३. पल्लव के समान चिकनी और लाल रंग की उस गाय के माथे पर सफेद रंग के रोओं का कुछ टेढ़ा सा चिन्ह इस प्रकार शोभित हो रहा था जैसे संध्या ने नये चन्द्रमा को धारण किया हो।

८४. कुंड के समान बड़े थन वाली वह गाय बछड़े के देखने मात्र से बहने वाले, यज्ञ के स्नान के जल से भी पवित्र तथा कुछ-कुछ गरम दूध से पृथ्वी को सींच रही थी।

८५. पास ही खड़ी होकर अपने खुर से उड़ी हुई धूल से अंगों के स्पर्श द्वारा वह राजा को तीर्थ स्नान से होने वाली शुद्धि का फल दे रही थी।

८६. उस पवित्र दर्शन वाली गाय को देखकर शुभ शकुन को पहिचानने वाले तपोनिधि ऋषि वसिष्ठ ने यज्ञ करने के उपयुक्त अधिकारी राजा से, जिनका मनोरथ विफल नहीं हो सकता था, फिर कहा।

८७. हे राजा, तुम यह मान लो कि तुम्हारी सिद्धि अब दूर नहीं है क्योंकि यह कल्याणकारिणी गाय, नाम लेते ही यहां उपस्थित हो गई है।

८८. वनवासियों के समान कन्दमूल आदि खाकर सदैव उसके पीछे-पीछे रहकर इस गाय को तुम उसी प्रकार प्रसन्न करो जिस प्रकार अभ्यास करके विद्या प्राप्त की जाती है।

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः ।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः ॥८९॥

वधूर्भक्तिमती चैनामर्चितामातपोवनात् ।
प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युद्व्रजेदपि ॥९०॥

इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव ।
अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम् ॥९१॥

तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः ।
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः ॥९२॥

अथ प्रदोषे दोषज्ञः संवेशाय विशांपतिम् ।
सूनुः सूनृतवाक्स्रष्टुर्विससर्जोर्जितश्रियम् ॥९३॥

सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः ।
कल्पवित्कल्पयामास वन्यामेवास्य संविधाम् ॥९४॥

निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशाला
मध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः ।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां
संविष्टः कुशशयने निशां निनाय ॥९५॥
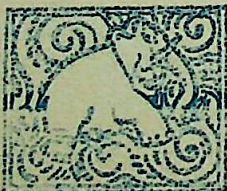
८९. जब वह चले तब तुम चलो, जब वह रुके तब तुम रुको, जब वह बैठे तब तुम बैठो और जब वह पानी पिये तब तुम पानी पियो।

९०. बहू भी भक्तिपूर्वक इसके प्रस्थान के समय इसकी पूजा करके तपोवन की सीमा तक इसके पीछे-पीछे जाय और सायंकाल उसे लिवा लावे।

९१. इस प्रकार उसके प्रसन्न होने तक तुम उसकी सेवा में रत हो जाओ, तुम्हारा मार्ग विघ्नरहित हो और अच्छे पुत्रों के पिता के रूप में तुम्हारा प्रमुख स्थान हो।

९२. देश और काल को समझनेवाले और इसी कारण उनके प्रेम के अधिकारी शिष्य राजा दिलीप ने पत्नी सहित गुरु की आज्ञा को विनय-पूर्वक ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया।

९३. रात हो जाने पर विद्वान् तथा सत्य और प्रिय वचन बोलने-वाले ब्रह्मा के पुत्र ऋषि वसिष्ठ ने बढ़े हुए ऐश्वर्यवाले राजा दिलीप से जाकर सोने के लिये कहा।

९४. व्रत के प्रयोग को जानने वाले मुनि ने तपस्या की सिद्धि के होते हुए भी नियम को ध्यान में रखकर राजा दिलीप के लिये वन से प्राप्त होनेवाले साधन ही सुलभ किये।

९५. राजा ने कुलपति द्वारा बतायी गई पर्णकुटी को अपना निवास बनाया जहां उनके साथ के लिये एकमात्र उनकी पत्नी ही थीं। उन्होंने कुश के बिछौने पर अपनी रात बितायी और मुनि के शिष्यों द्वारा अध्ययन प्रारंभ करने पर उन्हें रात के बीतने का पता लगा।

द्वितीयः सर्गः

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥१॥

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया ।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थस्मृतिरन्वगच्छत् ॥२॥

निवर्त्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ॥३॥

व्रताय तेनानुचरेण धेनोर्न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः ।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः ॥४॥

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥५॥

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥६॥

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः ।
आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः ॥७॥

लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम् ।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान् ॥८॥

दूसरा सर्ग

१. अब रात बीतने पर प्रातःकाल यशरूपी धन के घनी, प्रजा के स्वामी राजा दिलीप ने ऋषि की गाय को वन के लिये खोला जिसकी पूजा उनकी पत्नी चन्दन लगाकर और माला पहनाकर कर चुकी थीं और जिसका बछड़ा दूध पीने के बाद बांध दिया गया था।

२. राजा की धर्मपत्नी रानी सुदक्षिणा ने जिनकी गणना पतिव्रता स्त्रियों में पहले की जाती है, उस गाय के खुरों के रखने से पवित्र धूलवाले मार्ग का इस प्रकार अनुसरण किया जैसे वेदों के अर्थ के पीछे स्मृति चलती है।

३. दयालु और अपने यश से लोकप्रिय राजा ने अपनी पत्नी को लौटाकर कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की इस प्रकार रक्षा की मानो वह चारों समुद्रों को अपने स्तनों के रूप में धारण करनेवाली स्वयं पृथ्वी ही हो।

४. गाय की सेवा का व्रत धारण करनेवाले राजा नें अपने शेष सेवकों को भी वापिस लौटा दिया। मनु की सन्तान अपने पराक्रम से अपनी रक्षा करती है उसके शरीर की रक्षा कहीं और से नहीं होती।

५. सम्राट् दिलीप उसे स्वादिष्ट घास के ग्रास खिलाते, उसे खुजलाते, वन की मक्खियों को उड़ाते और बिना किसी बाधा के स्वतंत्र रूप से चलने देते थे। इस प्रकार वे उसकी सेवा में तत्परता से लग गये।

६. जब वह गाय खड़ी होती तब राजा खड़े होते, जब चलती तो चलते, जब बैठती तब आसन पर बैठते और जब वह पानी पीती तो पानी पीने की इच्छा करते। इस प्रकार वे उसके पीछे छाया की तरह लगे रहते।

७. राज्य चिह्नों से अलग होते हुए भी उनकी राज्यलक्ष्मी का अनुमान उनके विशेष प्रकार के तेज से हो रहा था और उससे उनकी शोभा उस हाथी के समान लग रही थी जिसके भीतर मद विद्यमान् हो, पर उसकी धारा बाहर न निकली हो।

८. लताओं के लम्बे धागों से अपने केश बांधकर और धनुष पर डोरी चढ़ाये मुनि के होम की गाय की रक्षा के बहाने वे मानो वन के दुष्ट जन्तुओं को शिक्षा देने के लिये वन में घूम रहे थे।

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य ।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः ।।९।।

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्त्तमानम् ।
अवाकिरन्बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः ।।१०।।

धनुर्भृतोऽप्यस्य दयाऽऽर्द्रभावमाख्यातमन्तःकरणैर्विशंकैः ।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ।।११।।

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम् ।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ।।१२।।

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे ।।१३।।

शशाम वृष्ट्याऽपि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः ।
ऊनं न सत्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन्वनं गोप्तरि गाहमाने ।।१४।।

सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ।।१५।।

तां देवतापित्रतिथिक्रियाऽर्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः ।
बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना ।।१६।।

९. पास रहनेवाले सेवकों को भेज देने पर आस-पास के वृक्षों ने मस्त हो रहे पक्षियों के शब्दों के द्वारा वरुण के समान राजा दिलीप का मानो जयजयकार किया।

१०. हवा से संचालित छोटी-छोटी पार्श्ववर्ती लताओं ने अग्नि के समान शोभावाले उस पूजनीय राजा पर फूल गिराकर मानो नगर की कन्याओं द्वारा स्वागत में धान की खीलें बरसाने की प्रथा का पालन किया।

११. धनुष धारण करने पर भी उनके निर्भय अन्तःकरण से यह भाव झलकता था कि वे दया से द्रवित हो जाते हैं। उनके शरीर को देखनेवाली हरिणियों ने अपनी आंखों के अत्यधिक विस्तृत होने का लाभ उठाया।

१२. राजा दिलीप ने कुंजों में वन देवताओं को अपने यश का गान ऊंचे स्वर से करते हुए सुना उस समय छेद में हवा भर जाने से बजनेवाले बांस वहां विशेष बाजे का काम कर रहे थे।

१३. पर्वतों के झरनों के जलकणों से युक्त और वृक्षों के थोड़े-थोड़े हिलते हुए फूलों की गन्धवाली हवा ने छतरी के न होने के कारण धूप से क्लान्त और आचार से पवित्र उस राजा की सेवा की।

१४. उस वन में रक्षा करनेवाले राजा के विचरण करते समय वर्षा के बिना ही वन की अग्नि शान्त हो गई, फल और फूलों की विशेष रूप से वृद्धि हुई और वन के बलवान जीवों ने दुर्बलों को नहीं सताया।

१५. पल्लव के रंग के समान लाल सूर्य की प्रभा और मुनि की गाय दोनों ने दिशाओं के अन्तर को अपने संचार से पवित्र करके सायंकाल अपने निवास की ओर प्रस्थान किया।

१६. पृथ्वी के पालक राजा दिलीप देवता, पितर और अतिथियों के लिये उपयोगी उस गाय के पीछे-पीछे चलते थे। सज्जनों द्वारा मान्य उस राजा के साथ रहने से वह ऐसी शोभित हुई जैसे अनुष्ठान से युक्त साक्षात् श्रद्धा हो।

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि ।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ॥१७॥

आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद्गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेन्द्रः ।
उभावलञ्चक्रतुरञ्चिताभ्यां तपोवनावृत्तिपथं गताभ्याम् ॥१८॥

वसिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्त्तमानं वनिता वनान्तात् ।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपंक्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् ॥१९॥

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥२०॥

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता ।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः ॥२१॥

वत्सोत्सुकाऽपि स्तिमिता सपर्यां प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ ।
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि ॥२२॥

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ समाप्य सान्ध्यञ्च विधिं दिलीपः ।
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम् ॥२३॥

तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः ।
क्रमेण सुप्तामनुसंविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥२४॥

१७. छोटे-छोटे तालों से निकले हुए जंगली सुग्ररों के झुंडों, श्रपने रहने के वृक्षों की श्रोर मुंह किये हुए मयूरों श्रौर कोमल घास के मैदानों में बैठे हुए हिरनोंवाले वनों को जिनका रंग श्रत्यधिक हरियाली से सांवला लग रहा था, देखत हुए राजा श्रागे बढ़े।

१८. थन के भार को उठाने के प्रयत्न के कारण हाल में ही ब्याई हुई उस गाय श्रौर श्रपने शरीर के भारीपन के कारण राजा, दोनों ने ही श्रपनी सुन्दर चाल से तपोवन से लौटने के मार्ग को सुशोभित किया।

१९. उस वनिता सुदक्षिणा ने वन प्रदेश से लौटते हुए वसिष्ठ ऋषि की गाय के श्रनुयायी राजा के रूप को पलकों के गिरने में श्रलस बरौनियोंवाली श्रांखों से मानो प्यासी होकर पान किया ।

२०. मार्ग में राजा द्वारा श्रागे करके लाई गई तथा लौटकर श्राने पर धर्मपत्नी के सामने उपस्थित राजा की वह गाय उन दोनों के बीच में दिन श्रौर रात के मध्य उपस्थित सन्ध्या के समान शोभित हुई ।

२१. हाथ में श्रक्षत का पात्र लिये सुदक्षिणा ने उस दूध देनेवाली गाय की प्रदक्षिणा की श्रौर उसे प्रणाम किया । इसके श्रनन्तर उन्होंने श्रपने मनोरथ की सिद्धि के द्वार के समान उसक सींगों के मध्यभाग की पूजा की।

२२. श्रपने बछड़े के लिये उत्सुक होने पर भी उसने खड़ी होकर पूजा स्वीकार की जिसे देख वे दोनों प्रसन्न हो गये। भक्तियुक्त लोगों के लिये उस प्रकार के पूजनीयों में प्रसन्नता के चिह्न श्रागे चलकर प्राप्त होनेवाले फल के सूचक होते हैं।

२३. श्रपनी भुजाश्रों से शत्रुश्रों का विनाश करनेवाले राजा ने पत्नी समेत गुरु के चरणों में प्रणाम करके श्रौर सायंकालीन उपासना की विधि समाप्त करके दूध दुहे जाने पर बैठी हुई उस दुधार गाय की पुनः सेवा की।

२४. उस बैठी हुई गाय के पास पूजा का दीपक रखकर राजा दिलीप श्रपनी पत्नी के साथ बठ गये श्रौर जब वह सो गई तब सोये श्रौर प्रातःकाल उसके उठने पर उठे।

इत्थं व्रतं धारयतः प्रजाऽर्थं समं महिष्या महनीयकीर्तेः ।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य ॥२५ ॥

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः ।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥२६॥

सा दुष्प्रधर्षा मनसाऽपि हिंस्रैरित्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन ।
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष ॥२७॥

तदीयमाक्रन्दितमार्त्तसाधोर्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् ।
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां निवर्त्तयामास नृपस्य दृष्टिम् ॥२८ ॥

स पाटलायां गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श ।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ॥२९॥

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः ।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारिः ॥३०॥

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्त्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे ।
सक्ताङ्गुलिः सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ॥३१॥

बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः ।
राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः ॥३२॥

२५. सन्तान के लिये इस प्रकार रानी सहित व्रत करते हुए दीनों का उद्धार करने में समर्थ श्रौर पूजनीय यशवाले राजा दिलीप के इक्कीस दिन बीत गये।

२६. दूसरे दिन श्रपने सेवक राजा दिलीप के भाव को जानने की इच्छा स ऋषि क होम में साधन-स्वरूप वह गाय गंगा के झरने के पास उगी हुई कोमल घासवाली हिमालय की गुफा में प्रवेश कर गयी।

२७. हिंसक पशु उसपर श्राक्रमण की कल्पना भी नहीं कर सकते यह सोचकर पर्वत की शोभा पर राजा की दृष्टि क्षण भर को चली गई श्रौर उन्होंने उस पर श्राक्रमण करते हुए सिंह को न देखा जिसने उसे बलपूर्वक पकड़ लिया था।

२८. गुफा में बन्द होने से बढ़ी हुई प्रतिध्वनियुक्त उसकी दुखभरी पुकार ने दुखियों के हितकारी राजा की पर्वत पर लगी हुई दृष्टि को मानो रास पकड़कर लौटा दिया।

२९. धनुषधारी उस राजा ने लाल रंग की उस गाय पर बैठे हुए सिंह को दखा जो ऐसा लग रहा था मानो पर्वत के गेरुए रंग के टीले पर लोध्र का खिला हुश्रा वृक्ष हो।

३०. सिंह की चालवाले, शरण देने में समर्थ, बलपूर्वक शत्रुश्रों का दमन करनवाले उस राजा ने श्रपना पराभव देखकर वध करने के लिये उपयुक्त उस सिंह को मारने के लिये श्रपने तर्कश से बाण निकालना चाहा।

३१. उस सिंह पर प्रहार करनेवाले राजा का दाहिना हाथ जिसकी उंगलियां नख की कांति से शोभायमान बाण के सिरे में लगे कंक पक्षी के पंख के ऊपर पड़ने पर वहीं ठिठक गई थीं, ऐसा मालूम हो रहा था मानो बाण निकालने के प्रयत्न को किसी चित्र में श्रंकित किया गया हो।

३२. बांह के रुक जाने के कारण राजा का रोष बढ़ गया श्रौर पास ही विद्यमान श्रपराधी को छू भी न सकनेवाले श्रपने प्रताप से वे उसी प्रकार भीतर ही भीतर जल उठे जैसे मंत्र श्रौर श्रौषधि से जकड़ा हुश्रा सांप रोष स जल उठता है।

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुर्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम् ।
विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौ सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः ॥३३॥

अलं महीपाल ! तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥३४॥

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् ।
अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्त्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम् ॥ ३५॥

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन ।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥३६॥

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य ।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः ॥३७॥

तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ
व्यापारितः शूलभृता विधाय सिंहत्वमङ्कागतसत्त्ववृत्ति ॥ ३८॥

तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण ।
उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव ॥३९॥

स त्वं निवर्त्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः ।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥४०॥

३३. गाय को पकड़नेवाला सिंह, सज्जनों के पक्षपाती, मनुवंश की पताका, सिंह के समान महाबली और अपनी दशा पर चकित राजा दिलीप को और भी आश्चर्य में डालता हुआ मनुष्य की वाणी में बोला।

३४. हे राजा, तुम्हारे परिश्रम से कोई लाभ नहीं, मुझ पर चलाये गये तुम्हारे अस्त्र भी व्यर्थ सिद्ध होंगे। पेड़ को उखाड़ने की क्षमता रखनेवाली हवा के वेग का पर्वत पर कोई प्रभाव नहीं होता।

३५. मैं कुम्भोदर नामक अष्टमूर्त्ति शिवजी का सेवक और निकुंभ का मित्र हूं। कैलास पर्वत के समान उज्ज्वल बैल पर बैठने के अभिलाषी शिवजी के पैर रखने से मेरी पीठ पवित्र हो गई है।

३६. तुम सामने यह देवदारु का वृक्ष देख रहे हो न? इसको शिवजी ने अपना पुत्र माना है जो सोने के घड़ों के रूप में स्कन्द की माता के स्तनों के दूध के स्वाद को जानता है।

३७. एक बार अपने गंडस्थल को खुजाते हुए किसी जंगली हाथी द्वारा उसकी छाल छिल गई जिसस हिमालय की कन्या पार्वती ऐसी दुखी हुईं मानों असुरों के अस्त्रों से देवताओं के सेनापति स्कन्द घायल हो गये हों

३८. उसी समय से बनैले हाथियों को डराने के लिये शूलधारी शिवजी न सिंह बनाकर मुझे इस पर्वत की गुफा में नियुक्त कर दिया है। पास आनेवाले प्राणी ही मेरे निर्वाह के साधन हैं।

३९. शिवजी द्वारा समय पर भेजी गयी और राहु के लिय चन्द्रमा के अमृत के समान यह रक्त का पारण मेरे लिये उपस्थित है। मुझ भूखे की तृप्ति के लिये यह पर्याप्त होगी।

४०. इस प्रकार निरुपाय हो जाने पर तुम लज्जा छोड़कर निवृत्त हो जाओ। तुमने अपने गुरु के प्रति शिष्योचित भक्ति का प्रदर्शन कर लिया। शस्त्र के द्वारा जिसकी रक्षा की जानी है उसकी रक्षा यदि शस्त्र से न हो सके तो इससे सशस्त्रधारियों का यश नष्ट नहीं होता।

इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य ।
प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार ।।४१।।

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे तत्पूर्वभङ्गे वितथप्रयत्नः ।
जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणि : ।।४२।।

संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र ! कामं हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः ।
अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद सर्वं भवान्भावमतोऽभिधास्ये ।।४३।।

मान्यः स मे स्थावरजङ्गमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः ।
गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेर्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम् ।।४४।।

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद ।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः ।।४५।।

अथान्धकारं गिरिगह्वराणां दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन् ।
भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्ती किञ्चिद्विहस्यार्थपतिं बभाषे ।।४६।।

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च ।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ।।४७।।

भूतानुकम्पा तव चेदियं गौरेका भवेत्स्वस्तिमती त्वदन्ते ।
जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ! पितेव पासि ।।४८।।
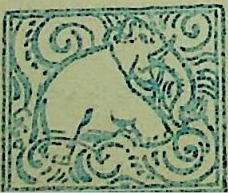
४१. राजा दिलीप ने उस सिंह की इस प्रकार चतुरतापूर्ण बात सुनकर यह समझा कि उनके हथियार शिवजी के प्रभाव से कुंठित हो गये हैं और तब अपने प्रति उठी हुई उनकी ग्लानि की भावना शिथिल हुई।

४२. पहले ही प्रसंग में बाण का प्रयोग करने में निष्फलप्रयत्न राजा दिलीप ने जो वज्र फेंकने की इच्छा करने पर भगवान शंकर की दृष्टि पड़ते ही जड़ बन जाने वाले इन्द्र के समान स्तब्ध हो गये थे, उत्तर दिया।

४३. हे सिंह, मेरी चेष्टाएं अवरुद्ध हो गई हैं। ऐसी स्थिति में मैं यदि कुछ कहना चाहूं तो वह तुम्हारे लिये काफी परिहास का विषय हो सकता है। किंतु तुम प्राणधारियों के मन के भीतर के समस्त भावों को जानते हो इसलिये तुमसे कहूंगा।

४४. स्थावर और जंगम-मात्र में उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारण-भूत वे भगवान शंकर मेरे मान्य हैं। परन्तु अग्निहोत्र करने वाले अपने गुरु के इस धन को अपने सामने नष्ट होते देखकर मैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

४५. तुमने गाय को पकड़ा है तो तुम प्रसन्न होकर मेरे शरीर से अपने शरीर को धारण करने का कार्य संपन्न करो और दिन की समाप्ति पर अपने बछड़े से मिलने के लिय उत्सुक महर्षि की इस गाय को छोड़ दो।

४६. पर्वत की गुफाओं के अन्धकार को अपने जबड़ों की किरणों से खण्ड-खण्ड करता हुआ वह महादेवजी का अनुचर कुछ हंसकर राजा से फिर बोला।

४७. तुम्हारा राज्य एकच्छत्र है, तुम जगत् के स्वामी हो, तुम अभी युवा हो और तुम्हारा यह शरीर सुन्दर भी है। ऐसी स्थिति में थोड़े के लिये बहुत खोने की इच्छा व्यक्त करके तुम मुझे विचार करने में मूर्ख जान पड़ते हो।

४८. यदि तुम्हारे सामने जीवों पर दया का प्रश्न है तो तुम्हारे प्राण देने से केवल इसी गाय का कल्याण होगा और हे प्रजानाथ, यदि तुमने अपने जीवन की रक्षा की तो तुम विपत्तियों से अपनी प्रजा की रक्षा निरन्तर ही करते रहोगे।

अथैकधेनोरपराधचण्डाद्गुरोः कृशानुप्रतिमाद् बिभेषि ।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं गाःकोटिशःस्पर्शयता घटोध्नीः ।।४९।।

तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम् ।
महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः ।।५०।।

एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन ।
शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव ।।५१।।

निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच ।
धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः ।।५२।।

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ।।५३।।

कथं नु शक्योऽनुनयो महर्षेर्विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम् ।
इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयाऽस्याम् ।।५४।।

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः ।
न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः ।।५५।।

भवानपीदं परवानवैति महान् हि यत्नस्तव देवदारौ ।
स्थातुं नियोक्तुर्न हि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ।।५६।।

४९. अथवा क्या एक ही गाय जिनकी संपत्ति है और जो अपराध होने पर कुपित हो आग के समान उग्र हो उठते हैं ऐसे गुरु से डरते हो? तुम तो घड़े के समान थनों वाली करोड़ों गायें देकर उनके क्रोध को शांत कर सकते हो।

५०. इसलिये तुम कल्याणों की परम्पराओं को भोग करने वाले अपने सबल शरीर की रक्षा करो। तुम्हारा समृद्ध राज्य स्वर्ग कहलाता ही है, भेद यही है कि यह पृथ्वी पर है।

५१. सिंह के ऐसा कहकर चुप होने पर गुफा में हुई उसकी प्रतिध्वनि के रूप में पर्वत ने भी प्रेम से भरकर मानों वही बातें दुहराईं।

५२. महादेव के अनुचर की बात सुनकर मनुष्यों के देवता राजा दिलीप फिर बोले। उस समय उस सिंह के द्वारा आक्रांत होकर कातर आंखों वाली गाय उन्हें देख रही थी और उनका हृदय अत्यन्त दयार्द्र हो उठा था।

५३. नाश से रक्षा करने की ख्याति से यह सम्मानित क्षत्र शब्द सर्व-साधारण में प्रचलित हो गया है। उसके विपरीत आचरण करके राज्य लेकर या निन्दा से कलुषित प्राणों की रक्षा करने से क्या लाभ?

५४. दूसरी गायों को देकर महर्षि को शांत करना कैसे संभव है। इस गाय को तुम कामधेनु से कम न समझो। शिवजी के प्रभाव से ही तुम इस पर प्रहार कर सके हो।

५५. अपना शरीर देकर उसके बदले में तुमसे इस गाय को छुड़ाना ही मेरे लिये उचित है। ऐसी स्थिति में तुम्हारा उस खाना उचित न होगा। ऐसा होने पर मुनि के होम आदि कार्य भी रुक जायेंगे।

५६. तुम भी स्वामी के अधीन हो इसलिये इस बात को समझते हो। इस देवदारु की रक्षा के लिये तुम जो प्रयत्न कर रहे हो वह महान् है। रक्षा की वस्तु को नष्ट करक स्वयं बिना किसी प्रकार का आघात सहे कोई भी अपने स्वामी के सामन जाकर खड़ा नहीं हो सकता।

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशः शरीरे भव मे दयालुः ।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ।।५७।।

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ सङ्गतयोर्वनान्ते ।
तद्भूतनाथानुग ! नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ।।५८।।

तथेति गामुक्तवते दिलीपः सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः ।
स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य ।।५९।।

तस्मिन् क्षणे पालयितुः प्रजानामुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम् ।
अवाङमुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात विद्याधरहस्तमुक्ता ।।६०।।

उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन् ।
ददर्श राजा जननीमिव स्वां गामग्रतः प्रस्रविणीं न सिंहम् ।।६१।।

तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो मायां मयोद्भाव्य परीक्षितोऽसि ।
ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्त्तुं किमुतान्यहिंस्राः।।६२।।

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीताऽस्मि ते पुत्र ! वरं वृणीष्व ।
न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम् ।।६३।।

ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः ।
वंशस्य कर्त्तारमनन्तकीर्ति सुदक्षिणायां तनयं ययाचे ।।६४।।
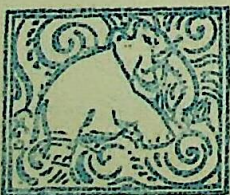
५७. अथवा यदि तुम यह सोचो कि तुम मुझे मारना नहीं चाहते तो तुम मेरे यशरूपी शरीर पर दया करो। निश्चय ही विनष्ट होने वाले भौतिक शरीर में मेरे जैसे लोगों की आस्था नहीं होती।

५८. लोग कहते हैं कि वार्तालाप से ही मित्रता उत्पन्न होती है और इस वन प्रदेश में आये हुए हम दोनों में वह संबंध स्थापित हो चुका है। इसलिये हे भूतनाथ शिव के सेवक, मुझ अपने संबंधी के प्रेम को तुम्हें तोड़ना नहीं चाहिये।

५९. सिंह के द्वारा ऐसा ही हो यह कहते ही राजा दिलीप की भुजा बंधन से झटपट मुक्त हो गई और उन्होंन हथियार फेंककर मांस के लोंदे के समान अपना शरीर सिंह को अर्पित कर दिया।

६०. उस समय भयंकर सिंह के झपटने की कल्पना करते हुए नीचे मुँह किये हुए प्रजापालक राजा दिलीप के ऊपर विद्याधरों के हाथों से फेंके गये फूलों की वर्षा होने लगी।

६१. अमृत के समान निकले हुए, "हे वत्स, उठो" यह वचन सुनकर राजा उठ खड़े हुए और उन्होंने देखा कि वहां सिंह नहीं है, उनकी माता के समान गाय आगे खड़ी है, और उसके स्तन से दूध बह रहा है।

६२. आश्चर्य में पड़े राजा से गाय ने कहा, हे साधु, मैंने माया की सृष्टि करके तुम्हारी परीक्षा ली है। ऋषि के प्रभाव से काल भी मुझ पर प्रहार करने में समर्थ नहीं है, दूसरे हिंसक जीवों की तो बात ही क्या ?

६३. हे पुत्र, गुरु में भक्ति और मुझ पर तुम्हारी दया देखकर मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। तुम वर मांगो। मैं कामधनु हूं और तुम पर प्रसन्न हूं, मुझे केवल दूध देने वाली गाय मत समझो।

६४. इसके बाद अपने मनोरथ से सम्मानित और अपन हाथों से वीर शव्द का अर्जन करने वाले राजा ने अपने हाथों की अंजलि बनाकर सुदक्षिणा के गर्भ से अनन्त यश प्राप्त करने वाले और वंश को बढ़ाने वाले पुत्र की याचना की।

सन्तानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा ।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश ।।६५।।

वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः ।
औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः।।६६।।

इत्थं क्षितीशेन वसिष्ठधेनुर्विज्ञापिता प्रीततरा बभूव ।
तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः प्रत्याययावाश्रममश्रमेण ।।६७।।

तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ।।६८।।

स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम् ।
पपौ वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः शुभ्रं यशो मूर्त्तमिवातितृष्णः ।।६९।।

प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य ।
तौ दम्पती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः।।७०।।

प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशमनन्तरं भर्त्तुररुन्धतीं च ।
धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः।।७१।।

श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन सधर्मपत्नीसहितःसहिष्णुः
ययावनुद्घातसुखेन मार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन ।।७२।।

६५. उस गाय ने संतान के अभिलाषी राजा से ऐसा ही हो यह वर देकर उन्हें आदेश दिया कि हे पुत्र, दोने में मेरा दूध दुह कर पी लो।

६६. राजा बोले, हे माता, बछड़े के पीने से और ऋषि के होम कार्य से बचे हुए तुम्हारे दूध को मैं अपन से रक्षित पृथ्वी के छठे अंश के समान ऋषि की आज्ञा से पीना चाहता हूं।

६७. राजा के द्वारा इस प्रकार निवेदन करने पर वसिष्ठ ऋषि की गाय और प्रेम से भर गई। राजा उसके पीछे हो लिये और वह हिमालय की गुफा से अनायास ही आश्रम को वापस आ गई।

६८. राजाओं में श्रेष्ठ और प्रसन्न चन्द्रमा जैसे मुख वाले राजा दिलीप ने अत्यन्त हर्ष के चिह्न से ही लक्षित गाय की कृपा की बात मानो वाणी के द्वारा पुनरुक्ति के रूप में पहले गुरु को बताई और इसके अनन्तर पत्नी को।

६९. महान् आत्मा वाले तथा सज्जनों से प्रेम करने वाले राजा ने गुरु की आज्ञा पाकर बछड़े से और अग्नि होम से शेष बचे हुए नन्दिनी के दूध को उज्ज्वल एवं साकार यश के रूप में अत्यन्त चाव से पिया।

७०. संयमी ऋषि वसिष्ठ ने प्रातःकाल पहले बताये गये व्रत का पारण हो जाने पर प्रस्थान के समय होनेवाले आशीर्वाद आदि देकर उन राजा और रानी को राजधानी के लिये बिदा किया।

७१. हवन से तृप्त अग्नि की, फिर ऋषि की और अरुन्धती की और उसके बाद बछड़े सहित गाय की प्रदक्षिणा करके राजा दिलीप ने शुभ मंगल-कार्य से और भी प्रभावशाली होकर वहां से प्रस्थान किया।

७२. अपनी धर्मपत्नी के साथ सहनशील राजा दिलीप ने सुनने में सुखद शब्द करने वाले, समान चाल के कारण सुखदायक और अपने पूर्ण होने वाले मनोरथ के समान रथ के द्वारा अपना मार्ग तय किया।

तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम् ।
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमवाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम् ।।७३।।

पुरन्दरश्रीःपुरमुत्पताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः ।
भुजे भुजङ्गेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज ।।७४।।

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम् ।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपाला नुभावैः ।।७५।।

———

७३. प्रजा ने प्रवास के कारण अनुपस्थित होने से उत्कंठा दिखाने वाले और संतान के लिय व्रत करने के कारण दुर्बल शरीर वाले राजा का अतृप्त नेत्रों से ऐसे पान किया मानो वे नवोदित चन्द्रमा हों।

७४. इन्द्र के समान शोभा वाले राजा ने नागरिकों द्वारा स्वागत किये जाते हुए ऊपर उड़ती हुई पताकाओं से सज्जित नगर में प्रवेश किया और शेषनाग के समान बलशाली भुजाओं पर फिर से भूमि की धुरी को उठा लिया।

७५. इसके बाद जैसे द्युलोक ने अत्रि ऋषि के नेत्रों से उत्पन्न ज्योति चन्द्रमा को और गंगा ने अग्नि के द्वारा फेंके गये भगवान शंकर के तेज स्कन्द को धारण किया था उसी प्रकार रानी ने महान् लोकपालों के तेज से युक्त गर्भ को राजवंश की वृद्धि के लिये धारण किया।

तृतीय सर्गः

अथेप्सितं भर्त्तुरुपस्थितोदयं सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम् ।
निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्ततेः सुदक्षिणा दौर्हृदलक्षणं दधौ ।।१।।

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ।।२।।

तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलम् ।।३।।

दिवं मरुत्वानिव भोक्ष्यते भुवं दिगन्तविश्रान्तरथो हि तत्सुतः ।
अतोऽभिलाषे प्रथमं तथाविधे मनो बबन्धान्यरसान्विलङ्घ्य सा ।।४।।

न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी ।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः प्रियासखीरुत्तरकोसलेश्वरः ।।५।।

उपेत्य सा दोहददुःखशीलतां यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम् ।
न हीष्टमस्य त्रिदिवेऽपि भूपतेरभूदनासाद्यमधिज्यधन्वनः ।।६।।

क्रमेण निस्तीर्य च दोहदव्यथां प्रचीयमानावयवा रराज सा ।
पुराणपत्रावगमादनन्तरं लतेव सन्नद्धमनोज्ञपल्लवा ।।७।।

दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं तदीयमानीलमुखं स्तनद्वयम् ।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोःपंकजकोशयोःश्रियम्।।८।।

तीसरा सर्ग

१. रानी सुदक्षिणा ने अपने स्वामी राजा दिलीप के पूर्ण होने वाले मनोरथ, सखियों की दृष्टियों के लिये चांदनी के प्रारंभ और इक्ष्वाकुवंश के विस्तार के मूल कारण के समान गर्भ के चिन्ह को धारण किया।

२. शरीर की दुर्बलता के कारण थोड़े से गहने पहने और लोध्र के फूल के समान पीले पड़े हुए मुंह के कारण रानी सुदक्षिणा क्षीण प्रकाशवाले चन्द्रमा से युक्त प्रभात की ओर बढ़ने वाली उस रात के समान शोभित हुई जिसमें इधर-उधर बिखर थोड़े से नक्षत्र दिखाई दे रहे हों।

३. राजा को रानी के मिट्टी की गंध वाले मुख को एकांत में सूंघने पर तृप्ति नहीं हुई, जैसे गरमी के बीत जाने पर बादलों द्वारा बरसाये गये जलकणों से सिंचित वनश्रेणी के मध्य स्थित सूखे सरोवर को सूंघन पर हाथी की तृप्ति नहीं होती।

४. दिशाओं के छोर पर ले जाकर अपने रथ को रोकने वाले उसके चक्रवर्ती पुत्र को उसी प्रकार पृथ्वी का भोग करना था जिस प्रकार इन्द्र स्वर्ग का भोग करते हैं, इसीलिये दूसरे रसों को छोड़कर सबसे पहले रानी सुदक्षिणा के मन में इस प्रकार की वस्तु की इच्छा हुई।

५. उत्तर कोसल के अधिपति राजा दिलीप अपनी प्रिया की सखियों से बड़ी सतर्कतापूर्वक प्रतिक्षण यह पूछते रहते थे कि मगध राजकुमारी सुदक्षिणा की इच्छा किन-किन वस्तुओं के लिये होती है? मुझसे तो वह लज्जा के मारे अपने मन की कोई भी इच्छा नहीं बतातीं।

६. सुदक्षिणा गर्भिणी के मनोरथ से पीड़ित होकर जिस वस्तु की इच्छा करती थी वह राजा के बिना देखे ही उसके पास पहुंच जाती थी क्योंकि स्वर्ग में भी ऐसी कोई वस्तु न थी जो चढ़ी हुई डोरी वाल धनुष को धारण करने वाले उस राजा के लिये दुर्लभ हो।

७. धीरे-धीरे गर्भकालीन अभिलाषा की पीड़ा को पार करके बढ़ते हुए अंगों वाली रानी सुदक्षिणा पुराने पत्तों के गिर जाने पर नये लगे हुए सुन्दर पल्लवों वाली लता के समान शोभित हुई।

८. गर्भकालीन अभिलाषा के दिन बीतने पर उसके अत्यन्त भरे हुए नीले मुख वाले दोनों स्तनों ने भौरों से युक्त सुन्दर कमल की कलियों की शोभा को भी तिरस्कृत कर दिया।

निधानगर्भामिव सागराम्बरां शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम् ।
नदीमिवान्तः सलिलां सरस्वतीं नृपः ससत्त्वां महिषीममन्यत ।।९।।

प्रियाऽनुरागस्य मनःसमुन्नतेर्भुजार्जितानां च दिगन्तसम्पदाम्
यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रिया धृतेश्च धीरः सदृशीर्व्यधत्त सः।।१०।।

सुरेन्द्रमात्राऽऽश्रितगर्भगौरवात् प्रयत्नमुक्तासनया गृहागतः ।
तयोपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया ननन्द पारिप्लवनेत्रया नृपः ।।११।।

कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तैरथ गर्भभर्मणि ।
पतिः प्रतीतः प्रसवोन्मुखीं प्रियां ददर्श काले दिवमभ्रितामिव।।१२।।

ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैरसूर्यगैः सूचितभाग्यसम्पदम् ।
असूत पुत्रं समये शचीसमा त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम्।।१३।।

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्।।१४।।

आरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा ।
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो बभूवुरालेख्यसमर्पिता इव ।।१५।।

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसम्मिताक्षरम् ।
अदेयमासीत् त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ।।१६।।

९. राजा ने अपनी गर्भवती रानी को समुद्रवसना रत्नगर्भा पृथ्वी, अन्तर में आग छिपाये शमी और भीतर विद्यमान धारावाली सरस्वती नदी के समान माना।

१०. उस धीर राजा ने अपनी प्रिय रानी के स्नेह, मन की उदारता, अपनी भुजाओं की सामर्थ्य से अर्जित की गई संपदा और अपने धैर्य के अनुरूप नियम के अनुसार एक के बाद एक पुंसवन आदि संस्कार किये।

११. घर में आने पर लोकपालों के अंशों से निर्मित गर्भ के भार के कारण प्रयत्नपूर्वक अपन आसन को छोड़ने वाली, उसके सम्मान में हाथ जोड़ने में थक हुए हाथों वाली, सजल नेत्र रानी को देखकर राजा को बड़ा आनन्द होता था।

१२. इसके बाद बालचिकित्सा में कुशल और प्रामाणिक वैद्यों द्वारा गर्भ का भलीभांति पोषण हो जान पर पति ने बड़े भरोसे के साथ शीघ्र ही पुत्र को जन्म देने वाली अपनी प्रिय पत्नी को बादलों से भर आकाश क रूप में दखा।

१३. इसके अनन्तर इन्द्राणी के समान सुदक्षिणा ने प्रसूति का समय आ जाने पर सूर्य के कारण अस्तमय योग से रहित ऊंचे स्थान में बैठे हुए पांच ग्रहों स भाग्य की संपदा को बताने वाले पुत्र को उसी प्रकार जन्म दिया जिस प्रकार प्रभाव, उत्साह और मंत्रज तीन साधनों वाली शक्ति अविनाशी संपदा को जन्म देती है।

१४. उस समय दिशाएं प्रसन्न हो गईं, मनोहर हवा बहने लगी, अग्नि ने विशेष रूप से अनुकूल होकर होम की गई सामग्री को ग्रहण किया और सब बात शुभ सूचक हुइं। ऐसे लोगों का जन्म लोकमात्र के कल्याण क लिये ही होता है।

१५. उस शुभ जन्म वाले बालक की प्रसूतिगृह की शय्या के चारों ओर फैलने वाले अपने तेज से रात के दीपक एकाएक ऐसे तजहीन हो गये मानों उन्हें किसी चित्र में अंकित किया गया हो।

१६. राजा दिलीप के पास अमृत के समान अक्षर वाले पुत्र जन्म का संदेश देने वाले अन्तःपुर क लोगों को देने के लिये केवल तीन वस्तुएं ही न देने योग्य रह गई थीं–चन्द्रमा क समान शोभा वाला छत्र और दोनों चंवर।

निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम् ।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद् गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि ।।१७।।

स जातकर्मण्यखिले तपस्विना तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते ।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ ।।१८।।

सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ।।१९।।

न संयतस्तस्य बभूव रक्षितुर्विसर्जयेद्यं सुतजन्महर्षितः ।
ऋणाभिधानात्स्वयमेव केवलं तदा पितॄणाँ मुमुचे सबन्धनात् ।।२०।।

श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषाँ युधि चेति पार्थिवः ।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसम्भवम् ।।२१।।

पितुः प्रयत्नात्स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने ।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ।।२२।।

उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ।।२३।।

रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम् ।
विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत ।।२४।।
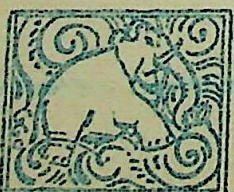
१७. निष्कम्प विकसित कमल के समान नेत्रों से सुन्दर पुत्र के मुख को प्यास भरी दृष्टि से देखते हुए राजा का महान् हर्ष उसी प्रकार अपने में नहीं समा सका जैसे चन्द्रमा को देखकर महासागर का ज्वार।

१८. तपोवन से आकर तपस्वी पुरोहित द्वारा समस्त जातकर्म संस्कार किये जाने पर मणि की खान से उत्पन्न राजा दिलीप का वह पुत्र संस्कार संपन्न हो और भी अधिक तेजस्वी हो गया।

१९. कानों को सुख देने वाल मंगल वाद्य का शब्द, नृत्य करने वाली स्त्रियों के आनन्द दायक नृत्यों के साथ सुदक्षिणा के पति राजा दिलीप के निवास में ही नहीं अपितु स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं क मार्ग में भी फल गया।

२०. प्रजा की रक्षा करने वाले उन राजा दिलीप का कोई ऐसा बन्दी नहीं था जिसे पुत्र जन्म से हर्षित होकर वे मुक्त करते। पितृऋण रूपी बन्धन में केवल वे ही बंधे हुए थे और वे भी उसस मुक्त हो गये।

२१. अर्थ के मर्म को समझने वाले राजा ने इस उद्देश्य से कि वह बालक शास्त्र में पारंगत होने के साथ ही युद्ध करने में शत्रुओं से आगे निकल जाय जाने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले लधि धातु के अर्थ का विचार करके उसका नाम रघु रखा।

२२. समस्त संपत्तियों के स्वामी राजा दिलीप के प्रयत्न से अपने मनो हर अंगों सहित रघु सुनहले घोड़ों वाले सूर्य की प्रभा के पीछे प्रवेश करने वाले बाल चन्द्रमा के समान दिनों दिन बढ़ने लगा।

२३. स्कन्द से जैसे उमा और वृषवाहन शिव तथा जयन्त से जैस शची और इन्द्र आनन्दित हुए उसी प्रकार स्कन्द और जयन्त के समान अपने पुत्र को पाकर राजा और रानी शिव तथा पार्वती और शची तथा इन्द्र के समान हर्षित हुए।

२४. चकवे के जोड़े के समान राजा और रानी का एक दूसरे पर आश्रित प्रेम अपने एकमात्र पुत्र के द्वारा बंट जाने पर भी एक दूसर के प्रति बढ़ गया।

उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम् ।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः ।।२५।।

तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि ।
उपान्तसंमीलितलोचनो नृपश्चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ ।।२६।।

अमंस्त चानेन परार्ध्यजन्मना स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्वयम् ।
स्वमूर्तिभेदेन गुणाग्र्यवर्तिना पतिः प्रजानामिव सर्गमात्मनः ।।२७।।

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः ।
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत् ।।२८।।

अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम् ।
अबन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति ।।२९।।

धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः क्रमाच्चतस्रश्चतुरर्णवोपमाः ।
ततार विद्याः पवनातिपातिभिर्दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः ।।३०।।

त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवीमशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत् ।
न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः ।।३१।।

महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव ।
रघुः क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः पुपोष गाम्भीर्यमनोहरं वपुः ।।३२।।

२५. वह शिशु जब अपनी धाय मां द्वारा बोला गया पहला शब्द बोला, उसकी उंगली पकड़ कर चला और नमस्कार करना सिखाने पर प्रणाम करने को झुका तो पिता को बहुत अधिक प्रसन्नता हुई।

२६. शरीर के स्पर्श से होने वाले सुख से मानों त्वचा में अमृत का सिंचन करते हुए अपने पुत्र को गोद में बैठाकर और पूर्णरूप से आंखें मूंदकर राजा ने पुत्र के स्पर्श से होने वाले आनन्द के मर्म का अनुभव किया।

२७. मर्यादा का पालन करने वाले उस राजा ने उत्कृष्ट जन्म वाले रघु से अपने कुल को उसी प्रकार प्रतिष्ठायुक्त माना जैसे प्रजापति ब्रह्मा ने अपने उत्कृष्ट गुणों से युक्त दूसरी मूर्ति विष्णु के रूप में अपनी उत्पत्ति को माना था।

२८. मुंडन कार्य संपन्न हो जाने पर हिलती हुई चोटियों वाले अपने समान वय के मंत्रियों के पुत्रों के साथ उसने भलीभांति लिपि का ज्ञान प्राप्त करके शब्द ज्ञान के क्षेत्र में इस प्रकार प्रवेश किया मानों नदी के मुहाने से वह समुद्र में जा पहुंचा हो।

२९. इसके बाद विधिपूर्वक यज्ञोपवीत होने के बाद गुरु के प्रिय इस रघु को विद्वान् गुरुओं ने शिक्षित किया। वे गुरु इसे शिक्षित करने में अथक प्रयत्न करते थे क्योंकि उचित पात्र को दी गई शिक्षा फलवती होती ही है।

३०. उत्कृष्ट बुद्धि वाले उस रघु ने बुद्धि के समस्त गुणों से चारों समुद्रों के समान चारों विद्याओं को क्रम से उसी प्रकार पार कर लिया जिस प्रकार पूर्व दिशा का स्वामी सूर्य अपने वेग से वायु को भी पीछे छोड़ जाने वाले अपने घोड़ों से चारों दिशाओं को पार करता है।

३१. उस रघु ने शुद्ध मृग के चर्म को पहनकर पिता से मंत्र सहित अस्त्र का ज्ञान ग्रहण किया। राजा दिलीप अद्वितीय राजा ही नहीं थे अपितु वे उस समय पृथ्वी पर अद्वितीय धनुषधारी भी थे।

३२. धीरे-धीरे शिशुता के स्थान में युवावस्था के आ जाने से रघु के गंभीरता से युक्त मनोहर शरीर की शोभा विशालकाय सांड बनने वाले बछड़े और हाथी की अवस्था को प्राप्त होने वाले हाथी के बच्चे के समान हो गई।

अथास्य गोदानविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्त्तयद्गुरुः ।
नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य सत्पतिं तमोनुदं दक्षसुता इवाबभुः ।।३३।।

युवा युगव्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः ।
वपुः प्रकर्षादजयद् गुरुं रघुस्तथाऽपि नीचैर्विनयाददृश्यत ।।३४।।

ततः प्रजानां चिरमात्मनां धृतां नितान्तगुर्वीं लघयिष्यता धुरम् ।
निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक् ।।३५।।

नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं तदास्पदं श्रीर्युवराजसंज्ञितम् ।
अगच्छदंशेन गुणाभिलाषिणी नवावतारं कमलादिवोत्पलम्।।३६।।

विभावसुः सारथिनेव वायुना घनव्यपायेन गभस्तिमानिव ।
बभूव तेनातितरां सुदुःसहः कटप्रभेदेन करीव पार्थिवः ।।३७।।

नियुज्य तं होमतुरङ्गरक्षणे धनुर्धरं राजसुतैरनुद्रुतम् ।
अपूर्णमेकेन शतक्रतूपमः शतं क्रतूनामपविघ्नमाप सः ।।३८।।

ततः परं तेन मखाय यज्वना तुरङ्गमुत्सृष्टमनर्गलं पुनः ।
धनुर्भृतामग्रत एव रक्षिणां जहार शक्रः किल गूढविग्रहः ।।३९।।

विषादलुप्तप्रतिपत्ति विस्मितं कुमारसैन्यं सपदि स्थितं च तत् ।
वसिष्ठधेनुश्च यदृच्छयाऽऽगता श्रुतप्रभावा ददृशेऽथ नन्दिनी ।।४०।।

३३. इसके बाद गोदान अथवा केशांत की विधि सपन्न हो जाने पर उसके पिता राजा दिलीप ने उसका विवाह कराया। अच्छ पति को प्राप्त करके राजकुमारियां इस प्रकार शोभित हुईं जैसे चन्द्रमा को प्राप्त करके दक्ष की कन्या।

३४. जुए के समान फैली हुई भुजाओं वाले, बलवान कंधों वाले, किवाड़ के समान चौड़ी छाती वाले और सुन्दर ग्रीवा वाले युवा रघु ने अपने शरीर की उन्नति स पिता को भी जीत लिया था फिर भी नम्रता के कारण वह उनसे छोटा मालूम होता था।

३५. इसके अनन्तर देर तक धारण किये गये अत्यन्त भारी प्रजा की धुरी को हल्का करत हुए राजा दिलीप ने स्वभाव और संस्कार स विनीत देखकर उस युवराज का पद प्रदान किया।

३६. गुणों को चाहने वाली राजलक्ष्मी ने राजा के प्रधान स्थान के बाद युवराज कहलाने वाले उसके स्थान को पुरान कमल क बाद नये निकल हुए कमल क समान अंश रूप में अपनाया।

३७. सहायक वायु से युक्त अग्नि, मेघमुक्त सूर्य और नये मदमाते हाथी के समान राजा दिलीप रघु के साथ अत्यन्त दुःसह हो उठ।

३८. राजकुमारों से युक्त उस धनुषधारी रघु को यज्ञ के घोड़े की रक्षा पर नियुक्त करके इन्द्र से समता करने वाले राजा दिलीप न सौ से एक ही कम निन्यानवे यज्ञों को निर्विघ्न होकर पूरा किया।

३९. इसके बाद निन्यानवे यज्ञ पूर्ण करके विधिपूर्वक यज्ञ करने वाले उस राजा ने फिर स यज्ञ करने के लिय घोड़े को बन्धन रहित करके छोड़ा रक्षक धनुषधारियों के देखते ही दखत इन्द्र ने अपने शरीर को छिपाकर उसे चुरा लिया।

४०. तब अपने प्रभाव के कारण प्रसिद्ध, अपनी इच्छा से आई हुई विसष्ठ की गाय नन्दिनी ने कुमार की उस सेना को देखा जिसका कर्त्तव्यज्ञान विषाद के कारण लुप्त हो गया था और जो घोड़े के चले जाने से चकराई हुई खड़ी थी।

तदङ्गनिस्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम् ।
अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो बभूव भावेषु दिलीपनन्दनः ॥४१॥

स पूर्वतः पर्वतपक्षशातनं ददर्श देवं नरदेवसम्भवः :
पुनः पुनः सूतनिषिद्धचापलं हरन्तमश्वं रथरश्मिसंयतम् ॥४२॥

शतैस्तमक्ष्णामनिमेषवृत्तिभिर्हरिं विदित्वा हरिभिश्च वाजिभिः ।
अवोचदेनं गगनस्पृशा रघुः स्वरेण धीरेण निवर्त्तयन्निव ॥४३॥

मखांशभाजां प्रथमो मनीषिभिस्त्वमेव देवेन्द्र ! सदा निगद्यसे ।
अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय कथं प्रवर्त्तसे ॥४४॥

त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विषस्त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा ।
स चेत्स्वयंकर्मसु धर्मचारिणां त्वमन्तरायो भवसि च्युतोविधिः॥४५॥

तदङ्गमग्र्यं मघवन्महाक्रतोरमुं तुरङ्गं प्रतिमोक्तुमर्हसि ।
पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् ॥४६॥

इति प्रगल्भं रघुणा समीरितं वचो निशम्याधिपतिर्दिवौकसाम् ।
निवर्तयामास रथं सविस्मयः प्रचक्रमे च प्रतिवक्तुमत्तरम् ॥४७॥

यदात्थ राजन्यकुमार ! तत्तथा यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः ।
जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः ॥४८॥

४१. सज्जनों द्वारा पुरस्कृत दिलीप के पुत्र रघु ने उसके अंग से निकले हुए पवित्र जल से अपने नेत्रों को धोया इससे उसमें ऐसी शक्ति आ गई कि वह इन्द्रियों से अगम्य वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करने में भी समर्थ हो गया।

४२. मनुष्यों में देवता के समान राजा दिलीप क पुत्र उस राजकुमार रघु ने पर्वतों का पंख काटने वाले इन्द्र को पूर्व दिशा में देखा जो उस घोड़े को चुराकर लिये जा रहा था जिसकी चंचलता को सारथी बार-बार रोक देता था तथा जो रथ की रस्सी से बंधा हुआ था।

४३. रघु ने सौ अपलक आंखों और कपिल रंग के घोड़ों से यह जान लिया कि वे इन्द्र हैं और गगन भेदी गंभीर स्वर से मानो उन्हें लौटाते हुए उनसे कहा।

४४. हे देवताओं के राजा इन्द्र, विचारक लोग कहते हैं कि यज्ञ का भाग लेने वालों में आपका स्थान प्रमुख है फिर नित्य ही अनुष्ठान में लगे रहने वाले मेरे पिता के कार्य में आप क्यों विघ्न डाल रहे हैं?

४५. दिव्य दृष्टि से युक्त आप तीनों लोकों के स्वामी हैं और यज्ञों का विरोध करने वालों को दंडित करना आपका काम है। वही आप यदि धर्म का आचरण करने वालों के काम में विघ्न बनकर उपस्थित हों तो अनुष्ठान खण्डित होगा ही।

४६. हे मघवा इन्द्र, इसलिये आप इस अश्वमेध महामेज्ञ के श्रेष्ठ अंग इस घोड़े को छोड़ दीजिये। वेद क मार्ग को बताने वाले महान् देवता लोग मलिन मार्ग को नहीं अपनाते।

४७. इस प्रकार रघु द्वारा बोले गये प्रौढ़ वचन को सुनकर देवताओं के स्वामी इन्द्र विस्मय में पड़ गये। उन्होंने अपने रथ को लौटाया और उत्तर देनें लगे।

४८. हे क्षत्रिय कुमार, तुम जो कहते हो बात वही सही है,किंतु हमारे जैसे यज्ञ के धनी लोगों को अपन शत्रुओं से अपने यश की रक्षा करनी ही पड़ती है। तुम्हारे पित। यज्ञ करके संसार भर में विख्यात मेरे संपूर्ण यश का तिरस्कार करनें के लिय तत्पर हैं।

हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः ।
तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं द्वितीयगामी नहि शब्द एष नः ।।४९।।

अतोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा पितुस्त्वदीयस्य मयाऽपहारितः ।
अलं प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः पदं पदव्यां सगरस्य सन्ततेः ।।५०।।

ततः प्रहस्यापभयः पुरन्दरं पुनर्बभाषे तुरगस्य रक्षिता ।
गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान् ।।५१।।

स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम् ।
अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः ।।५२।।

रघोरवष्टम्भमयेन पत्त्रिणा हृदि क्षतो गोत्रभिदप्यमर्षणः ।
नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने धनुष्यमोघं समधत्त सायकम् ।।५३।।

दिलीपसूनोः स बृहद्भुजान्तरं प्रविश्य भीमासुरशोणितोचितः ।
पपावनास्वादितपूर्वमाशुगः कुतूहलेनेव मनुष्यशोणितम् ।।५४।।

हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ ।
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनामचिह्नं निचखान सायकम् ।।५५।।

जहार चान्येन मयूरपत्त्रिणा शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम् ।
चुकोप तस्मै स भृशं सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव ।।५६।।

४९. जिस प्रकार एकमात्र विष्णु ही पुरुषोत्तम कहलाते हैं और शिव को ही त्र्यम्बक कहा जाता है दूसरे किसी को नहीं, उसी प्रकार मुनि लोग मुझे शतक्रतु नाम से जानते हैं। ये शब्द दूसरों के लिये प्रयोग में नहीं लाये जा सकते।

५०. इसीलिये तुम्हारे पिता के इस घोड़े का मैंने अपहरण किया है। तुम मुझे कपिल मुनि के समान ही समझो और व्यर्थ प्रयत्न करके राजा सगर की संतान की दशा को प्राप्त होने के लिये अपना पैर न बढ़ाओ।

५१. इसके बाद घोड़े के रक्षक रघु ने हंसकर निर्भीक मन से फिर इन्द्र से कहा, हे देवेन्द्र, यदि आपका निश्चय ऐसा ही है तो हाथ में हथियार लीजिये। रघु को जीते बिना आप सफल नहीं हो सकते।

५२. यह कहकर रघु ने इन्द्र की ओर मुंह उठाकर धनुष पर बाण चढ़ाया और अत्यन्त सुन्दर आलीढ नाम मुद्रा से अपने शरीर को उसने मोड़ा जिससे उसकी शोभा पिनाकधारी शिव से भी बढ़ गई।

५३. रघु के स्तम्भ के समान बाण से हृदय पर चोट पड़ते ही पर्वतों को खंडित करने वाले इन्द्र ने भी क्रुद्ध होकर नये बादलों के समूह पर क्षण भर के लिये लक्षित होने वाले अपने धनुष पर अचूक बाण चढ़ाया।

५४. भयंकर राक्षसों के रक्त से परिचित उस बाण ने दिलीप के पुत्र रघु की विशाल छाती में प्रवेश करके पहले न चखे गये मनुष्य के रक्त का कौतूहल कसाथ पान किया।

५५. स्कन्द के समान पराक्रमी राजकुमार रघु ने ऐरावत को चलानें से कर्कश उंगलियों वाली और शची के मुख पर बने हुए फूल पत्तों की छाप अंकित इन्द्र की भुजा में अपने नाम से अंकित बाण गड़ा दिया।

५६. दूसरे मयूर के पंख वाले बाण से उसने इन्द्र के विशाल वज्ररूपी ध्वजा को काट दिया। इन्द्र ने इसे देवताओं की लक्ष्मी के केश को बलपूर्वक काटने जैसा मानकर उस पर बहुत क्रोध किया।

तयोरुपान्तस्थितसिद्धसैनिकं गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः ।
बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणोरधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च पत्रिभिः ।।५७।।

अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिस्तमाश्रयं दुष्प्रसहस्य तेजसः ।
शशाक निर्वापयितुं न वासवःस्वतश्च्युतं वह्निं मिवाद्भिरम्बुदः ५८।।

ततः प्रकोष्ठे हरिचन्दनाङ्किते प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम् ।
रघुः शशाङ्कार्द्धमुखेन पत्रिणा शरासनज्यामलुनाद्विडौजसः।।५९।।

स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः प्रणाशनाय प्रबलस्य विद्विषः ।
महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे ।।६०।।

रघुर्भृशं वक्षसि तेन ताडितः पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः ।
निमेष मात्रादवधूय तद्व्यथां सहोत्थितः सैनिकहर्षनिस्वनैः ।।६१।।

तथाऽपि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुषः ।
तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ।।६२।।

असङ्गमद्रिष्वपि सारवत्तया न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम् ।
अवेहि मां प्रीतमृते तुरङ्गमात्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासवः ।।६३

ततो निषङ्गादसमग्रमुद्धृतं सुवर्णपुङ्खद्युतिरञ्जिताङ्गुलिम् ।
नरेन्द्रसूनुः प्रतिसंहरन्निषुं प्रियंवदः प्रत्यवदत्सुरेश्वरम् ।।६४।।

५७. गरुड़ और सर्प के समान भयंकर दिखायी देने वाले ऊपर और नीचे मुंह किये हुए बाणों से विजय के अभिलाषी इन्द्र और रघु दोनों का घोर युद्ध हुआ। उस समय उनके पास ही सिद्ध और सैनिक चुपचाप खड़े थे।

५८. निरन्तर और लगातार फेंके गये अस्त्रों की वर्षा से अत्यन्त असह्य तेज वाले रघु को रोकने में इन्द्र उसी प्रकार असफल हो गये जैसे मेघ अपने से ही निकली हुई बिजली रूपी आग को पानी से नहीं बुझा पाता।

५९. इसके बाद चन्दन चर्चित कलाई पर मथे जाते हुए समुद्र की नाईं गम्भीर शब्द करने वाली इन्द्र के धनुष की रस्सी को रघु न अर्द्धचन्द्र की आकृति के फलक वाल बाण स काट डाला।

६०. इससे इन्द्र का विरोधभाव बढ़ गया और उन्होंने अपने प्रबल शत्रु का विनाश करने के लिये धनुष को छोड़कर पर्वतों के पंखों को काटने में पटु और फैलती हुई प्रभामंडल वाले अस्त्र वज्र को हाथ में लिया।

६१. उससे छाती पर गहरी चोट लगने से रघु सैनिकों के आंसुओं के साथ ही भूमि पर गिर पड़े परन्तु पल भर में ही अपनी व्यथा की उपेक्षा करके वे सैनिकों की हर्ष-ध्वनि के साथ ही उठ खड़ हुए।

६२. वज्र की चोट खाकर भी शस्त्रों के व्यवहार से निष्ठुर बनी शत्रुता की भावना को देर तक निभाने वाले रघु की अतिशय वीरता से वृत्र को मारने वाल इन्द्र को संतोष ही हुआ। क्योंकि गुण अपने लिये सर्वत्र स्थान बना ही लतें हैं।

६३. इन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा, अत्यन्त प्रबल होने के कारण पर्वतों पर भी मुक्त होकर मार करने वाले मेरे अस्त्र को तुम्हें छोड़कर किसी और ने सहन नहीं किया है। मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि मैं तुम पर प्रसन्न हूं। घोड़े के अतिरिक्त तुम और क्या चाहते हो।

६४. इसके अनन्तर तर्कश से आधे निकाले गये, सोने के पंख की प्रभा से उंगलियों को प्रभायुक्त करने वाले बाण को फिर से वापस रखते हुए राजकुमार ने दवताओं क स्वामी इन्द्र को उत्तर दिया।

अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो ततः समाप्ते विधिनैव कर्मणि ।
अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम् ।।६५।।

यथा च वृत्तान्तमिमं सदोगतस्त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः ।
तवैव संदेशहराद्विशांपतिः शृणोति लोकेश तथा विधीयताम् ।।६६।।

तथेति कामं प्रतिशुश्रुवान् रघोर्यथाऽऽगतं मातलिसारथिर्ययौ ।
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं सुदक्षिणासूनुरपि न्यवर्त्तत ।।६७।।

तमभ्यनन्दत्प्रथमं प्रबोधितः प्रजेश्वरः शासनहारिणा हरेः ।
परामृशन्हर्षजडेन पाणिना तदीयमङ्गं कुलिशव्रणाङ्कितम् ।।६८।।

इति क्षितीशो नवतिं नवाधिकां महाक्रतूनां महनीयशासनः ।
समारुरुक्षुर्दिवमायुषः क्षये ततान सोपानपरम्परामिव ।।६९।।

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ।।७०।।

---

६५. हे प्रभु, यदि आप यह मानते हैं कि यह घोड़ा नहीं छोड़ा जा सकता तो निरन्तर यज्ञ में प्रयत्नशील मेरे पिता विधिपूर्वक यज्ञ की समाप्ति होने पर यज्ञ का जो फल होता है उसे पूर्ण रूप से प्राप्त करें।

६६. घर जाने पर शिवजी के एक अंश होने के कारण मुझ जैसे व्यक्ति क लिये कठिनाई से प्राप्त होने वाले प्रजा के स्वामी राजा दिलीप आपके संवाद वाहक से ही इस वृत्तांत को सुनें। हे लोकों के स्वामी इन्द्र, आप ऐसी व्यवस्था करें।

६७. मातलि नामक सारथी वाले इन्द्र ने यह वचन दिया कि रघु की इच्छा पूरी होगी और वे जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। सुदक्षिणा के पुत्र रघु भी राजमहल में लौटे पर उनका मन बहुत अधिक हर्षित नहीं था।

६८. इन्द्र का संदेश लाने वाले व्यक्ति से पहले ही संवाद पाने वाले प्रजा के स्वामी राजा दिलीप ने अपने हर्ष के कारण शिथिल हाथों से बज्र के घाव से अंकित रघु के शरीर को स्पर्श करते हुए उसका अभिनन्दन किया।

६९. पूजनीय आज्ञा वाले राजा ने इस प्रकार आयु समाप्त होने पर स्वर्गारोहण की इच्छा से मानो निन्यानवे अश्वमधों की सीढ़ियों की परम्परा लगा दी।

७०. इसके बाद विषयों से चित्त की निवृत्ति हो जाने पर राजा दिलीप ने विधिपूर्वक युवा पुत्र को श्वेत छत्र के रूप में राज्य चिह्न देकर रानी सुदक्षिणा के साथ मुनियों के वन के वृक्षों की छाया में आश्रय लिया। यौवन की समाप्ति पर इक्ष्वाकुवंश क लोगों के लिये यही कुलव्रत होता है।

चतुर्थ सर्ग

स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ ।
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः ।।१।।

दिलीपानन्तरं राज्ये तं निशम्य प्रतिष्ठितम् ।
पूर्वं प्रधूमितो राज्ञां हृदयेऽग्निरिवोत्थितः ।।२।।

पुरुहूतध्वजस्येव तस्योन्नयनपङ्क्तयः ।
नवाभ्युत्थानदर्शिन्यो ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः ।।३।।

सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना ।
तेन सिंहासनं पित्र्यमखिलं चारिमण्डलम् ।।४।।

छायामण्डललक्ष्येण तमदृश्या किल स्वयम् ।
पद्मा पद्मातपत्रेण भेजे साम्राज्यदीक्षितम् ।।५।।

परिकल्पितसान्निध्या काले काले च बन्दिषु ।
स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती ।।६।।

मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्भुक्ता यद्यपि राजभिः ।
तथाऽप्यनन्यपूर्वेव तस्मिन्नासीद्वसुन्धरा ।।७।।

स हि सर्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मनः ।
आददे नातिशीतोष्णो नभस्वानिव दक्षिणः ।।८।।
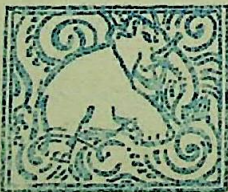
चौथा सर्ग

१. वह रघु पिता द्वारा दिये गये राज्य को प्राप्त करके सायंकाल सूर्य द्वारा दिये गय तेज को प्राप्त करनेवाले अग्नि के समान अधिक शोभायमान हुआ।

२. दिलीप के बाद रघु राज्य के स्वामी बने हैं, यह सुनकर राजाओं के हृदय में पहले जो धुआं-सा उठ रहा था वह अग्नि की तरह जल उठा।

३. इन्द्र-ध्वज के समान उस रघु की नई उन्नति को ऊपर आखें उठाकर देखने वाली उसकी सन्तान सहित प्रजा आनन्दित हुई।

४. हाथी की चाल से चलने वाले रघु ने दो वस्तुओं पर एकसाथ ही अपना पैर रक्खा—एक तो अपने पिता का सिंहासन और दूसरा समस्त शत्रुओं का समूह।

५. लक्ष्मी स्वयं अदृश्य होकर भी प्रभामंडल से दिखाई देनेवाले अपने कमल का छत्र लेकर साम्राज्य के अभिषेक से युक्त रघु की सेवा में उपस्थित हुई।

६. और सरस्वती ने समय-समय पर बन्दीजनों के पास रहकर स्तुति के अधिकारी रघु को सारगर्भित स्तुतियों से सम्मानित किया।

७. यद्यपि मनु के समय से ही बन्दनीय राजाओं ने इस पृथ्वी का भोग किया था, फिर भी इस राजा के राज्य में वह ऐसी जान पड़ी, जैसे पहले किसी नें उसका उपभोग न किया हो।

८. रघु ने अपराध के अनुसार ही दण्ड देकर दक्षिण की समशीतोष्ण वायु के समान सबका मन हर लिया

मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ ।
फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः ॥९॥

नयविद्भिर्नवे राज्ञि सदसच्चोपदर्शितम् ।
पूर्व एवाभवत्पक्षस्तस्मिन्नाभवदुत्तरः ॥१०॥

पञ्चानामपि भूतानामुत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः ।
नवे तस्मिन्महीपाले सर्वं नवमिवाभवत् ॥११॥

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥१२॥

कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने ।
चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना ॥१३॥

लब्धप्रशमनस्वस्थमथैनं समुपस्थिता ।
पार्थिवश्रीर्द्वितीयेव शरत्पङ्कजलक्षणा ॥१४॥

निर्वृष्टलघुभिर्मेघैर्मुक्तवर्त्मा सुदुःसहः ।
प्रतापस्तस्य भानोश्च युगपद्व्यानशे दिशः ॥१५॥

वार्षिकं संजहारेन्द्रो धनुर्जैत्रं रघुर्दधौ ।
प्रजार्थसाधने तौ हि पर्यायोद्यतकार्मुकौ ॥१६॥

९. रघु ने गुणों की अधिकता से दिलीप के विषय में प्रजा की उत्कण्ठा उसी प्रकार कम कर दी जैसे आम का फल आने पर फूल के प्रति उत्सुकता नहीं रह जाती ।

१०. नीतिशास्त्र के विद्वानों ने उस नये राजा को धर्मयुक्त और अधर्मयुक्त दोनों ही प्रकार की नीतियां बताईं परन्तु राजा ने धर्मयुक्त नीति को ही अपनाया, अधर्मयुक्त नीति को नहीं ।

११. उस नये राजा के आने पर पंचमहाभूतों के गुणों का भी उत्कर्ष हुआ और इस प्रकार सारी वस्तुएं नई सी हो गईं ।

१२. जैसे आह्लाद उत्पन्न करने के कारण चन्द्रमा को चन्द्रमा और प्रताप के कारण अग्नि को तपन कहा जाता है, उसी प्रकार प्रजा को प्रसन्न करने के कारण उसका राजा कहलाना सार्थक हुआ ।

१३. रघु के नेत्र काफी वड़े और कान तक फैले हुए थे पर वे अपने कर्त्तव्यों के सूक्ष्मतर अर्थों को देखने वाले अपने शास्त्र-ज्ञान में ही अपनी आंखों की सफलता मानते थ ।

१४. प्राप्त राज्य में शत्रुओं का नाश करके स्वस्थ होने पर राजा रघु के सामने कमलों के चिन्ह वाली शरद् ऋतु दूसरी राज्यलक्ष्मी के समान उपस्थित हुई ।

१५. पानी बिल्कुल बरस जाने के कारण छोटे-छोटे टुकड़ों में बटें मेघों द्वारा मार्ग छोड़कर हट जाने से बड़ी कठिनाई से सहने योग्य राजा रघु और सूर्य का प्रताप एक साथ ही दिशाओं में व्याप्त हो गया ।

१६ एक ओर इन्द्र ने अपने वर्षाकालीन धनुष को रख दिया और दूसरी ओर रघु ने अपने विजयी धनुष को धारण किया क्योंकि वे दोनों ही प्रजा का हित करने में एक के बाद एक समान रूप से अपने धनुष को तैयार रखते थे ।

पुण्डरीकातपत्रस्तं विकसत्काशचामरः ।
ऋतुर्विडम्बयामास न पुनः प्राप तच्छ्रियम् ।।१७।।

प्रसादसुमुखे तस्मिंश्चन्द्रे च विशदप्रभे ।
तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसाद्वयोः ।।१८।।

हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु ।
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव ।।१९।।

इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ।
आकुमारकथोद्धातं शालिगोप्योजगुर्यशः ।।२०।।

प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः ।
रघोरभिभवाशङ्कि चुक्षुभे द्विषतां मनः ।।२१।।

मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलमुद्रुजाः ।
लीलाखेलमनुप्रापुर्महोक्षास्तस्य विक्रमम् ।।२२।।

प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहताः ।
असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्रुवुः ।।२३।।

सरितः कुर्वती गाधाः पथश्चाश्यानकर्दमान् ।
यात्रायै चोदयामास तं शक्तेः प्रथमं शरत् ।।२४।।

१७. सफेद कमल का छत्र और फूले हुए कांस का चंवर धारण करके शरद् ऋतु ने रघु का अनुकरण तो किया किन्तु उसकी शोभा को न पा सका ।

१८. प्रसन्नता के कारण सुन्दर मुख वाले राजा रघु और निर्मल कान्ति वाले चन्द्रमा दोनों के प्रति उस समय आंखवालों का प्रेम समान रूप से आनन्द-दायक था ।

१९. हंसों की पंक्तियों में, नक्षत्रों में और कुमुद के फूलों से भरे हुए जलाशयों में रघु के यश का ऐश्वर्य ही मानो फैला हुआ था ।

२०. गन्ने की छाया में बैठी हुई धान की रखवाली करने वाली स्त्रियां अपनी रक्षा करने वाले राजा के गुणों के विकास की कथा का गान उसके कुमारावस्था से आरम्भ करके गाती थीं ।

२१. महाप्रतापी अगस्त्य के उदय से जल निर्मल हो गया और रघु के उदय से अपने पतन की आशंका के कारण उसके शत्रुओं का मन क्षुब्ध हो कर मलिन हो गया ।

२२. नदियों के किनारों को खोदने वाले मद से मतवाले, कांधोर वाले बड़े-बड़े सांडों ने खेल ही में दिखाये गये शौर्य का अनुकरण किया ।

२३. मद के समान गन्ध बिखेरने वाले सप्तपर्ण के फूलों से प्रताड़ित रघु के हाथियों ने भी मानों प्रतियोगी बनकर सात धाराओं में मदस्राव आरंभ कर दिया ।

२४. नदियों को पार करने में सरल बनाती हुई और मार्ग के कीचड़ को सुखाती हुई शरद् ऋतु ने रघु को उत्साह भरी पहली यात्रा के लिय प्रेरित किया ।

तस्मै सम्यग्घुतो वह्निर्वाजिनीराजनाविधौ ।
प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेनेव जयं ददौ ।।२५।।

स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः ।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ।।२६।।

अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः ।
पृषतैर्मन्दरोद्धूतैः क्षीरोर्मय इवाच्युतम् ।।२७।।

स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा ।
अहिताननिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः ।।२८।।

रजोभिः स्यन्दनोद्धूतैर्गजैश्च घनसन्निभैः ।
भुवस्तलमिव व्योम कुर्वन् व्योमेव भूतलम् ।।२९।।

प्रतापोग्रे ततः शब्दः परागस्तदनन्तरम् ।
ययौ पश्चाद्रथादीति चतुःस्कन्धेव सा चमूः ।।३०।।

मरुपृष्ठान्युदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः ।
विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः ।।३१।।

स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम् ।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः ।।३२।।

२५. घोड़ों के नीराजन विधि में भलीभांति होम की गई अग्नि ने दाहिनी ओर जाने वाली लपट के बहाने मानों हाथ से ही उन्हें विजय दे दी।

२६. पृष्ठवर्त्ती शत्रुओं का शमन कर, राजधानी और सीमावर्ती दुर्गों की रक्षा की व्यवस्था कर तथा इष्ट देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करके छ: प्रकार की सेना क साथ रघु ने दिग्विजय के लिये प्रस्थान किया।

२७. दिग्विजय को जाते हुए रघु पर नगर की वृद्धा स्त्रियों ने उसी प्रकार खीलें बरसायीं जैसे क्षीरसागर की लहरों ने भगवान विष्णु पर मन्दराचल से उठी हुई दूध की बून्दों की वर्षा की थी।

२८. हवा में फहराती हुई पताकाओं से शत्रुओं को भयभीत करते हुए पहले वे इन्द्र के समान पूर्व दिशा की ओर गये।

२९. रथों से उड़ी धूल से आकाश को पृथ्वीतल के समान और मेघ जैसे हाथियों स पृथ्वीतल को आकाश के समान बनाते हुए वे आगे बढ़े।

३०. सबसे पहले उग्र प्रताप, उसके बाद कोलाहल, फिर धूल और सबसे पीछे रथ आदि चले। इस प्रकार उनकी सेना चतुरंगिनी-सी होकर चली।

३१. शक्तिशाली रघु ने मरुभूमि को जल से युक्त, नावों से पार करने लायक नदियों को सुख से पार करने योग्य तथा वनों को प्रकाशयुक्त कर दिया।

३२. पूर्व सागर की ओर जानेवाली विशाल सेना को ले जाते हुए रघु ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे शंकर जी की जटा से निकली गंगा को पूर्व सागर की ओर ले जाते हुए भगीरथ।

त्याजितैः फलमुत्खातैर्भग्नैश्च बहुधा नृपैः ।
तस्यासीदुल्बणो मार्गः पादपैरिव दन्तिनः ।।३३।।

पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी ।
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः ।।३४।।

अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव ।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम् ।।३५।।

वङ्गानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान् ।
निचखान जयस्तम्भान् गङ्गास्रोतोऽन्तरेषु सः ।।३६।।

आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम् ।
फलैः संवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः ।।३७।।

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः ।
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ ।।३८।।

स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत् ।
अङ्कुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः ।।३९।।

प्रतिजग्राह कालिङ्गस्तमस्त्रैर्गजसाधनः ।
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वतः ।।४०।।

३३. करों के लाभ से वंचित हो जाने, राज्य से उखाड़ फेंके जाने और धिकांश राजाओं के युद्ध में नष्ट-भ्रष्ट हो जाने से रघु का मार्ग इसी प्रकार प्रशस्त हो गया जिस प्रकार वृक्षों के फल गिरा दिये जाने, उनके उखाड़ फेंके जाने तथा उनके तहस-नहस कर दिये जाने से हाथी का मार्ग साफ हो जाता है।

३४. इस प्रकार विजेता रघु पूर्व दिशा के अनेक जनपदों को जीतते हुए ताड़ के वनों के कारण श्यामवर्ण के दिखाई देनेवाले समुद्र तट पर पहुंचे।

३५. उद्दण्ड राजाओं का उन्मूलन करने वाले राजा रघु के सामने सुह्म देश के राजाओं ने नदी के वेग में बेत के समान झुकने की वैतसी नीति अपनाकर अपनी रक्षा की।

३६. सेनानी रघु ने नावों द्वारा युद्ध करने को तत्पर वंग देश के राजाओं का अपनी शक्ति से दर्प चूर्ण कर गंगा की धारा के बीच में स्थित द्वीपों पर अपने विजयस्तम्भ स्थापित किये।

३७. वंगीय राजागण रोपे हुये धान की तरह रघु के पादपद्मों में झुक गये। राज्य छीनकर फिर से राजा बनाये जाने के कारण उन राजाओं ने उखाड़ कर फिर से रोपे गये धान के पौधों की तरह बहुत अधिक उपहार भेंट किये।

३८. हाथियों के पुल द्वारा कपिशा नदी को सेना सहित पार कर रघु उत्कल देश के राजाओं द्वारा बताये हुये मार्ग से कलिंग देश की ओर गये।

३९. रघु ने महेन्द्र पर्वत के शिखर में अपने प्रताप को इस तरह प्रविष्ट किया जैसे महावत अपने अंकुश को कठिनाई से चुभन अनुभव करनेवाले गंभीरवेदी हाथी के मस्तक में प्रविष्ट करता है।

४०. पर्वतों ने जिस प्रकार शिलाओं की वर्षा करके अपने पंख काटनेवाले इन्द्र का सामना किया था, उसी प्रकार कलिंग देश के राजा ने हाथियों से शस्त्रों की वर्षा कर रघु का सामना किया।

द्विषां विषह्य काकुत्स्थस्तत्र नाराचदुर्दिनम् ।
सन्मङ्गलस्नात इव प्रतिपेदे जयश्रियम् ।।४१।।

ताम्बूलानां दलैस्तत्र रचितापानभूमयः ।
नारिकेलासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः ।।४२।।

गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः ।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ।।४३।।

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना ।
अगस्त्याचरितामाशामनाशास्यजयो ययौ ।।४४।।

स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना ।
कावेरीं सरितां पत्युः शङ्कनीयामिवाकरोत् ।।४५।।

बलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः ।
मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः ।।४६।।

ससञ्जुरश्वक्षुण्णानामेलानामुत्पतिष्णवः ।
तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु फलरेणवः ।।४७।।

भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम् ।
नास्रसत्करिणां ग्रैवं त्रिपदीच्छेदिनामपि ।।४८।।

४१. रघु ने महन्द्र पर्वत पर शत्रुओं द्वारा चलाये गये नाराच नामक लोहे के बाणों की वर्षा को सहनकर विजयश्री को उसी प्रकार प्राप्त किया जैस मंगलस्नान करके राजा राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करता है।

४२. रघु के सैनिकों ने महेन्द्र पर्वत पर "पानस्थली बनाकर पान के पत्तों में भरकर नारियल के मद्य के साथ ही शत्रुओं की कीर्ति को पी लिया।

४३. धर्मविजयी राजा रघु ने महेन्द्र पर्वत के राजा को पकड़कर फिर छोड़ दिया। उन्होंने उससे केवल उसका राजकोष ही लिया, राज्य नहीं।

४४. इसके बाद फलों से लदे हुए सुपारी के वृक्षों की कतारों वाले समुद्र के किनारे वे अगस्त्य ऋषि से सेवित दक्षिण दिशा की ओर अनायास ही विजय प्राप्त करते हुए बढ़े।

४५. रघु ने सेना के अवगाहन के कारण कावेरी नदी को हाथियों के मद से सुवासित करके मानो, नदियों के स्वामी समुद्र के समक्ष अविश्वासपात्र बना दिया।

४६. विजयाभिलाषी राजा रघु के सैनिकों ने दक्षिण दिशा में कुछ दूर चलकर मलयाचल की उपत्यका में हारीत चिड़ियों से गुंजित मिर्च के वनों में डेरा डाला।

४६. घोड़ों के खुरों से रोंदी गई इलायची के फलों की धूल अपने समान सुगन्धिवाले मतवाले हाथियों के गण्डस्थल में चिपक गई।

४८. तीन पैरों को बांधनेवाली सांकलों को तोड़नेवाले हाथी भी सर्पों की लपेट से चन्दन के बृक्षों के बीच पड़ी हुई रेखाओं में बंधे हुए अपने गले के रस्सों को ढीला न कर सके।

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ।।४९।।

ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः ।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम् ।।५०।।

स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ ।।५१।।

असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता ।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत् ।।५२।।

तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतैः ।
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्णवः ।।५३।।

भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम् ।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः ।।५४।।

मुरलामारुतोद्धूतमगमत्कैतकं रजः ।
तद्योधवारबाणानामयत्नपटवासताम् ।।५५।।

अभ्यभूयत वाहानां चरतां गात्रशिञ्जितैः ।
वर्मभिः पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः ।।५६।।

४९. जिस दक्षिण दिशा में सूर्य का प्रताप भी मन्द पड़ जाता है, उसी दक्षिण दिशा क अधिपति पाण्ड्य देश के राजा लोग रघु का प्रताप सहन न कर सके।

५०. उन्होंने राजा रघु को प्रणाम करके ताम्रपर्णी तथा दक्षिण सागर के संगम से निकाले गए उत्तम मोतियों को अपने संचित यश की भांति समर्पित किया।

५१-५२. असह्य पराक्रमी रघु ने दक्षिण दिशा के स्तनों के समान, चन्दन चर्चित मलयाचल और दर्दुर पर्वत पर स्वेच्छानुसार विहार करके समुद्र से दूर पड़े हुए सह्याद्रि पर्वत को पार किया जो समुद्र रूपी वस्त्र के हट जाने से पृथ्वी के नितम्ब के समान दिखाई देता है।

५३. पश्चिम दिशा को जीतने के लिये सहयाद्रि के किनारे-किनारे जाती हुई रघु की सेना ऐसी शोभित हुई जैसे परशुराम द्वारा दूर हटाया गया समुद्र पुनः उस पर्वत को स्पर्श कर रहा हो।

५४. डर के मारे आभूषणों को छोड़कर भागनेवाली केरल की स्त्रियों के अलकों में कुंकुम आदि सुगन्धित द्रव्यों के स्थान पर रघु की सेना से उठी धूल भर गई।

५५. मुरला नाम की नदी के वायु से उड़ाये हुए केतकी पुष्प के रज ने रघु के योद्धाओं के कवचों को सुगन्धित करने में अनायास ही सुगन्धि चूर्ण का काम किया।

५६. चलते हुए घोड़ों के शरीरों पर खनखनाते हुए कवचों की ध्वनि ने वायु से हिलते हुए विशाल तालवृक्षों क वन की ध्वनि को तिरस्कृत कर दिया।

खर्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु ।
कटेषु करिणां पेतुः पुन्नागेभ्यः शिलीमुखाः ।।५७।।

अवकाशं किलोदन्वान्रामायाभ्यर्थितो ददौ
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ।।५८।।

मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणम् ।
त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकार सः ।।५९।।

पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ।।६०।।

यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः ।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः ।।६१।।

सङ्ग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः ।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत् ।।६२।।

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम् ।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव ।।६३।।

अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः ।
प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ।।६४।।
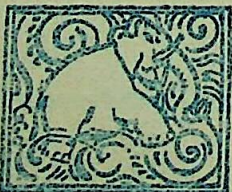
५७. खजूर के वृक्षों से बंधे हाथियों के गंडस्थलों पर नागकेसर के फूलों को छोड़कर भौंरे आ बैठे।

५८. जिस समुद्र ने मांगने पर परशुरामजी को रहने के लिये स्थान दिया था, उसी ने पश्चिम देश के राजाओं के माध्यम से रघु को कर दिया।

५९. रघु ने वहां त्रिकूट पर्वत को ही अपना ऊंचा विजयस्तम्भ बनाया, जिस पर उसके मतवाले हाथियों ने अपने दांतों से स्पष्ट रूप में उसके पराक्रम को अंकित कर दिया था।

६०. तदुपरान्त रघु ने पारसदेश के राजाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए स्थल मार्ग को उसी प्रकार पकड़ा जैसे संयमी इन्द्रिय नामधारी शत्रुओं को जीतने के लिये तत्वज्ञान का सहारा लेता है।

६१. उन्होंने यवन स्त्रियों के मुखकमलों पर मदिरापान से छाई लाली को उसी प्रकार सहन नहीं किया जैसे असमय में उठा हुआ बादल कमलों पर छायें हुये प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश को सहन नहीं करता।

६२. रघु एवं पश्चिम देश के घुड़सवार यवन राजाओं में ऐसा घोर संग्राम हुआ जिसमें उड़ी हुई धूल में प्रतिपक्षी योद्धाओं की पहचान धनुष की टंकार से ही होती थी।

६३. उन्होंने मधुमक्खियों से भरे मधु के छत्तों के समान दाढ़ी-मूछों से युक्त पारसी राजाओं के सिरों को भाले की अनी की तरह फलवाले बाणों से काटकर पृथ्वी को पाट दिया।

६४. युद्ध में मरने से बचे हुए राजा लोग अपने-अपने शिरस्त्राण उतारकर रघु की शरण में गये, क्योंकि महात्माओं का क्रोध प्रणाम करने मात्र से दूर हो जाता है।

विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ।।६५।।

ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम् ।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन्रसानिव ।।६६।।

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धांल्लग्नकुङ्कुमकेसरान् ।।६७।।

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ।।६८।।

काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः ।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः ।।६९।।

तेषां सदश्वभूयिष्ठास्तुङ्गा द्रविणराशयः ।
उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोसलेश्वरम् ।।७०।।

ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः ।
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभिः ।।७१।।

शशंस तुल्यसत्त्वानां सैन्यघोषेऽप्यसम्भ्रमम् ।
गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्यावलोकितम् ।।७२।।

६५. रघु के सैनिकों ने अंगूर के लताकुंजों में उत्तम मृगचर्म बिछाकर, अंगूर क फलों से बनी मदिरा का पान करते हुए युद्ध-जनित थकावट को दूर किया।

६६. सूर्य जिस प्रकार जल-शोषण के उद्देश्य से उत्तरायण होते हैं, उसी प्रकार राजा रघु ने राजाओं का उन्मूलन करने के लिये कुबेर द्वारा अधिष्ठित उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया।

६७. रघु के घोड़ों ने सिन्धु नदी के तट पर लोटकर अपनी थकान दूर की एवं कुंकुम और केसर से संसक्त अपने कंधों को झाड़ा।

६८. वहां हूणों पर अपना पराक्रम दिखाकर रघु ने अपने युद्ध-कौशल से उनकी स्त्रियों के कपोलों को, पीट-पीटकर रोने के कारण लाल बना दिया।

६९. रणक्षेत्र में रघु के प्रताप को सहन करने में असमर्थ होकर कंबोज के राजा, उसके हाथियों को बांधने की सांकल से रगड़े हुए अखरोट के वृक्षों के साथ ही झुक गये।

७०. कंबोज देश के दर्पच्युत राजाओं ने कोसलेश्वर रघु को बहुत से उत्तम घोड़े तथा सोने की बड़ी-बड़ी राशियां उपहार के रूप में लगातार प्रदान कीं, फिर भी इससे उन्हें अभिमान न हुआ।

७१. उसके बाद रघु अश्वारोही सेना लेकर हिमालय पर्वत पर चढ़े, वहां घोड़ों के खुरों से खुदकर उड़ती हुई गेरू आदि खनिज धातुओं की धूल उस पर्वत की ऊंचाई को बढ़ाती सी जान पड़ी।

७२. सेना का कोलाहल होने पर हिमालय पर्वत की गुफाओं में सोये हुए समान बलवाल सिंहों का सोते-सोते गर्दन घुमाकर देखना उनकी निर्भीकता व्यक्त करता था।

भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः ।
गङ्गाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे ।।७३।।

विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः ।
दृषदो वासितोत्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः ।।७४।।

सरलासक्तमातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः ।
आसन्नोषधयो नेतुर्नक्तमस्नेहदीपिकाः ।।७५।।

तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः ।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ।।७६।।

तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत् ।
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ।।७७।।

शरैरुत्सवसंकेतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ।।७८।।

परस्परेण विज्ञातस्तेषूपायनपाणिषु ।
राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा ।।७९।।

तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः ।
पौलस्त्यतुलितस्याद्रेरादधान इव ह्रियम् ।।८०।।

७३. भोज के सूखे पत्तों में मर्मर ध्वनि करती और बांस के वनों में शब्द पैदा करती, गंगा के शीतल जलकणों से युक्त वायु ने मार्ग में रघु के श्रम को दूर किया ।

७४. नमेरु के पेड़ों की छाया में रघु के सैनिकों ने नमेरु वृक्षों के नीचे उन चट्टानों पर बैठकर विश्राम किया जिनका पृष्ठभाग उन पर बैठने वाले कस्तूरी-मृगों की नाभियों से सुवासित हो रहा था ।

७५. देवदारु के वृक्षों से बंधे हुए हाथियों की सांकलों में, कान्तिमान औषधियों का प्रकाश पड़ने से वे उस सेना के नेता रघु के लिये बिना तेल के दीपकों के समान सिद्ध हुईं ।

७६. रघु द्वारा छोड़े गए पड़ावों पर हाथियों के गल में बंधी रस्सियों से छिली हुई छालोंवाले देवदारु के वृक्षों को देखकर किरातों ने रघु के हाथियों की ऊंचाई जानी ।

७७. वहां पर्वतीय गणों के साथ रघु का ऐसा भयंकर युद्ध हुआ जिसमें रघु के सैनिकों द्वारा फेंके गये लौहनिर्मित बाणों और पर्वतीयों द्वारा प्रयुक्त गोफनों से फेंके गये पत्थरों के परस्पर संघर्ष से अग्नि पैदा हो गई ।

७८. रघु ने उत्सव संकेत गण के निवासियों के उत्सवों को नीरस करक अपनी भुजाओं की विजय गाथा किन्नरों से गवाई ।

७९. पर्वतीयों के उपहार भरे हाथों में रघु ने हिमालय के और हिमालय ने रघु के महत्व को परस्पर पहचाना ।

८०. रघु उस हिमालय में अपनी स्थायी कीर्ति स्थापित कर, पुलस्त्य की सन्तान रावण द्वारा उठाये गये कैलास पर्वत में मानों लज्जा का निवेश करते हुए उतरे ।

चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वरः ।
तग्दजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः ।।८१।।

न प्रसेहे स रुद्धार्कमधारावर्षदुर्दिनम् ।
रथवर्त्मरजोऽप्यस्य कुत एव पताकिनीम् ।।८२।।

तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम् ।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः ।।८३।।

कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् ।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च पादयोः ।।८४।।

इति जित्वा दिशो जिष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम् ।
रजो विश्रामयन्राज्ञां छत्रशून्येषु मौलिषु ।।८५।।

स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ।।८६।।

सत्रान्ते सचिवसखः पुरस्क्रियाभिर्गुर्वीभिः शमितपराजयव्यलोकान् ।
काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधान्राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने।८७।

ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम्
प्रस्थानप्रणतिभिरङ्गुलीषु चक्रुर्मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम्।।८८।।

८१. रघु के ब्रह्मपुत्र नदी को पार करते ही उनके हाथियों के बांधने से कांपते हुए काले अगर के वृक्षों की तरह प्राग्ज्योतिष देश का राजा कांप गया।

८२. वह राजा सूर्य को ढंक देनेवाली, बिना वर्षा के ही दुर्दिन करने वाली रघु के रथ के मार्ग से उठी धूल को ही न सह सका फिर उसकी सेना का सामना कैसे करता।

८३. कामरूप देश का राजा इन्द्र से भी अधिक पराक्रमी रघु को ऐसे मदस्रावी हाथी भेंट में देकर शरण में आया, जो रघु को छोड़कर अन्य किसी के भी रोक नहीं रुके थे।

८४. कामरूप देश के राजा ने सोने के सिंहासन पर देवता के रूप में बैठ हुए रघु के चरणों की कान्ति की अर्चना रत्न-फूल चढ़ाकर की।

८५. इस प्रकार विजयी राजा रघु, दिशाओं को जीतकर छत्रहीन राजाओं के ललाट पर अपने रथ से उठी हुई धूल फेंकते हुए लौटे।

८६. इसके बाद रघु ने विश्वजित नामक यज्ञ किया, जिसमें दक्षिणा के रूप में सब कुछ दे दिया जाता है। सज्जन लोग पानी बरसानेवाले मेघों के समान त्याग के लिये ही धन का अर्जन करते हैं।

८७. काकुत्स्थ पदवीधारी रघु ने यज्ञ समाप्त होने पर अपने मंत्रियों को साथ ले उन राजाओं को जिनकी पत्नियां दीर्घकालीन विरह से मिलन के लिये उत्सुक थीं, बड़े-बड़े पुरस्कार देकर उनके पराजय से उत्पन्न दुःख को शान्त कर दिया और फिर उन्हें अपनी-अपनी राजधानी को लौटने की आज्ञा दी।

८८. विदा होते समय उन राजाओं ने रेखा के रूप में अंकित पताका, वज्र और छत्र के चिह्न वाले और प्रसन्नता से सुलभ होनेवाले सम्राट् के दोनों चरणों में नमस्कार किया। इससे उनके सिर की मालाओं से गिरे हुए पराग के कणों से उनके चरणों की उंगलियां गोरी हो गयीं।

पंचमः सर्गः

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोशजातम् ।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ।।१।।

स मृण्मये वीतहिरण्मयत्वात्पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः ।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः ।।२।।

तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञस्तपोधनं मानधनाग्रयायी ।
विशांपतिर्विष्टरभाजमारात्कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच ।।३।।

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते ।
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ।।४।।

कायेन वाचा मनसापि शश्वद्यत्संभृतं वासवधैर्यलोपि ।
आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत् ।।५।।

आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम् ।
कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम् ।।६।।

क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वादभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु ।
तदङ्कशय्या च्युतनाभिनाला कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः ।।७।।

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितृणाम् ।
तान्युञ्छषष्ठांकितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् ।।८।।

पाँचवाँ सर्ग

१. विश्वजित नामक यज्ञ में अपने कोषों को बिलकुल दे डालने वाले राजा रघु के पास विद्वान् वरतन्तु के शिष्य कौत्स ऋषि गुरु दक्षिणा के हेतु धन मांगने के लिये उपस्थित हुए।

२. अनमोल शील वाले, यश से प्रकाशमान तथा अतिथियों का सत्कार करन वाले राजा रघु सोने का पात्र पास न होने के कारण मिट्टी के पात्र में पूजा की सामग्री रखकर शास्त्र-ज्ञान से प्रकाशित अतिथि के सामने आये।

३. मान को ही अपना धन मानने वालों में अग्रणी और अपने कर्त्तव्य को जानने वाले राजा रघु ने आसन पर बैठे हुए उन तपोधन की पूजा की और पास आ हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले।

४. हे कुशाग्र बुद्धि, मन्त्रों की रचना करने वाले ऋषियों में प्रमुख, आपके गुरु कुशल स तो हैं? जिस प्रकार सूर्य से लोगों को चेतना मिलती है उसी प्रकार आपने अपने गुरु से सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है।

५. उन्होंने शरीर, वाणी और मन से इन्द्र के धैर्य को नष्ट करने वाला जो तप निरन्तर संचित किया है। महर्षि का वह तीन प्रकार का तप किसी प्रकार के विघ्न स नष्ट तो नहीं हो रहा है?

६. विशेष रूप से थाले आदि बनाकर अनेक यत्न करके पुत्र से भी अधिक प्रिय मानकर बढ़ाये गए और थकावट को दूर करनेवाले आपके आश्रम के वृक्षों को कहीं हवा आदि से बाधा तो नहीं पहुंची?

७. मुनि लोग अनुष्ठान के साधन-स्वरूप कुशों के प्रति जिनकी इच्छा को अपने वात्सल्य भाव के कारण नहीं रोकते और जो उनकी गोद की शय्या पर ही अपनी नाभि की नाल छोड़ देते हैं ऐसे हरिणियों के छौन संकट-मुक्त तो हैं?

८. जिस तीर्थ जल से नित्य स्नान होता है, जिनसे पितरों का तर्पण होता है, जिसके रतीले तट उंछवृत्ति से चुने गये अन्न के छटें भाग से चिह्नित हैं वह तीर्थ का जल तुम्हार लिये कल्याणकारी तो है?

नीवारपाकादि कडंगरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कच्चित् ।
कालोपपन्नातिथि कल्प्यभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः ।।९।।

अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय ।
कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ।।१०।।

तवार्हतो नाभिगमेन तृप्तं मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे ।
अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा प्राप्तोऽसि संभावयितुं वनान्माम् ।।११।।

इत्यर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य रघोरुदारामपि गां निशम्य ।
स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशस्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः ।।१२।।

सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् ।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ।।१३।।

भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलोचिता ते पूर्वान्महाभाग तयातिशेषे ।
व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विषादः ।।१४।।

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थंप्रतिपादितर्द्धिः ।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ।।१५।।

स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिंचनत्वं मखजं व्यनक्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ।।१६।।

९ वन में उत्पन्न होने वाले नीवार आदि अन्न से ही आप लोगों के शरीर का निर्वाह होता है और उसीके द्वारा उचित समय पर आये हुए अतिथियों का सत्कार भी किया जाता है। क्या जनपदों से आये हुए भूसा खाने वाले पशु उन नीवार आदि को चर तो नहीं जाते ?

१० अथवा ऋषि ने प्रसन्न होकर आपके भलीभांति शिक्षित हो जाने पर आपको गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा दी है। सब आश्रम वालों का उपकार करने में समर्थ, दूसरे आश्रम में आपके प्रवेश करने के लिये यह उपयुक्त समय है।

११ आप पूजनीय हैं। आपके आने मात्र से मुझे संतोष नहीं हुआ। मेरा मन तो इस बात के लिये उत्सुक है कि आप मेरे लिये कुछ आज्ञा करें। आप अपने गुरु की आज्ञा से अथवा अपनी स्वयं की आज्ञा से मुझे सम्मानित करने के लिये ही वन से यहां आये हैं।

१२ पूजा के पात्र से राजा के धन व्यय का अनुमान हो रहा था, फिर भी राजा रघु उदार वाणी में बोल रहे थे जिसे सुनकर अपने कार्य की सफलता के प्रति वरतन्तु के शिष्य कौत्स ऋषि की आशा क्षीण हो गई और वे राजा से बोले:—

१३ हे राजा, आप सर्वत्र हमारे कल्याण की बात जानते हैं। आपके स्वामी होने पर प्रजा का अकल्याण हो ही कैसे सकता है ? सूर्य जब तप रहा हो तो लोगों की दृष्टि को ढकने के लिये अंधकार की कल्पना कैसे की जा सकती है ?

१४ पूज्य लोगों के प्रति भक्ति तो आपके कुल की परंपरागत विशेषता है। हे महाभाग, आप अपनी भक्ति से अपने पूर्वजों से भी आगे बढ़ गये हैं। मैं आपके पास याचक के रूप में समय बीत जाने पर आया इसका मुझे खेद है।

१५ हे राजा, सत्पात्रों को अपना धन देने के बाद आपके पास केवल शरीर मात्र शेष रह गया है। इससे आप मुनियों को फलरूपी अपनी संतान अर्पित कर देने वाले उस नीवार के समान लग रहे हैं जिसका केवल डंठल शेष रह गया हो।

१६ सार्वभौम राजा होते हुए भी यज्ञ के कारण आप अकिंचन बन गये हैं, यह उचित भी है। देवताओं के द्वारा क्रम से अमृत पी लेने के कारण चन्द्रमा की कला का क्षय होना उसकी वृद्धि से कहीं अच्छा है।

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये ।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि ।।१७।।

एतावदुक्त्वा प्रतियातुकामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य ।
किं वस्तु विद्वन् गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त ।।१८।।

ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ।।१९।।

समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद् गुरुदक्षिणायै ।
स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात् ।।२०।।

निर्बन्धसंजातरुषाऽर्थकार्श्यमचिन्तयित्वा गुरुणाऽहमुक्तः ।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति ।।२१।।

सोऽहं सपर्याविधिभाजनेन मत्वा भवन्तं प्रभुशब्दशेषम् ।
अभ्युत्सहे सम्प्रति नोपरोद्‌धुमल्पेतरत्वाच्छ्रुतनिष्क्रयस्य ।।२२।।

इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिरावेदितो वेदविदां वरेण ।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं जगाद भूयो जगदेकनाथः ।।२३।।

गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्य कामम् ।
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे माभूत्परीवादनवावतारः ।।२४।।
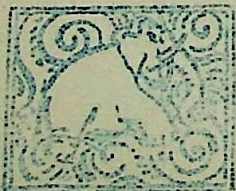
१७ दूसरा और कार्य मेरे सामने नहीं है इसलिये मैं अधिक धन प्राप्त करने के लिये अन्यत्र यत्न करूंगा। आपका कल्याण हो। चातक भी अपने भीतर के जल से रहित शरद् ऋतु के मेघ से याचना नहीं करता।

१८ इतना कहकर महर्षि के शिष्य ने जाने की इच्छा प्रकट की। राजा ने इन्हें मना करके उनसे पूछा, हे विद्वान्, गुरू को आप कौन सी वस्तु देंगे और कितनी मात्रा में।

१९ फिर विधिपूर्वक यज्ञ सम्पन्न करने वाले, गर्वरहित, वर्ण और आश्रम को नियम में रखने वाले राजा रघु से उन्होंन इस प्रकार कहा :—

२० विद्या समाप्त करके मैंने महर्षि सेगुरू दक्षिणा के लिये निवेदन किया। उन्होंने देर तक बिना किसी त्रुटि के नियम पालन करते हुए की गई मेरी दुष्कर भक्ति को ही प्रधानता दी।

२१ अधिक प्रार्थना से गुरू को क्रोध हो आया और उन्होंने मेरी दरिद्रता का विचार न करके विद्या की गणना के अनुसार चौदह करोड़ मुद्रा लाकर देने को कहा।

२२ मैं आपके पूजा के पात्र से ही यह समझ गया कि आपके लिये प्रभु शब्द का कोई अर्थ नहीं रह गया है। विद्या का मूल्य वहुत अधिक होने के कारण मुझे आप पर जोर डालने का साहस नहीं होता।

२३ वेदों के जानने वालों में श्रेष्ठ उस ब्राम्हण के ऐसा कहने पर यज्ञ द्वारा पापशमन होने के कारण पापरहित चेष्टा वाले तथा चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त जगत् के एकमात्र स्वामी राजा रघु ने उनसे कहा:—

२४ गुरुदक्षिणा के लिये धन का अभिलाषी और विद्या में पारंगत व्यक्ति रघु के पास से अपना मनोरथ पूर्ण हुए बिना ही दूसरे दाता के पास चला गया इस प्रकार की नई निन्दा मेरे विषय में न फैलनी चाहिये।

स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे ।
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन् यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम् ।।२५।।

तथेति तस्यावितथं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्सङ्गरमग्रजन्मा ।
गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात् ।।२६।।

वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात्प्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु ।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने नहि तद्रथस्य ।।२७।।

अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् ।
सामन्तसंभावनयैव धीरः कैलासनाथं तरसा जिगीषुः ।।२८।।

प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्म सविस्मयः कोशगृहे नियुक्ताः ।
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः ।।२९।।

तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्यमानात् ।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम् ।।३०।।

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्वौ ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ।।३१।।

अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थं प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः ।
स्पृशन्करेणानतपूर्वकायं सम्प्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः ।।३२।।

२५ आप मेरे पूज्य हैं, आप मेरे इस प्रसिद्ध अग्निहोत्र भवन में चौथे अग्नि के समान निवास करते हुए दो-तीन दिन कष्ट सहन कीजिये। हे माननीय, तब तक मैं आपका प्रयोजन सिद्ध करने का यत्न करता हूं।

२६ ब्राम्हण ने प्रसन्न होकर राजा रघु की विफल न होनेवाली प्रतिज्ञा को ज्यों का त्यों मान लिया। रघु ने भी यह देखकर कि पृथ्वी समस्त धन दे चुकी है यह चाहा कि कुबेर से धन लिया जाय।

२७ वसिष्ठ के मन्त्र से अभिमंत्रित होने के कारण प्रभावयुक्त होने से समुद्र, आकाश और पर्वतों में उसके रथ की गति उसी प्रकार न रुकी जैसे वायु की सहायता पाकर मेघ की गति बाधारहित हो जाती है।

२८ कुबेर को सामान्य राजा के समान बलपूर्वक जीतने की इच्छा से प्रस्थान करने वाले धीर राजा रघु रात के आंरभ में ही उस रथ में जाकर सो रहे जिसमें शस्त्र रखे जा चुके थे।

२९ प्रातःकाल जब राजा प्रस्थान के लिये तैयार हुए तो कोषगृह में नियुक्त अधिकारियों ने आश्चर्य से भर कर कहा कि कोषगृह में आकाश से सोने की वर्षा हुई है।

३० जिस कुबेर पर राजा रघु आक्रमण करने जा रहे थे उससे प्राप्त सोने की समस्त ढेर को जो बज्र से खंडित सुमेरु पर्वत खंड के समान था राजा ने कौत्स ऋषि को दिया।

३१ अयोध्या की जनता ने गुरु को देने के लिये अपेक्षित धन से अधिक राशि के निस्पृह याचक और याचक की इच्छा से अधिक देने वाले राजा दोनों का ही अभिनन्दन किया।

३२ प्रस्थान करते हुए प्रसन्नमन महर्षि कौत्स ने विनय से सिर झुकाये हुये राजा रघु को जिन्होंने सौ ऊंटों और सौ घोड़ियों पर उस धन को लदवा दिया था, हाथ से स्पर्श करते हुये यह कहा।

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम् ।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा ॥३३॥

आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते ।
पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पितेव ॥३४॥

इत्थं प्रयुज्याशिषमग्रजन्मा राज्ञे प्रतीयाय गुरोः सकाशम् ।
राजाऽपि लेभे सुतमाशु तस्मादालोकमर्कादिव जीवलोकः ॥३५॥

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् ।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार ॥३६॥

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ।
न कारणात्स्वाद्बिभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ॥३७॥

उपात्तविद्यं विधिवद् गुरुभ्यस्तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम् ।
श्रीः साभिलाषाऽपि गुरोरनुज्ञां धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष ॥३८॥

अथेश्वरेण क्रथकैशिकानां स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः ।
आप्तः कुमारानयनोत्सुकेन भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः ॥३९॥

तं श्लाघ्यसम्बन्धमसौ विचिन्त्य दारक्रियायोग्यदशं च पुत्रम् ।
प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम् ॥४०॥

३३ चार प्रकार की राजवृत्ति का पालन करने वाले राजा को यदि पृथ्वी इच्छानुसार धन दे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। आपके प्रभाव की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आपने तो इच्छा-मात्र से स्वर्ग को भी दुह लिया।

३४ आपको सभी शुभ पदार्थ प्राप्त हैं। पुत्र को छोड़कर अन्य कोई वस्तु मांगना आपके लिय पुनरुक्ति के समान है। आपके पिता ने जिस प्रकार आप जैसे प्रशंसनीय पुत्र को प्राप्त किया है उसी प्रकार आप भी अपने जैसे गुणों से युक्त पुत्र प्राप्त करें।

३५ राजा को इस प्रकार आशीर्वाद देकर ब्राह्मण कौत्स गुरू के पास चले गये और थोड़े ही समय में राजा को भी उनकी कृपा से उसी प्रकार पुत्र लाभ हुआ जैसे सूर्य से प्राणियों को प्रकाश मिलता है।

३६ रघु की रानी ने ब्राह्म मुहूर्त में कार्तिकेय के समान राजकुमार को जन्म दिया। इसीलिय पिता ने ब्रह्मा के नाम पर ही अपनी उस सन्तान का नाम अज रखा।

३७ वह बालक अपने पिता के समान ही वैसा ही ओजस्वी रूप वाला, उसी प्रकार पराक्रमी और स्वाभाविक गौरव से युक्त था। जसे एक दीपक से जलाया गया दूसरा दीपक पहल से भिन्न नहीं होता उसी प्रकार वह भी जन्मदाता पिता स भिन्न नहीं था।

३८ जब अज ने गुरुओं से विधिपूर्वक विद्या प्राप्त कर ली और युवावस्था के प्रकट होने से वह विशष सुन्दर दिखाई देन लगा तो उस चाहती हुई भी राजलक्ष्मी ने राजा रघु की आज्ञा उसी प्रकार चाही जिस प्रकार सुशील कन्यायें पिता की आज्ञा चाहती हैं।

३९ विदर्भ देश के राजा भोज ने, जो कुमार अज को बुलाने के लिये उत्सुक था अपनी बहन इन्दुमती के स्वयंवर में सम्मिलित होन का निमन्त्रण देने के लिये अपने प्रामाणिक दूत को रघु के पास भेजा।

४० रघु ने यह समझकर कि यह सम्बन्ध श्लाघनीय है और मेरा पुत्र विवाह की अवस्था को प्राप्त हो गया हे उस विदर्भ देश क राजा की समृद्ध राजधानी क लिये सेना सहित भेजा।

तस्योपकार्यारचितोपचारा वन्येतरा जानपदोपदाभिः ।
मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनोर्बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः ।।४१।।

स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले ।
निवेशयामास विलङ्घिताध्वा शान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यम् ।।४२।।

अथोपरिष्टाद्भ्रमरैर्भ्रमद्भिः प्राक्सूचितान्तः सलिलप्रवेशः ।
निर्धौतदानामलगण्डभित्तिर्वन्यः सरित्तो गज उन्ममज्ज ।।४३।।

निःशेषविक्षालितधातुनाऽपि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु ।
नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ।।४४।।

संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम् ।
बभौ स भिन्दन्बृहतस्तरङ्गान् वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः ।।४५।।

शैलोपमः शैवलमंजरीणां जालानि कर्षन्नुरसा स पश्चात् ।
पूर्वं तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प ।।४६।।

तस्यैकनागस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहक्षणमात्रशान्ता ।
वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनर्दिदीपे मदर्दुदिनश्रीः ।।४७।।

सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाघ्राय मदं तदीयम् ।
विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः सेनागजेन्द्रा विमुखा बभूवुः ।।४८।।

४१ नगर के ढंग पर राजकीय तम्बुओं में सोन-रहने आदि की व्यवस्था और जनपदों स आय हुए लोगों द्वारा लाये गये उपहारों से युक्त राजकुमार के लिये मार्ग में बनाये गय निवासस्थान ऐसे लगते थे मानों वे नगर से बाहर विलास क लिय बनाय गये बगीच हों।

४२ मार्ग पार करके उस थकी हुई सेना को साथ लेकर, जिसकी पताकाएं धूल स धूसर हो रही थीं वह नर्मदा के तट पर पहुंचा जहां जलकणों से शीतल हवा करंज के वृक्षों की पंक्तियों को नचा रही थी।

४३ उसी समय एक ऐसा जंगली हाथी पानी में से निकला जिसके जल में डुबकी लगाने की पूर्वसूचना ऊपर मंडराते हुये भौंरों से मिल रही थी और मद क धुल जाने से जिसकी कनपटियां स्वच्छ हो गई थीं।

४४ गेरू के बिलकुल धुल जाने पर भी पत्थर से टकराकर विशेष रूप स कुंठित तथा नीले रंग की ऊपर की ओर खिची रेखाओं से चितकबरे बने हुए उसके दोनों दांत यह बता रहे थे कि वह ऋक्षवान् पर्वत से टक्कर मार-मारकर खेलता रहा है।

४५ चिंघाड़ते हुए तट की ओर आते हुए और अपनी सूंड को शीघ्रता से आग-पीछे झुलाते और बड़ी-बड़ी लहरों को काटते हुए वह इस प्रकार शोभित हो रहा था मानो हथसाल के बेड़े को तोड़ रहा हो।

४६ सेवार की मंजरियों के जालों को अपनी छाती से खींचता हुआ वह पर्वताकार हाथी आगे बढ़ा, पर उससे टकराई जलराशियुक्त नदी का प्रवाह उसस भी पहले तट के ऊपर जा पहुंचा।

४७ उस एकाकी हाथी की कनपटियों से होने वाले मद की वर्षा की शोभा, जो जलमें स्नान करने से क्षण मात्र के लिये शान्त हो गई थी पालतू हाथियों को देखकर फिर बढ़ गई।

४८ सप्तच्छद नामक वृक्ष के दूध के समान कड़वी गन्ध बिखेरने वाले उसके मद की असह्य गन्ध को सूंघ कर सेना के हाथियों ने महावतों के रोकने के महान् प्रयत्न को विफल कर दिया और नियंत्रण से बाहर हो गया।

स च्छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन ।
रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार ।।४९।।

तमापतन्तं नृपतेरवध्यो वन्यः करीति श्रुतवान्कुमारः ।
निवर्तयिष्यन्विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः ।।५०।।

स विद्धमात्रः किल नागरूपमुत्सृज्य तद्विस्मितसैन्यदृष्टः ।
स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति कान्तं वपुर्व्योमचरं प्रपेदे ।।५१।।

अथ प्रभावोपनतैः कुमारं कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्य पुष्पैः ।
उवाच वाग्मी दशनप्रभाभिः संवर्धितोरःस्थलतारहारः ।।५२।।

मतङ्गशापादवलेपमूलादवाप्तवानस्मि मतङ्गजत्वम् ।
अवेहि गन्धर्वपतेस्तनूजं प्रियंवदं मां प्रियदर्शनस्य ।।५३।।

स चानुनीतः प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिमृंदुतामगच्छत् ।
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य।।५४।।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो यदा ते भेत्स्यत्यजः कुम्भमयोमुखेन ।
संयोक्ष्यसे स्वेन वपुर्महिम्ना तदेत्यवोचत्स तपोनिधिर्माम्।।५५।।

संमोचितः सत्त्ववता त्वयाऽहं शापाच्चिरप्रार्थितदर्शनेन।
प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यांवृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः ।।५६।।

४९ बन्धन को तोड़कर भाग जाने के कारण बिना घोड़ों के और धुरों के टूट जाने के कारण लुढ़के हुए रथों वाले तथा स्त्रियों की रक्षा के लिये घबराये हुए योद्धाओं से युक्त शिविर को उसने कोलाहलपूर्ण बना दिया।

५० जंगली हाथी राजा के लिये अवध्य होता है, यह बात कुमार को शास्त्र से विदित थी, अतः उन्होंने उस आगे बढ़ते हुए हाथी को रोकने की इच्छा से धनुष को थोड़ी ही दूर तक खींचकर उसके मस्तक पर बाण मारा।

५१ उस हाथी ने बाण के चुभते ही अपना हाथी का रूप छोड़ दिया और विस्मय में पड़ी हुई सना के देखते ही देखते जगमगाते हुए प्रकाश के बीच मनोहर गन्धर्व का शरीर धारण कर लिया।

५२ इसके अनन्तर कुमार पर अपने प्रभाव से प्राप्त कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा करके बोलने में चतुर वह गंधर्व अपन दांतों की चमक से अपनी छाती पर पड़े हुए बड़े-बड़े मोतियों के हार की चमक को और भी बढ़ाते हुए बोला--

५३ मैं गन्धर्वों के राजा प्रियदर्शन का पुत्र प्रियंवद हूं और अभिमान क कारण मतंग ऋषि के शाप से मैं हाथी बन गया।

५४ शाप देने पर उनके चरणों में गिरकर मैंने उनसे प्रार्थना की तो व दयार्द्र हो गये। गरमी तो आग और धूप के सपर्क से पैदा होती है, शीतलता तो जल का स्वभाव ही है।

५५ उन तपोनिधि मुनि ने मुझसे कहा कि इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न अज जब लोह के बाण से तुम्हारे मस्तक को विदीर्ण करेंगे तब तुम्हारा गौरव पूर्ण शरीर तुम्हें फिर प्राप्त होगा।

५६ दीर्घकाल से मुझे आप के दर्शनों की अभिलाषा थी। आप जैस बलवान् ने मुझे उस शाप से मुक्त किया है ऐसी स्थिति में यदि मैं बदले में आपका कोई उपकार न करूं तो मेर लिये अपना स्थान प्राप्त करना ही व्यर्थ हो जायगा।

संमोहनं नाम सखे ममास्त्रं प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम् ।
गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुर्नचारिहिंसा विजयश्च हस्ते ।।५७।।

अलं ह्रिया मां प्रति यन्मुहूर्तं दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम् ।
तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं मयि त्वया न प्रतिषेधरौक्ष्यम् ।।५८।।

तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः ।
उदङ्मुखः सोऽस्त्र विदस्त्रमन्त्रं जग्राह तस्मान्निगृहीतशापात् ।।५९।।

एवं तयोरध्वनि दैवयोगादासेदुषोः सख्यमचिन्त्यहेतु ।
एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् ।।६०।।

तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः ।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ।।६१।।

प्रवेश्य चैनं पुरमग्रयायी नीचैस्तथोपाचरदर्पितश्रीः ।
मेने यथा तत्र जनः समेतो वैदर्भमागन्तुमजं गृहेशम् ।।६२।।

तस्याधिकारपुरुषैः प्रणतैः प्रदिष्टां प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम्
रम्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्यांबाल्यात्परामिव दशांमदनोऽध्युवास
।।६३।।

तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं कन्याललाम कमनीयमजस्य लिप्सोः।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव।६४।।

५७ हे मित्र, आप संमोहन नामक मेरे गांधर्व अस्त्र को, जिसके प्रयोग और वापस लेने के लिये अलग-अलग मंत्र हैं, स्वीकार कीजिये। इस अस्त्र से इसके प्रयोग करने वाले को शत्रु की हिंसा नहीं करनी पड़ती और विजय भी भी मिल जाती है।

५८ मुझसे लज्जित होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मुझ पर प्रहार करते हुए भी आप क्षण भर के लिये मुझ पर दयालु हो गये थे। इसीलिये जब मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूं तब आपको अस्वीकृति के रूप में कठोरता न दिखानी चाहिये।

५९ मनुष्यों में चन्द्रमा के समान अस्त्रों के ज्ञाता अज ने ऐसा ही हो कहकर सोम से उत्पन्न नर्मदा नदी के पवित्र जल का आचमन किया और जल की ओर मुंह करके शापमुक्त प्रियवंद से अस्त्र का मंत्र ग्रहण किया।

६० इस प्रकार मार्ग में बिना किसी निर्धारित कारण के दैवयोग स मित्र बने हुए दोनों में एक चैत्ररथ प्रदेश को गया और दूसरा अच्छे शासन के फलस्वरूप रमणीक बने हुए विदर्भ देश को चला गया।

६१ अज के आने से विदर्भ देश के राजा के हृदय में भारी हर्ष हुआ। व नगर क समीप ठहरे हुए अज से मिलने के लिये उसी प्रकार आगे बढ़कर गये जैसे बढ़ी हुई लहरों वाला समुद्र चन्द्रमा से मिलन के लिये आग बढ़ता है।

६२ अज के आगे चलने वाले राजा भोज ने नगर में प्रवेश करके नम्रतापूर्वक अपना समस्त वैभव उनको अर्पित कर दिया और उनकी सेवा इस प्रकार की कि नगर में एकत्र लोगों ने राजा भोज को अतिथि और अज को घर का स्वामी समझा।

६३ रघु के प्रतिनिधि अज ने नमस्कार करते हुए राजा भोज के अधिकारियों द्वारा बताये गये नये तम्बुओं वाले राजसी निवास स्थान में, जिसक द्वार के सामने की वदी पर भर हुए कलश रखे थे, इस प्रकार निवास किया जैसे बचपन के बीतने के बाद आने वाली युवावस्था में कामदेव का निवास होता है।

६४ जिसके स्वयंवर के निमित्त राजा लोग एकत्र हुए थे उस सुन्दर और कन्याओं में श्रेष्ठ राजकन्या के अभिलाषी अज को उस राजप्रासाद में पुरुष के भाव को समझते हुए भी असमर्थ स्त्री के समान रात को नींद देर तक न आई।

तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागम्।
सूतात्मजाःसवयसःप्रथितप्रबोधं प्राबोधयन्नुषसिवाग्भिरुदारवाचः
॥६५॥

रात्रिर्गता मतिमतां वर मुञ्च शय्यां धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता।
तामेकतस्तव बिभर्ति गुरुर्विनिद्रस्तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ६६॥

निद्रावशेन भवताप्यनवेक्ष्यमाणा पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः।
॥६७॥

तद्वल्गुना युगपदुन्मिषितेन तावत् सद्यः परस्परतुलामधिरोहतां द्वे ।
प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारमन्तश्चक्षुस्तव प्रचलितभ्रमरं च पद्मम् ॥६८॥

वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः ।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुःसौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य।६९।

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभातिलब्धपरभागतयाऽधरोष्ठेलीलास्मितंसदशनार्चिरिवत्वदीयम्
॥७०॥

यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानुरह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम् ।
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीरयाते किं वा रिपूंस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति
॥७१॥

शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राःस्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते।
येषां विभान्ति तरुणारुणरागयोगाद्भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशाः
॥७२॥

६५. उषाकाल में समान वय और उदार वाणी वाले सूत पुत्रों ने विस्तृत ज्ञान वाले अज को जगाया, जिसके पुष्ट कंधे कुंडलों से दब गये थे तथा पलंग की चादर से रगड़ खाने के कारण जिसके अंगराग फीके हो गये थे।

६६. ह बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, रात बीत गई अब आप शय्या छोड़िये। ब्रह्मा ने जगत् की धुरी को दो भागों में बांटा है जिसमें से एक को आपके पिता ने नींद का त्याग करके उठाया है और दूसरे भाग को उठाने वाले आप स्वयं हैं।

६७. रात में नींद के वश में होने के कारण आप अपने प्रति जिसकी उत्सुकता नहीं देख सके, वह लक्ष्मी खण्डिता नायिका के समान जिस चन्द्रमा के साथ विनोद कर रही थी, वह चन्द्रमा भी पश्चिम दिशा में जा चुका है और आपके मुख की शोभा से रहित हो रहा है।

६८. इसलिये आप ऐसा कीजिये कि आपका वह नत्र जिसके भीतर स्निग्ध पुतली घूम रही है और वह कमल जिसके भीतर भौंरा चंचल हो रहा है, ये दोनों ही सुन्दर वस्तुएं एक साथ खुलकर एक दूसरे की समता करें।

६९. प्रातःकाल का पवन वृक्षों की डंठलों से शिथिल फूलों का हरण करते हुए सूर्य की किरणों से खिलाये गये कमलों से संपर्क करक मानों दूसरों का गुण लेकर आपके विश्वास की स्वाभाविक सुगन्ध को प्राप्त करन क लिय उत्सुक हो रहा है।

७०. लाल रंग के भीतरी भाग वाले वृक्ष के पल्लवों पर गिरे हुए ओस के कण,जो धुले हुए हार के मनकों के समान बड़े-बड़े हैं,अपनी बढ़ी शोभा के कारण आपके अधर और ओंठ पर पड़ी हुई दांतों की चमक वाली सहज मुसकान क समान शोभित हो रहे हैं।

७१. तेज का पुंज सूर्य जब तक ऊपर उठता है, उसक पूर्व ही अरुण शीघ्रता से अन्धकार को दूर कर देता है। हे वीर, आपके युद्ध में आगे जाने के पूर्व ही क्या आपके पिता स्वयं अपने शत्रुओं का नाश कर देते हैं?

७२. झनझनाते हुए सांकलों को खींचने वाले आपके हाथी, जिन्होंन दोनों ओर से अंगड़ाई लेकर अपनी निद्रा दूर कर ली है और जिनके दांतों के कोष बाल सूर्य के रंग से मिलकर ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानों उन्होंने पहाड़ के गेरू वाले किनारे को काटा हो, अपनी शय्या का त्याग कर रहे हैं।

दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमण्डपेषु निद्रां विहाय वनजाक्ष वनायुदेश्याः
वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहाः
॥७३॥

भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्तामनुवदति शुकस्ते मंजुवाक्पंजरस्थः
॥७४॥

इति विरचितवाग्भिर्बन्दिपुत्रैः कुमारः सपदिविगतनिद्रस्तल्पमुज्झांचकार।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः
॥७५॥

अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितमञ्चिताक्षिपक्ष्मा ।
कुशलविरचितानुकूलवेषः क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम् ॥७६॥

----

७३. हे कमल के समान नेत्र वाले अज, बड़े-बड़े शामियानों में बंधे हुए फारस के ये घोड़े नींद छोड़कर सामने रखे हुए स्वादिष्ट सेंधा नमक के टुकड़ों को अपने निःश्वास से मलिन कर रहे हैं।

७४. मलिन पड़े हुए फूलों के हार का बन्धन ढीला हो रहा है, अपनी किरणों के मंडल के टूट जाने से दीपक निस्तेज हो गये हैं और पिंजरे में बैठा हुआ आपका यह तोता भी आपको जगाने के लिये कहे गये हमारे वचन को दुहरा रहा है।

७५. बन्दीजनों के पुत्रों द्वारा सुन्दर शब्दों में ऐसा कहने पर कुमार की नींद खुल गई और उन्होंने झटपट अपनी शय्या छोड़ दी मानों मस्ती के कारण मधुर शब्द करने वाले राजहंसों द्वारा जगाये जाने पर सुप्रतीक नामक देवताओं के हाथी ने गंगा की रेती का त्याग किया हो।

७६. उठने के बाद सुडौल बरौनियों वाले राजकुमार ने शास्त्रों के अनुसार प्रातःकाल के लिये उचित नित्यकर्म पूर्ण करके स्वयं ही बड़े ढंग से उपयुक्त वेष धारण किया और स्वयंवर में उपस्थित राजाओं के समाज में जा पहुंचे।

षष्ठः सर्गः

स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेषान्सिंहासनस्थानुपचारवत्सु ।
वैमानिकानां मरुतामपश्यदाकृष्टलीलान्नरलोकपालान् ॥१॥

रतेर्गृहीतानुनयेन कामं प्रत्यर्पितस्वाङ्गमिवेश्वरेण।
काकुत्स्थमालोकयतां नृपाणां मनो बभूवेन्दुमतीनिराशम् ॥२॥

वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम् ।
शिलाविभङ्गैर्मृगराजशावस्तुङ्गं नगोत्सङ्गमिवारुरोह ॥३॥

परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवान्रत्नवदासनं सः।
भूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिर्मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन ॥४॥

तासु श्रिया राजपरम्परासु प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः।
सहस्रधामा सहस्रधातमा व्यरुचद्विभक्तः पयोमुचां पंक्तिषु विद्युतेव ॥५॥

तेषां महार्हासनसंस्थितानामुदारनेपथ्यभृतां स मध्ये ।
रराज धाम्ना रघुसूनुरेव कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः ॥६॥

नेत्रव्रजाः पौरजनस्य तस्मिन्विहाय सर्वान्नृपतीन्निपेतुः।
मदोत्कटे रेचितपुष्पवृक्षा गन्धद्विपे वन्य इव द्विरेफाः॥७॥

अथ स्तुते बन्दिभिरन्वयज्ञैः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके।
सञ्चारिते चागुरुसारयोनौ धूपे समुत्सर्पति वैजयन्तीः ॥८॥

छठवां सर्ग

१. अज ने वहां सुसज्जित मंचों पर खेर हुए सिंहासनों पर सुन्दर वेष में बैठे हुए उन राजाओं को देखा, जिन्होंने अपनी शोभा से विमानों पर बैटे हुए देवताओं को आकृष्ट कर लिया था।

२. रति की प्रार्थना स्वीकार करके शिवजी द्वारा जिस अपना शरीर वापस द दिया गया हो, ऐसे कामदेव के समान काकुत्स्थ विरुदधारी अज को देखने वाले राजाओं का मन इन्दुमती के संबंध में निराश हो गया।

३. राजकुमार अज विदर्भराज भोज के द्वारा दिखायी गयी सुन्दर सीढ़ियों के रास्ते मंच पर उसी प्रकार पहुंचे जैसे वन के पशुओं क राजा सिंह का शिशु चट्टानों की शृंखला को पार करके ऊंचे पर्वत के शिखर पर पहुंचता है।

४. श्रेष्ठ रंगों के कपड़ों से मढ़े हुए और रत्नों से जड़े हुए आसन पर बैठे हुए अज की शोभा की तुलना मोर की पीठ पर बैठे हुए स्कन्द से बहुत अच्छी हो सकती थी।

५. लक्ष्मी ने उन राजाओं की पंक्तियों में विशेष प्रभा उत्पन्न होने के कारण कठिनाई से दिखाई देने वाले अपने स्वरूप को उसी प्रकार प्रकट किया जैसे मघों की पंक्तियों में हजारों खंडों में बिखरी हुई बिजली अपना रूप दिखाती है।

६. बहुमूल्य आसनों पर बैठे हुए और उज्ज्वल वषधारी उन राजाओं में रघु का पुत्र अज अपने तेज स उसी प्रकार शोभित हुआ जिस प्रकार कल्पवृक्षों क मध्य पारिजात शोभित होता है।

७. नगर निवासियों का नेत्र-समूह सारे राजाओं को छोड़कर अज पर ही केन्द्रित हो गया जैसे भौंरे फूलवाले पेड़ों को खाली करक उस जंगली मतवाले हाथी पर जा बैठते हैं जिसके गण्डस्थल से तीव्र मद बहता है।

८–१०. इसके अनन्तर जब राजवंशों का ज्ञान रखने वाल बन्दी जनों द्वारा सूर्य और चन्द्रवंश के राजाओं की स्तुति की जा चुकी, अगरु के सार से बनी हुई धूप फैल गई और पताकायें फहरा उठीं, नगर के समीप क उपवनों

पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां कलापिनामुद्धतनृत्यहेतौ ।
प्रध्मातशङ्खे परितो दिगन्तांस्तूर्यस्वने मूर्छति मङ्गलार्थे ।।९।।

मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि ।
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा ।।१०।।

तस्मिन्विधानातिशये विधातुः कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये ।
निपेतुरन्तःकरणैर्नरेन्द्रा देहैः स्थिताः केवलमासनेषु ।।११।।

तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः ।
प्रवालशोभा इव पादपानां श्रृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः ।।१२।

कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम् ।
रजोभिरन्तःपरिवेषबन्धि लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार ।।१३।।

विस्रस्तमंसादपरो विलासी रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम् ।
प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाशं निनाय साचीकृतचारुवक्त्रः ।।१४।।

आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना ततोऽन्यः किञ्चित्समावर्जितनेत्रशोभः ।
तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण पादेन हैमं विलिलेख पीठम् ।।१५।।

निवेश्य वामं भुजमासनार्धे तत्सन्निवेशादधिकोन्नतांसः ।
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत् ।।१६।।

में रहने वाले मोरों को मस्त होकर नचाने वाले शंख बज उठे और मंगल के लिये बजाई गई तुरही के शब्द से सभी दिशाओं के छोर व्याप्त हो गये, तब पति को वरण करने वाली, विवाह के वेष में सुसज्जित और परिचारिकाओं से सुशोभित कन्या इन्दुमती ने कहारों द्वारा उठा कर लाई गई पालकी में बैठकर मंच के मध्य में बने हुए राजमार्ग में प्रवेश किया।

११. सैकड़ों आंखों का लक्ष्य बनी कन्या के रूप में उपस्थित ब्रह्मा की उस विशेष रचना पर राजा लोग अपने अन्तःकरण से टूट पड़े; आसनों पर उनके शरीरमात्र ही रह गये।

१२. इन्दुमती के प्रति अपना मनोरथ प्रकट करने वाले राजाओं में प्रेम की अग्रदूती के समान अनेक प्रकार की शृंगारिक चेष्टायें उसी प्रकार दिखाई दीं जैसे वृक्षों से पल्लवों की शोभा प्रकट होती है।

१३. किसी ने अपने हाथों से लीला कमल की डंडी पकड़कर चंचल पंखुड़ियों से भौरों को भगाया और पराग के द्वारा भीतर मंडलाकार बने हुए उस लीला कमल को घुमाया।

१४. दूसरे विलासी राजा ने अपने सुन्दर मुख को कुछ टेढ़ा करके कंधे से खिसके हुए रत्न टंके हुए केयूर के सिरे से लगी हुई लम्बी माला को खींचकर अपने स्थान पर कर दिया।

१५. उससे भिन्न दूसरे राजा ने अपनी आंखें आगे करके उसे देखा और पैर की उंगलियों के अग्रभाग को टेढ़ा करके, जिससे उनके नखों की छटा तिरछी होकर निकलने लगी, सोने की बनी चौकी को कुरेदने लगा।

१६. किसी राजा ने बायीं भुजा को आधे आसन पर रख दिया जिसस उसका बायां कंधा ऊंचा हो गया और उसका हार अलग होकर फैली हुई पीठ पर सरक गया। इस स्थिति में वह बांई ओर बैठे अपने मित्र से वार्तालाप करने लगा।

विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकबर्हमन्यः ।
प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैर्विपाटयामास युवा नखाग्रैः ।।१७।।

कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्करेण रेखाध्वजलाञ्छनेन ।
रत्नाङ्गुलीयप्रभयानुविद्धानुदीरयामास सलीलमक्षान् ।।१८।।

कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसन्निवेशाद्व्यतिलङ्घिनीव ।
वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे ।।१९।।

ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा पुंवत्प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी ।
प्राक्सन्निकर्षं मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीमवदत्सुनन्दा ।।२०।।

असौ शरण्यः शरणोन्मुखानामगाधसत्वो मगधप्रतिष्ठः ।
राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः परन्तपो नाम यथार्थनामा ।।२१।।

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसङ्कुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ।।२२।।

क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः ।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकांश्चकार ।।२३।।

अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणिं वरेण्येन कुरु प्रवेशे ।
प्रासादवातायनसंश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गनानाम् ।।२४।।

१७. दूसरे युवक ने स्त्रियों के चंचल कर्णफूल के समान पांडुर वर्ण के केतकी के फूल को अपनी प्रिया के नितम्ब से सम्पर्क रखने में अभ्यस्त नखों के अग्रभाग से फाड़ डाला।

१८. किसी राजा ने लाल कमल के समान तलीवाले अपने हाथ से, जिस पर रेखा के रूप में पताका का चिन्ह बना था, रत्न जड़ी अंगूठियों की प्रभा से युक्त पांसों को फेंका।

१९. कोई यथास्थान अवस्थित होते हुए भी अपने स्थान से सरकते हुए किरीट में अपना हाथ लगाये हुए था जिससे उसकी उंगलियों के बीच का खाली भाग हीरों की किरणों से भर उठा।

२०. इसके अनन्तर सुनन्दा नाम की द्वारपालिका ने जो राजाओं के वृत्त और वंश को सुन चुकी थी, और जो बोलने में पुरुषों के समान प्रवीण थी राजकुमारी को पहले मगध के राजा के पास ले गई और बोली—

२१. ये राजा शरणार्थी लोगों के लिये शरण के स्थान हैं, इनका स्वभाव गंभीर है और इनका देश मगध है। प्रजा को प्रसन्न रखने में ये कुशल हैं और इनका परतंप नाम भी यथार्थ ही है।

२२. दूसरे राजा चाहे हजारों ही क्यों न हों पृथ्वी तो इनसे ही राजा वाली कहला सकी है। नक्षत्र, तारा और ग्रहों से भरी हुई रात भी चन्द्रमा के कारण ही ज्योतिष्मती कहलाती है।

२३. इन परतंप ने निरन्तर यज्ञ करके नित्य ही सहस्राक्ष इन्द्र का आह्वान किया है और इस प्रकार शची के गोरे गालों पर बिखरी अलकों को लम्बे समय तक कल्पवृक्ष के फूलों से रहित बना दिया है।

२४. यदि आप चाहती हैं कि वरण करने योग्य इन राजा से आपका पाणिग्रहण हो, तो आप अपने प्रवेश के समय महलों की खिड़कियों पर बैठी हुई पाटलिपुत्र की स्त्रियों के लिये नत्रोत्सव की व्यवस्था कीजिये।

एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद्विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला ।
ऋजुप्रणामक्रियययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा ।।२५।।

तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय ।
समीरणोत्थेव तरङ्गलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसीम् ।।२६।।

जगाद चैनामयमङ्गनाथः सुराङ्गनाप्रार्थितयौवनश्रीः ।
विनीतनागः किल सूत्रकारैरैन्द्रं पदं भूमिगतोऽपि भुङ्क्ते ।।२७।।

अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून्मुक्ताफलस्थूलतमान्स्तनेषु ।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामुन्मुच्य सूत्रेण विनैव हाराः ।।२८।।

निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च ।
कान्त्या गिरा सूनृतया च योग्या त्वमेव कल्याणि तयोस्तृतीया ।।२९।।

अथाङ्गराजादवतार्य चक्षुर्याहीति कन्यामवदत्कुमारी ।
नासौ न काम्यो न च वेद सम्यग्द्रष्टुं न सा भिन्नरुचिर्हि लोकः।।३०।।

ततः परं दुष्प्रसहं द्विषद्भिर्नृपं नियुक्ता प्रतिहारभूमौ ।
निदर्शयामास विशेषदृश्यमिन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै ।।३१।।

अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुर्विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्यः ।
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति ।।३२।।

२५ सुनन्दा द्वारा ऐसा कहने पर छरहरी इन्दुमती ने राजा परंतप परक्षण भर दृष्टि डाली और उनके हाथों की दूब मिली मधूक के फूलों की माला कुछ शिथिल हो गई । बिना कुछ बोले ही वह भावशून्य प्रणाम करके वहां से चली गई ।

२६ दौवारिक के काम पर नियुक्त वही सुनन्दा राजकुमारी को दूसरे राजा के पास ले गई जैसे हवा से उठी हुई लहर की रेखा मानसरोवर की राजहंसी को एक कमल से दूसरे कमल के पास ले जाती है ।

२७ उसने इन्दुमति से कहा कि इस अंग देश के राजा के यौवन की शोभा की कामना तो देवताओं की स्त्रियां भी करती हैं। इसके राज्य में गजशास्त्र की रचना करने वाले विशेषज्ञ हाथियों को शिक्षा देते हैं। पृथ्वी पर रहते हुए भी यह राजा वास्तव में इन्द्र के पद का सुख उठाता है ।

२८ शत्रुओं की स्त्रियों के स्तनों पर मोती के दानों के समान बड़े बड़े आंसुओं की बूंदों को बिखेरकर इस अंग देश के राजा ने मानों उनके हारों को छीनकर भी उन्हें बिना धागे के हार पहना दिये हैं ।

२९ स्वभाव से ही भिन्न भिन्न दो स्थानों में निवास करने वाली लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही अंगदेश के राजा में एक साथ निवास करती हैं । हे कल्याणी,अपनी कान्ति और मधुरवाणी के कारण उन दोनों के मध्य तीसरी बनने की क्षमता तुम में ही है ।

३० अंगदेश के राजा से अपनी आंखें हटाकर राजकुमारी ने अपनी माता की सहेली सुनन्दा से आगे चलने को कहा । वह राजा सुन्दर नहीं था ऐसी बात नहीं थी और न यही बात थी कि वह भलीभांति देखना नहीं जानती थी । बात वास्तव में यह है कि लोगों की रुचि में ही भेद होता है ।

३१ इसके बाद प्रतिहारी सुनन्दा ने इन्दुमती को उस राजा को दिखाया जो नये उदित हुए चन्द्रमा के समान विशेष रूप से दर्शनीय था और जिसके शत्रु उसका तेज कठिनाई से सह पाते थे ।

३२ लम्बी भुजाओं, चौड़ी छाती, और पतली कमर वाला यह राजा अवन्ति देश का स्वामी है । विश्वकर्मा द्वारा शान पर चढ़ाकर यत्नपूर्वक खरादे हुए सूर्य के समान यह शोभायमान हो रहा है ।

अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्तेरग्रेसरैर्वाजिभिरुत्थितानि।
कुर्वन्ति सामन्तशिखामणीनां प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि।।३३।।

असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः ।
तमिस्त्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्।।३४।।

अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कच्चिन्मनसो रुचिस्ते।
सिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु।।३५।।

तस्मिन्नभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के।
बबन्ध सा नोत्तमसौकुमार्या कुमुद्वती भानुमतीव भावम् ।।३६।।

तामग्रतस्तामरसान्तराभामनूपराजस्य गुणैरनूनाम् ।
विधाय सृष्टिं ललितां विधातुर्जगाद भूयः सुदतीं सुनन्दा ।।३७।।

सङ्ग्रामनिर्विष्टसहस्त्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः।।३८।।

अकार्यचिन्तासमकालमेव प्रादुर्भवंश्चापधरः पुरस्तात्।
अन्तःशरीरेष्वपि यः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता ।।३९।।

ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण ।
कारागृहे निर्जितवासवेन लंकेश्वरेणोषितमाप्रसादात् ।।४०।

३३. सारी शक्तियों स संपंन्न अवन्ति नरेश की विजय यात्राओं में आने-जाने वाले घोड़ों द्वारा उड़ाई गई धूल राजाओं के मस्तक की मणियों की चमक के विस्तार को ढंक लेती हैं।

३४. महाकाल मन्दिर के निवासी, चन्द्रमा को सिर पर धारण करने वाले शंकर जी के पास रहने वाला यह अवन्तिनरेश कृष्णपक्ष में भी अपनी प्रियाओं के साथ चांदनी रातों का अनुभव करता है।

३५. केले के तने के समान जंघाओं वाली हे इन्दुमती, क्षिप्रा नदी की लहरों को छूकर बहने वाली हवा से झूमते हुए एक के बाद एक फैले हुए उद्यानों में इस युवक राजा के साथ बिहार करने की क्या तुम्हारे मन में अभिलाषा है ?

३६. उच्च कोटि की सुकुमारता युक्त उस इन्दुमती ने मित्ररूपी कमलों को उल्लसित करने वाले तथा अपने प्रताप से शत्रुरूपी कीचड़ को सुखानेवाले उस राजा से खिली हुई कुमुदिनी के समान अपना मन नहीं मिलाया।

३७. तब सुनन्दा कमल के भीतरी भाग के समान शोभायमान सुन्दर दातोंवाली, अत्यधिक गुणवती ब्रह्मा की सुन्दर रचना इन्दुमती को अनूपदेश के राजा के सामने ले गई और बोली—

३८. युद्धों में जिसके संबंध में यह अनुभव किया गया है कि उसके हजारों हाथ थे, अठारहों द्वीपों में जिसने यज्ञ करके यूप गाड़े हैं, दूसरों के लिये जिस राजा शब्द का प्रयोग साधारण रूप में नहीं किया जा सकता और जो ब्रह्म को जानने वाला योगी था ऐसे कार्तवीर्य नाम का राजा पहले हो चुका है।

३९. सदाचार की शिक्षा देने वाला वह राजा ऐसा था कि अनुचित कार्य की बात सोचने के साथ ही वह उनके सामने धनुष लेकर प्रकट हो जाता था। उसने प्रजा के मन में भी उत्पन्न होनेवाले अविनय की भावना को दूर कर दिया था।

४०. धनुष की डोरी से बंधे होने के कारण जिसकी भुजायें निष्क्रिय हो गई थीं और जिसके दसों मुहों से निरन्तर दुःख और ग्लानि के कारण निःश्वास निकल रह थ, इन्द्र को जीतने वाला लंका का राजा रावण उसके कारागार में उसी प्रकार तब तक पड़ा रहा जब तक वह कार्तवीर्य उस पर प्रसन्न नहीं हुआ।

तस्यान्वये भूपतिरेष जातः प्रतीप इत्यागमवृद्धसेवी ।
येन श्रियः संश्रयदोषरूढं स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम् ।।४१।।

आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य यः क्षत्रियकालरात्रिम् ।
धारां शितां रामपरश्वधस्य सम्भावयत्युत्पलपत्रसाराम् ।।४२।।

अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम् ।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः ।।४३।।

तस्याः प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि न स क्षितीशो रुचये बभूव ।
शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः शशीव पर्याप्तकलो नलिन्याः ।।४४।।

सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम् ।
आचारशुद्धोभयवंशदीपं शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारी ।।४५।।

नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा गुणैर्यमाश्रित्य परस्परेण ।
सिद्धाश्रमं शान्तमिवैत्य सत्त्वैर्नैसर्गिकोऽप्युत्ससृजे विरोधः ।।४६।।

यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा कान्तिर्हिमांशोरिव सन्निविष्टा ।
हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु तेजोऽविषह्यं रिपुमन्दिरेषु ।।४७।।

यस्यावरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले ।
कलिन्दकन्या मथुरां गतापि गङ्गोर्मिसंसक्तजलेव भाति ।।४८।।
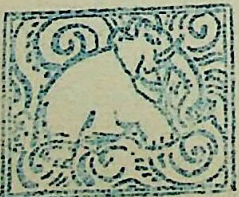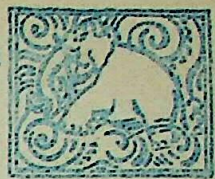
४१. शास्त्र और वृद्धों की सेवा करने वाला प्रतीप नामक यह राजा उसी कार्तवीर्य के वंश में उत्पन्न हुआ है। आश्रयजन्य दोष से प्रचलित लक्ष्मी का यह अपयश कि वह स्वभाव से ही चंचला होती है इसने दूर कर दिया है।

४२. युद्ध में अग्नि की सहायता का वरदान पाकर यह राजा क्षत्रियों के लिये कालरात्रि के समान परशुराम के फरसे की तेज धार को कमल के पत्ते जैसी सामर्थ्यवाला समझता है।

४३. यदि तुम्हारे मन में माहिष्मती नगरी के तटरूपी नितम्ब की करधनी के समान जल की धाराओं से रमणीय रेवा नदी को महलों की जालीदार खिड़कियों से देखने की इच्छा हो तो इस लम्बी भुजाओं वाले राजा की गोद की शोभा बनो।

४४. देखने में अत्यन्त सुन्दर होने पर भी यह राजा उसे अच्छा न लगा जैसे शरद् ऋतु द्वारा मेघों के आवरण नष्ट कर दिये जाने पर भी पूर्ण चन्द्रमा कमलिनी को नहीं भाता।

४५. स्वर्ग आदि दूसरे लोकों में जिसकी कीर्ति का गान होता था और शुद्ध आचरण के द्वारा जो माता और पिता दोनों के ही कुलों के दीपक के समान था उस सुषेण नामक शूरसेन देश के राजा को दिखाकर अन्त:पुर की रक्षा में नियुक्त सुनन्दा ने राजकुमारी से कहा—

४६. विधिपूर्वक यज्ञ करने वाला यह राजा नीपवंश में उत्पन्न हुआ है। उसके आश्रय में आकर गुणों में उसी प्रकार पारस्परिक विरोध नहीं रहा जैसे शान्त मुनियों के आश्रम में जंगली पशु स्वाभाविक विरोध को छोड़ देते हैं।

४७. आंखों को मनोहर लगने वाली जिसकी शोभा अपने घर में चन्द्रमा की किरणों के समान प्रवेश करती है परन्तु शत्रुओं के नगरों में जहां प्रासादों के आगे घास-फूस उग आई है उसका तज असह्य हो जाता है।

४८. जलविहार के समय जिसके अन्त:पुर की स्त्रियों के स्तनों पर लगे हुए चन्दन के धुल जाने से मथुरा में होत हुए भी सूर्यकन्या यमुना ऐसी जान पड़ती है मानों उसमें गंगा की लहरों का जल मिल गया हो।

त्रस्तेन तार्क्ष्यात्किल कालियेन मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः ।
वक्षःस्थलव्यापि रुचं दधानः सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम् ।।४९।।

सम्भाव्य भर्तारममुं युवानं मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये ।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः ।।५०।।

अध्यास्य चाम्भःपृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि ।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु ।।५१।।

नृपं तमावर्तमनोज्ञनाभिः सा व्यत्यगादन्यवधूर्भवित्री ।
महीधरं मार्गवशादुपेतं स्त्रोतोवहा सागरगामिनीव ।।५२।।

अथाङ्गदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथम् ।
आसेदुषीं सादितशत्रुपक्षं बालामबालेन्दुमुखीं बभाषे ।।५३।।

असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च ।
यस्य क्षरत्सैन्यगजच्छलेन यात्रासु यातीव पुरो महेन्द्रः ।।५४।।

ज्याघातरेखे सुभुजो भुजाभ्यां बिभर्ति यश्चापभृतां पुरोगः ।
रिपुश्रियां साञ्जनबाष्पसेके बन्दीकृतानामिव पद्धती द्वे ।।५५।।

यमात्मनः सद्मनि सन्निकृष्टो मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः ।
प्रासादवातायनदृश्यवीचिः प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम् ।।५६।।

४९ गरुड़ के डर से यमुना को अपना निवास बनाने वाले कालिय नाग द्वारा दिये गये समस्त वक्षस्थल को जगमगाने वाले मणि को धारण करने ाला यह सुषेण मानो कौस्तुभ मणि धारी विष्णु को भी लज्जित करता है ।

५० इस युवक सुषेण को अपना स्वामी स्वीकार कर हे सुन्दरी, कोमल पल्लवों पर लगाई गई फूलों की सेज वाले उस वृन्दावन में जो कुबेर के चैत्ररथ वन से भी अधिक बढ़ चढ़कर है तुम यौवन के फल का उपभोग करो ।

५१ वर्षा ऋतु में मनोहर गोवर्द्धन पर्वत की गुफाओं में पानी की बूंद से सिंचित शिलाजीत की गंधवाली चट्टानों पर बैठकर तुम मयूरों का नृत्य देखो ।

५२ दूसरे की वधू बनने वाली और भंवर के समान सुन्दर नाभिवाली हे राजकुमारी इन्दुमती उसे छोड़कर उसी प्रकार आगे बढ़ गई जैसे समुद्र को जाने वाली नदी मार्ग में आये हुए पर्वत को छोड़कर आगे बढ़ जाती है।

५३ इसके बाद सेविका सुनन्दा ने केयूर से सुशोभित भुजा वाले तथा शत्रु पक्ष को पीड़ित करने वाले हेमांगद नामक कलिगदेश के राजा के पास आई हुई पूर्णचिन्द्रमा के समान मुखवाली राजकुमारी ने कहा——

५४ यह वही हेमांगद है जो महेन्द्र पर्वत के समान ही बलशाली और महेन्द्र पर्वत और महासमुद्र दोनों का स्वामी है। इसकी यात्राओं में सेना के उन हाथियों के बहाने, जिनकी कनपटी से मद चूता रहता है मानो महेन्द्र पर्वत ही आगे-आगे चलता है ।

५५ सुन्दर भुजाओं वाला यह राजा धनुषधारियों में अग्रणी है और इसकी भुजाओं में धनुष की डोरी को खींचने से जो रेखायें बन गई हैं वे ऐसी मालूम होती हैं मानों बन्दी की गई राजलक्ष्मियों के अंजन सहित आंसुओं के बहने से दो रेखायें पड़ गई हों ।

५६ अपने निवासस्थान में सोते हुए से उसे पास विद्यमान वह समुद्र जगाता है जिसने अपने गंभीर घोष से समयसूचक तूर्य के नाद को बन्द कर दिया है और जिसकी लहरें महल की खिड़कियों से दिखाई देती हैं।

अनेन सार्द्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु ।
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः ।।५७।।

प्रलोभिताप्याकृतिलोभनीया विदर्भराजावरजा तयैवम् ।
तस्मादपावर्तत दूरकृष्टा नीत्येव लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात् ।।५८।।

अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूपमेत्य ।
इतश्चकोराक्षि विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम् ।।५९।।

पाण्डयोऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन ।
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः ।।६०।।

विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेर्निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः ।
प्रीत्याश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः ।।६१।।

अस्त्रं हरादाप्तवता दुरापं येनेन्द्रलोकावजयाय दृप्तः।
पुरा जनस्थानविमर्दशङकी सन्धाय लंकाधिपतिः प्रतस्थे ।।६२।।

अनेन पाणौ विधिवद्गृहीते महाकुलीनेन महीव गुर्वी ।
रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः ।।६३।।

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु ।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ६४।।

५७. इसके साथ तुम ताल के वन के मर्मर शब्द से युक्त समुद्रतट पर विहार करो जहां दूसरे द्वीप से लौंग के फूल लानेवाली हवा तुम्हारे पसीने की बून्दों को सुखा देगी।

५८. विदर्भ देश के राजा भोज की मनमोहक रूपवाली कन्या इन्दुमती सुनन्दा द्वारा लुभाये जाने पर भी भाग्य द्वारा दूर ले जाई गई लक्ष्मी के समान उस प्रतिकूल भाग्य वाले हेमाङ्गद के पास से दूर चली गई।

५९. इसके अनन्तर दौवारिकी सुनन्दा ने देवता के समान रूपवाले उरग नामक नगर के स्वामी के पास आकर राजा भोज की कन्या इन्दुमती से यह कह कर बोली, हे चकोर के समान नेत्रवाली इधर देखो।

६०. यह पांड्य देश का राजा है जिसके कंधों पर लम्बा हार पड़ा है और जो हरिचन्दन का अंगराग लगाये हुए हैं। इसकी शोभा उस हिमालय के समान है जिसके शिखर मानों प्रातः कालीन सूर्य के प्रकाश से लाल हो रहे हों और जिसमें से निकल कर झरने बह रहे हों।

६१. महान् विन्ध्याचल को रोकने वाले और समुद्र को पूर्ण रूप से पीकर फिर उगल देने वाले अगस्त्य ऋषि प्रसन्न होकर अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर होनेवाले अवभृथ स्नान से गीले शरीर वाले उस राजा के सौस्नातिक बनते हैं।

६२. पुरानी बात है, जनस्थान के नष्ट होने की आशंका से लंका के स्वामी उद्धत रावण ने भी शिवजी से दुर्लभ अस्त्र प्राप्त करने वाले इस राजा से सन्धि करके ही इन्द्रलोक की विजय के लिये प्रस्थान किया था।

६३. महान कुल में उत्पन्न पांड्य देश के इस राजा द्वारा विशाल पृथ्वी के समान विधिपूर्वक ग्रहण किये जाने पर तुम रत्नों से मण्डित समुद्र की मेखला वाली दक्षिण दिशा की सपत्नी बनो।

६४. मलय देश के उन स्थानों में जहां पान की लता से घिरे हुए सुपारी के पेड़ हैं, जहां चन्दन के पेड़ में इलायची की लतायें लिपटी हुई है और जहां तमाल के पत्तों की शय्या बनी हुई है, तुम निरन्तर विहार करना स्वीकार करो।

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः ।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु ।।६५।।

स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयो लेभेऽन्तरं चेतसि नोपदेशः ।
दिवाकरादर्शनबद्धकोशे नक्षत्रनाथांशुरिवारविन्दे ।।६६।।

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।६७।।

तस्यां रघोः सूनुरुपस्थितायां वृणीत मां नेति समाकुलोऽभूत् ।
वामेतरः संशयमस्य बाहुः केयूरबन्धोच्छ्वसितैर्नुनोद ।।६८।।

तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं व्यावर्तताऽन्योपगमात्कुमारी ।
न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली ।।६९।।

तस्मिन् समावेशितचित्तवृत्तिमिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य ।
प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा सविस्तरं वाक्यमिदं सुनन्दा ।।७०।।

इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत् ।
काकुत्स्थशब्दं यत उन्नतेच्छाः श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोसलेन्द्राः ।।७१।।

महेन्द्रमास्थाय महोक्षरूपं यः संयति प्राप्तपिनाकिलीलः ।
चकार बाणैरसुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः ।।७२।।

६५. इस राजा का शरीर नीले कमल के समान श्यामवर्ण का है और तुम्हारा छरहरा शरीर गौरोचन के समान गोरा है। तुम दोनों का मेल एक-दूसरे की शोभा को बिजली और बादल क समान बढ़ाने वाला हो।

६६. विदर्भ देश के राजा की कन्या ने उसके उपदेश को उसी प्रकार मन के भीतर स्थान नहीं दिया जैसे सूर्य के न दिखाई देने से बंधे हुये कोष वाले कमल में चन्द्रमा की किरणों को स्थान नहीं मिलता।

६७. पति चुनने वाली इन्दुमती रात में ले जाई जाने वाली दीपक की लौ के समान जिस-जिसके पास से होकर निकल गई उनमें से प्रत्येक राजा का रंग राजमार्ग की अट्टालिका के समान फीका पड़ गया।

६८. उस राजकुमारी के सामने उपस्थित होने पर रघु के पुत्र अज को यह व्याकुलता हुई कि वह मुझे वरण करेगी या नहीं। उसके दाहिने हाथ ने केयूर बांधने के स्थान में फड़ककर उसके संशय को और भी बढ़ा दिया।

६९. सर्वांग सुन्दर उस अज को पाकर राजकुमारी फिर दूसरे राजा के पास न गई। खिले हुये आम के पास पहुंच कर भौंरों के समूह को किसी दूसरे वृक्ष की चाह नहीं रहती।

७०. चन्द्रमा के समान कान्तिवाली इन्दुमती को अज में अपना मन गड़ाये देख बातचीत के अनुक्रम को समझने वाली सुनन्दा ने विस्तारपूर्वक यह कहना आरम्भ किया—

७१. इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न राजाओं में प्रसिद्ध गुणों वाले ककुत्स्थ नाम के एक श्रेष्ठ राजा हुए हैं। इसीलिये उत्तर कोसल के महत्वाकांक्षी राजा इस प्रशंनीय काकुत्स्थ शब्द को पदवी के रूप में धारण करते हैं।

७२. युद्ध में विशाल सांड का रूप धारण करने वाले इन्द्र पर बैठकर शिवजी की लीला करते हुए उस ककुत्स्थ ने अपने बाणों से राक्षसों की स्त्रियों के गालों पर बने हुये फूल-पत्तों की चित्रकारी को मिटा दिया था।

ऐरावतास्फालनविश्लथं यः सङ्घट्टयन्नङ्गदमङ्गदेन ।
उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्यामर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ ।।७३।।

जातः कुले तस्य किलोरुकीर्तिः कुलप्रदीपो नृपतिर्दिलीपः ।
अतिष्ठदेकोनशतक्रतुत्वे शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये यः ।।७४।।

यस्मिन्महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्धपथे गतानाम् ।
वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम् ।।७५।।

पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति महाक्रतोर्विश्वजितः प्रयोक्ता ।
चतुर्दिगावर्जितसम्भृतां यो मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम् ।।७६।।

आरूढमद्रीनुदधीन्वितीर्णं भुजङ्गमानां वसतिं प्रविष्टम् ।
ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुबन्धि यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम् ।।७७।।

असौ कुमारस्तमजोऽनुजातस्त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्तः ।
गुर्वीं धुरं यो भुवनस्य पित्रा धुर्येण दम्यः सदृशं बिभर्ति ।।७८।।

कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ।।७९।।

ततः सुनन्दावचनावसाने लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या ।
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं प्रत्यग्रहीत्संवरणस्रजेव ।।८०।।

७३ ऐरावत हाथी को चलाने के कारण नीचे खिसक हुए केयूर से अपने केयूर को टकराते हुए वे ककुत्स्थ अपने श्रेष्ठ रूप को प्राप्त करने वाले इन्द्र के आधे आसन पर भी बैठे।

७४. उनके कुल में महान यशस्वी, कुल के दीपकस्वरूप राजा दिलीप उत्पन्न हुए। इन्द्र के दोष को शान्त करने के उद्देश्य से उन्होंने निन्यानवे यज्ञ करके ही यज्ञ करना बन्द कर दिया।

७५. उस दिलीप के पृथ्वी पर शासन करते समय विहार-स्थलों को जाने वाली स्त्रियों के आधे रास्ते में सो जाने पर हवा भी उनके वस्त्रों को नहीं सरकाती थी, फिर उनका अपहरण करने के लिये कौन हाथ उठाता।

७६. विश्वजित् नामक महान् यज्ञ करने वाले राजा दिलीप के पुत्र रघु इस समय अपने पिता के स्थान पर शासन कर रहे हैं जिन्होंने चारों दिशाओं से अर्जित और सम्वर्द्धित अपने ऐश्वर्य में से अपने पास केवल मिट्टी का पात्र ही शेष रहने दिया है।

७७ उनका यश पर्वतों के ऊपर चढ़ गया, समुद्रों को तैरकर पार कर गया, नागों के लोक में प्रवेश कर गया, ऊपर स्वर्ग आदि लोकों में पहुंच गया; उसको कोई टोकने वाला नहीं है। उनके यश का इतना विस्तार है कि उसका परिमाण जानना संभव नहीं।

७८. यह अज नामक राजकुमार स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के पुत्र जयन्त के समान है। गुणों को धारण करने की क्षमता वाला यह अज अपने कुशल पिता के समान ही पृथ्वी के बड़े भार को धारण करता है।

७९. कुल,. सुन्दरता, नई अवस्था और विनयप्रधान गुणों से तुम अपने सदृश इस राजकुमार का वरण करो जिससे सोना रत्न के पास पहुंच जाय।

८०. तब सुनन्दा की बात समाप्त होने पर राजकुमारी ने अपनी लज्जा को संकुचित करके स्वयंवर की माला के समान ही अपनी प्रसन्नतापूर्ण और निर्मल दृष्टि से कुमार को स्वीकार किया।

सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम् ।
रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टिं भित्वा निराक्रामदरालकेश्याः ।।८१।।

तथागतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्रभृदाबभाषे ।
आर्ये ! व्रजामोऽन्यत इत्यथैनां वधूरसूयाकुटिलं ददर्श ।।८२।।

सा चूर्णगौरं रघुनन्दनस्य धात्रीकराभ्यां करभोपमोरुः ।
आसञ्जयामास यथाप्रदेशं कण्ठे गुणं मूर्तमिवानुरागम् ।।८३।।

तया स्रजा मङ्गलपुष्पमय्या विशालवक्षःस्थललम्बया सः ।
अमंस्त कण्ठार्पितबाहुपाशां विदर्भराजावरजां वरेण्यः ।।८४।।

शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं
जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा ।
इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौराः
श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्यं विवव्रुः ।।८५।।

प्रमुदितवरपक्षमेकतस्तत्क्षितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम् ।
उषसि सर इव प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत् ।।८६।।

---

८१. वह राजकुमारी उस युवक राजकुमार अज से अपने प्रेम के बंधन को अपनी शालीनता के कारण व्यक्त न कर सकी। फिर भी उसका प्रेम उस घुंघराले बालों वाली राजकुमारी की छड़ी के समान पतले शरीर को भेदकर रोमांच के बहाने प्रकट हो गया।

८२. सखी इन्दुमती की ऐसी अवस्था होने पर बेत लेकर चलने वाली सहेली सुनन्दा ने परिहास करते हुए कहा, आर्ये, क्या हम दूसरे के पास चलें। इस पर उस वधू इन्दुमती ने क्रोध से आंखें तरेर कर उसे देखा।

८३. हाथी की सूंड़ के समान जंघाओं वाली राजकुमारी ने धात्री सुनन्दा के हाथों से मंगल चूर्ण से लाल हो रही माला को जो अनुराग का साकार रूप थी, रघुनन्दन अज के गले में ठीक स्थान पर पहनवा दिया।

८४. वरण करने योग्य राजकुमार अज ने मंगल पुष्पों से बनी उस माला के द्वारा, जो उसके विशाल वक्षःस्थल पर लम्बी पड़ी हुई थी, यह अनुभव किया कि विदर्भराज भोज की कन्या ने उसके गले में अपनी न छूटने वाली बाहें डाल दी हैं।

८५. उस स्वयम्वर में समान गुणों के मिलने से नगरवासियों के हृदय में प्रीति उत्पन्न हो गई और उन्होंने राजाओं के लिये कानों को चुभने वाला यह एक ही वाक्य कहा कि मेघ से मुक्त यह चांदनी चांद से जा मिली और जह्नु ऋषि की कन्या गंगा अपने अनुरूप समुद्र में प्रवेश कर गई।

८६. वह मण्डप, जिसमें एक ओर वर पक्ष प्रसन्न हो रहा था और दूसरी ओर राजाओं का वह समूह विद्यमान, था ऐसे उषःकालीन सरोवर जैसा लग रहा था जिसमें एक ओर कमल खिले हों और दूसरी ओर नींद में पड़ा हुआ कुमुद वन।

सप्तमः सर्गः

अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम् ।
स्वसारमादाय विदर्भनाथः पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव ॥१॥

सेनानिवेशान्पृथिवीक्षितोऽपि जग्मुर्विभातग्रहमन्दभासः ।
भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वाद्रूपेषु वेषेषु च साभ्यसूयाः ॥२॥

सान्निध्ययोगात्किल तत्र शच्याः स्वयंवरक्षोभकृतामभावः ।
काकुत्स्थमुद्दिश्य समत्सरोऽपि शशाम तेन क्षितिपाललोकः ॥३॥

तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारमिन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम् ।
वरः स वध्वा सह राजमार्गं प्राप ध्वजच्छायनिवारितोष्णम् ॥४॥

ततस्तदालोकनतत्पराणां सौधेषु चामीकरजालवत्सु ।
बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ॥५॥

आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः ।
बन्द्धुं बद्धुं न सम्भावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः ॥६॥

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव ।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ॥७॥

विलोचनं दक्षिणमंजनेन सम्भाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा ।
तथैव वातायनसन्निकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती ॥८॥

सातवाँ सर्ग

१. इसके अनन्तर विदर्भ देश के राजा भोज अनुकूल वर से युक्त अपनी बहन को लेकर, जो साक्षात् स्कन्द सहित देवसेना के समान लग रही थी, नगर में प्रवेश करने के लिये चल पड़े।

२. भोजराजकुमारी इन्दुमती के प्रति अपने मनोरथ व्यर्थ हो जाने पर अपने रूप और वेश को भी विफल मानते हुए वे राजा प्रातःकालीन नक्षत्रों के समान कान्तिहीन होकर अपने-अपने शिविर में चले गये।

३. उस स्वयंवर क्षेत्र में इन्द्राणी के समीप होने के कारण विघ्न करने वालों का अभाव था। इसी कारण से काकुत्स्थ अज से वैरभाव रखने वाले राजा भी शान्त हो गये।

४. फूलों आदि से बनायी गई नई रचनाओं से पूर्णरूप से संवारे गये इन्द्रधनुष के समान प्रकाशमान तोरणों से सजे हुए तथा पताकाओं की छाया से रुकी हुई धूपवाले राजमार्ग पर वह वर अपनी वधू के साथ पहुंचा।

५. इसके अनन्तर सोने की जालीवाली खिड़कियों वाले प्रासादों में उस अज को देखने में तन्मय नगर की स्त्रियों ने अपने दूसरे काम छोड़ दिये और इस प्रकार व्यवहार करने लगीं—

६. खिड़की की ओर सहसा जानेवाली एक स्त्री ने खुलकर गिरती हुई मालावाले अपन बालों को हाथ स रोककर भी तब तक बांधने की चिन्ता न की जब तक वहां पहुंच न गई।

७. किसी स्त्री ने श्रृंगार करनेवाली दासी के द्वारा फैलाये गये अपने पैर के अगले भाग को जिसमें गीला गीलारंग लगा हुआ था, खींच लिया और अपनी मंद चाल को छोड़कर खिड़की तक जाने में अपन पैरों के चिन्ह बना डाले।

८. दूसरी स्त्री ने दाहिनी आंख में अंजन लगाकर बांई आंख को बिना अंजन के ही रहने दिया और उसी रूप में अपने हाथ में अंजन की सलाई लिये हुए खिड़की के पास जा पहुंची।

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम् ।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः ।।९।।

अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती ।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा ।।१०।।

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ।।११।।

ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।
तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ।।१२।।

स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः स्वयंवरं साधुममंस्त भोज्या ।
पद्मेव नारायणमन्यथाऽसौ लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम् ।।१३।।

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत् ।।१४।।

रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथा हि बाला ।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम् ।।१५।।

इत्युद्गताः पौरवधूमुखेभ्यः शृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखाः कुमारः ।
उद्भासितं मङ्गलसंविधाभिः सम्बन्धिनः सद्म समाससाद ।।१६।।

९. जाली के भीतर अपनी दृष्टि डाले एक दूसरी स्त्री ने चलते हुए टूटी हुई साड़ी के चुनाव को बांधनेवाली डोरी को नहीं बांधा और नाभि में प्रवेश करने वाली आभूषणों की जगमगाहटवाले अपने हाथ से अपनी साड़ी पकड़े खड़ी रही।

१०. उस समय झटपट उठी हुई किसी स्त्री की आधी गुंथी हुई करधनी शीघ्रता से पैर फेंकने के कारण पद-पद पर रत्नों के गिरने से अगूंठे की जड़ में लगा सूत का धागा बनकर रह गई।

११. वे खिड़कियां जिनकी जालियों का खाली स्थान अत्यधिक कौतूहल वाली उन स्त्रियों के आसव की गन्ध से पूर्ण मुखों से व्याप्त था, चंचल नत्र रूपी भौंरों से ऐसी मालूम हो रही थीं मानो उन्हें सहस्रदल कमलों से सजाया गया हो।

१२. रघु के पुत्र अज को अपनी दृष्टियों से पान करती हुई उन स्त्रियों का ध्यान किसी और वस्तु की ओर नहीं गया जैसे उनकी शेष इन्द्रियों की गति-विधि पूर्णरूप से उनके नेत्रों में ही समाविष्ट हो गयी हो।

१३. पीठ पीछे राजाओं द्वारा मनोरथ के रूप में वरण की गई भोजराज की कन्या ने स्वयवंर को ही अच्छा समझा और यही उचित भी था। अन्यथा जैसे लक्ष्मी ने नारायण को प्राप्त किया था उसी प्रकार वह अपने अनुरूप पति को कैसे प्राप्त करती।

१४. यदि स्पृहणीय शोभावाली इस जोड़ी को ब्रह्मा आपस में न मिलाता तो उसके द्वारा इस जोड़ी में सुन्दरता का समावेश करने का प्रयत्न ही विफल हो जाता।

१५. ये दोनों निश्चय ही रति और कामदेव थे। तभी तो यह राजकुमारी हजारों राजाओं में से अपने जैसे रूपवाले इसी राजा के पास गई। मनुष्य का मन पूर्वजन्म के साथ की बात को जानता है।

१६. इस प्रकार नगर की स्त्रियों के मुखों से निकली हुई कानों के लिय मधुर बातें सुनते हुए राजकुमार अज ने मंगलकार्यों के समय की गई सजावट से सुशोभित अपने संबंधी के भवन में प्रवेश किया।

ततोऽवतीर्याशु करेणुकायाः स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः ।
वैदर्भनिर्दिष्टमथो विवेश नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः ।।१७।।

महार्हसिंहासनसंस्थितोऽसौ सरत्नमर्घ्यं मधुपर्कमिश्रम् ।
भोजोपनीतं च दुकूलयुग्मं जग्राह सार्धं वनिताकटाक्षैः ।।१८।।

दुकूलवासाः स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधरक्षैः ।
वेलासकाशं स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः ।।१९।।

तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधा हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः ।
तमेव चाधाय विवाहसाक्ष्ये वधूवरौ सङ्गमयाञ्चकार ।।२०।।

हस्तेन हस्तं परिगृह्य वध्वाः स राजसूनुः सुतरां चकासे ।
अनन्तराशोकलताप्रवालं प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन ।।२१।।

आसीद्वरः कण्टकितप्रकोष्ठः स्विन्नाङ्गुलिः संववृते कुमारी ।
तस्मिन्द्वये तत्क्षणमात्मवृत्तिःसमं विभक्तेव मनोभवेन ।।२२।।

तयोरपाङ्गप्रतिसारितानि क्रियासमापत्तिनिर्वर्तितानि ।
ह्रीयन्त्रणामानशिरे मनोज्ञामन्योन्यलोलानि विलोचनानि ।।२३।।

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे ।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ।।२४।।

१७. इसके बाद शीघ्र ही हथिनी से उतरकर कामरूप के राजा के हाथ में अपना हाथ दे उन्होंने विदर्भराज द्वारा बताये गये चौक में इस प्रकार प्रवेश किया मानो स्त्रियों के मनों में ही प्रविष्ट हुए हों।

१८. बहुमूल्य सिंहासन पर बैठे हुए अज ने भोज द्वारा लाई गई रत्न सहित पूजा की सामग्री को, जिसमें मधुपर्क सहित दुपट्टे की एक जोड़ी भी थी, स्त्रियों के कटाक्ष के साथ ग्रहण किया।

१९. दुपट्टा डाले हुए अज को विनयशील अन्तःपुर के अधिकारियों ने वधू के समीप उसी प्रकार पहुंचाया जैसे बिखरे हुए फेन की पंक्तियोंवाला समुद्र चन्द्रमा की नयी किरणों द्वारा तट के पास ले जाया जाता है।

२०. भोजराज के अग्नि के समान तेजस्वी और सम्मानित पुरोहित ने घी आदि हवन की वस्तुओं से अग्नि में हवन करके और अग्नि को ही विवाह का साक्षी बनाकर वर और वधू का पारस्परिक मिलन कराया।

२१. वह राजकुमार अपने हाथ से वधू का हाथ पकड़ने पर बहुत अधिक सुन्दर दिखाई दिया, जैसे आम का वृक्ष अपने पल्लव से घनी अशोक लता के पल्लव से मिलकर शोभित होता है।

२२. इससे वर की कलाई के ऊपरी भाग में रोमांच हो उठा और कुमारी की उंगलियों में पसीना आ गया। उस समय ऐसा लगा मानो कामदेव ने उन दोनों में अपनी चेष्टा समान रूप से विभक्त कर दी हो।

२३. देखने का काम समाप्त होने पर लौटी हुई और एक-दूसरे को देखने के लिये फिर भी चंचल आंखों के सिरों तक फैली हुई उन दोनों की दृष्टियां लज्जाजनित मनोहर संकोच में पड़ गईं।

२४. उठती हुई लपटों वाली अग्नि की प्रदक्षिणा करती हुई वह जोड़ी ऐसी शोभायमान हुई जैसे मेरु पर्वत के समीप दिन और रात एक साथ विद्यमान हों।

नितम्बगुर्वी गुरुणा प्रयुक्ता वधूर्विधातृप्रतिमेन तेन ।
चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ ।।२५।।

हविःशमीपल्लवलाजगन्धी पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः ।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे ।।२६।।

तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम् ।
वधूमुखं पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद्बभूव ।।२७।।

तौ स्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा पुरन्ध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम् ।
कन्याकुमारौ कनकासनस्थावार्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम् ।।२८।।

इति स्वसुर्भोजकुलप्रदीपः सम्पाद्य पाणिग्रहणं स राजा ।
महीपतीनां पृथगर्हणार्थं समादिदेशाधिकृतानधिश्रीः ।।२९।।

लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते ह्रदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः ।
वैदर्भमामन्त्र्य ययुस्तदीयां प्रत्यर्प्य पूजामुपदाछलेन ।।३०।।

स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम् ।
आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ ।।३१।।

भर्तापि तावत्क्रथकैशिकानामनुष्ठितानन्तरजाविवाहः ।
सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः प्रास्थापयद्राघवमन्वगाच्च ।।३२।।
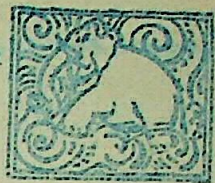
२५. ब्रह्मा के समान पूज्य गुरु के द्वारा कहे जाने पर बड़े-बड़े नितम्बों वाली उस लज्जावती वधू ने,जिसके नेत्र मतवाले चकोर जैसे थे, आग में खीलों की अंजलि डाली।

२६. हवन की सामग्री, शमी के पत्ते और खीलों की गन्धवाला पवित्र धुंआ आग में से ऊपर उठा और उस राजकुमारी के गालों को छूकर उसकी शिखा क्षण भर के लिये कान का कमल बन गई।

२७. विवाह-संस्कार के इस धुंएं के लगने से उस वधू के मुख की यह दशा हुई कि उसकी आखें अंजन से मिले आंसू से भर गईं, कान में पहने हुए यव के अंकुरों का कर्णपूर बहुत ही मुरझा गया और उसके गाल लाल हो गये।

२८. सोने के आसन पर बैठे हुये कन्या और कुमार दोनों ने ही विशेष गृहस्थों, बन्धु सहित राजा तथा पति और पुत्रों वाली स्त्रियों द्वारा क्रम से डाले गये गीले अक्षतों का अनुभव किया।

२९. इस प्रकार अति समृद्ध, भोजकुल के दीपक उस राजा ने अपनी बहन इन्दुमती का विवाह-संस्कार कराके अपने अधिकारियों को यह आदेश दिया कि राजाओं का अलग-अलग सत्कार किया जाय।

३०. प्रसन्नता के हाव-भाव से अपने मन के विकारों को ढंकने वाले वे राजा बाहर से निर्मल किन्तु भीतर छिपे हुए मगर वाले सरोवर के समान लग रहे थे। उन्होंने विदर्भराज को बुलाकर सत्कार में दी गई उनकी वस्तुओं को भेंट के बहाने वापस कर दिया और चले गय।

३१. कार्य की सिद्धि के विषय में पहले से ही संकेत करने वाले और समय पर प्राप्त होने वाली उस स्त्री रूपी योग्य-वस्तु को प्राप्त करने के अभिलाषी वे राजा अज के मार्ग को घेरकर खड़े हो गये।

३२. विदर्भराज ने भी तब अपनी छोटी बहन का विवाह सम्पन्न करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार दहेज में धन देकर रघु के पुत्र को विदा किया और स्वयं उनक पीछे हो लिये।

तिस्रस्त्रिलोकप्रथितेन सार्धमजेन मार्गे वसतीरुषित्वा ।
तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः पर्वात्यये सोम इवोष्णरश्मेः ।।३३।।

प्रमन्यवः प्रागपि कोसलेन्द्रे प्रत्येकमात्तस्वतया बभूवुः ।
अतो नृपाश्चक्षमिरे समेताः स्त्रीरत्नलाभं न तदात्मजस्य ।।३४।।

तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्यां रुरोध राजन्यगणः स दृप्तः ।
बलिप्रदिष्टां श्रियमाददानं त्रैविक्रमं पादमिवेन्द्रशत्रुः ।।३५।।

?

तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधमादिश्य पित्र्यं सचिवं कुमारः ।
प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरङ्गः ।।३६।।

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरङ्गसादी तुरगाधिरूढम् ।
यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम् ।।३७।।

नदत्सु तूर्येष्वविभाव्यवाचो नोदीरयन्ति स्म कुलोपदेशान् ।
बाणाक्षरैरेव परस्परस्य नामोर्जितं चापभृतः शशंसुः ।।३८।।

उत्थापितः संयति रेणुरश्वैः सान्द्रीकृतः स्यन्दनवंशचक्रैः ।
विस्तारितः कुञ्जरकर्णतालैर्नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम् ।।३९।।

मत्स्यध्वजा वायुवशाद्विदीर्णैर्मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि ।
बभुः पिबन्तः परमार्थमत्स्याः पर्याविलानीव नवोदकानि ।४०।।

३३. कुण्डिनपुर के स्वामी भोज तीनों लोक में यशस्वी अज के साथ तीन रात रहकर वैसे ही लौट आये, जैसे अमावास्या समाप्त होने पर चन्द्रमा सूर्य से अलग हो जाता है।

३४. ये राजा लोग वैयक्तिक रूप से कोसल देश के स्वामी रघु के दिग्विजय में धन प्राप्त करने के कारण पहले से ही वैर बढ़ाये हुए थे। इसलिये उन एकत्रित राजाओं ने उसके पुत्र अज का स्त्रीरत्न प्राप्त करना सहन नहीं किया।

३५. राजाओं के उस उद्धत समुदाय ने भोज की कन्या इन्दुमती को ले जाते हुए उस अज को रास्ते में उसी प्रकार रोका जैसे बलि द्वारा दिये गये ऐश्वर्य को स्वीकार करते हुए वामन के पैर को प्रह्लाद ने रोक लिया था।

३६. राजकुमार अज ने उस इन्दुमती की रक्षा के लिये बहुत से योद्धाओं से युक्त ज्ञानी और अनुभवी अपने सचिव को आदेश देकर स्वयं राजाओं की उस सेना का उसी प्रकार सामना किया जैसे उमड़ता हुआ सोन नद गंगा के प्रवाह को रोक देता है।

३७. वहां समान प्रतिद्वंदियों का परस्पर ऐसा युद्ध हुआ जिसमें पैदल ने पैदल पर, रथवाले ने रथवाले पर, घुड़सवार ने घुड़सवार पर और हाथी-सवार ने हाथीसवार पर आक्रमण किया।

३८. उन धनुषधारियों ने जिन्हें रणभेरी बजने पर एक-दूसरे की बात सुनाई नहीं दे रही थी अपने कुल क नामों का तो उच्चारण नहीं किया परन्तु बाणों पर अंकित अक्षरों से मानो एक-दूसरे को अपना-अपना विख्यात नाम बता दिया।

३९. युद्ध में घोड़ों से उड़ायी गई, रथों के समूह से घनी की गई और हाथियों के कानों के पटकने स फैली हुई धूल ने सूर्य को कपड़े की तरह ढक लिया।

४०. हवा के वेग से फैले हुए मुंह से बढ़ी हुई सेना की धूल को पीती हुई मछली की आकार की पताकाएं ऐसी लगती थीं मानो सचमुच की मछलियां नई वर्षा के मटमैले जल को पी रही हों।

रथो रथाङ्गध्वनिना विजज्ञे विलोलघण्टाक्वणितेन नागः ।
स्वभर्तृ नामग्रहणाद्‌बभूव सान्द्रे रजस्यात्मपरावबोधः ॥४१॥

आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य ।
शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः ॥४२॥

सच्छिन्नमूलः क्षतजेन रेणुस्तस्योपरिष्टात्पवनावधूतः ।
अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितो धूम इवाबभासे ॥४३॥

प्रहारमूर्च्छापगमे रथस्था यन्तॄनुपालभ्य निर्वर्तिताश्वान् ।
यैः सादिता लक्षितपूर्वकेतूंस्तानेव सामर्षतया निजघ्नुः ॥४४॥

अप्यर्धमार्गे परबाणलूना धनुर्भृतां हस्तवतां पृषत्काः ।
सम्प्रापुरेवात्मजवानुवृत्त्या पूर्वार्धभागैः फलिभिः शरव्यम् ॥४५॥

आधोरणानां गजसन्निपाते शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः ।
हृतान्यपि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः ॥४६॥

पूर्वं प्रहर्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी ।
तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकांक्ष ॥४७॥

तनुत्यजां वर्मभृतां विकोशैर्बृहत्सु दन्तेष्वसिभिः पतद्भिः ।
उद्यन्तमग्नि शमयांबभूवुर्गजा विविग्नाः करशीकरेण ॥४८॥

४१. धूल के घनीभूत हो जाने के कारण वहां पहिये की घरघराहट से रथ का, हिलते हुए घंटों की टनटनाहट से हाथी का और अपने स्वामी का नाम लेने पर अपने और पराये का बोध होता था।

४२. युद्धक्षेत्र में फैले हुए, दृष्टि पथ को रोकने वाली धूल के अन्धकार में हथियारों से आहत घोड़े, हाथियों और योद्धाओं से निकलते हुए रक्त का प्रवाह बालसूर्य बन गया।

४३. वह धूल, जिसकी जड़ रक्त के बहने से कट गई थी और जिसे हवा ने ऊपर उड़ा दिया था, इस प्रकार चमक रही थी मानो वह उस अग्नि का पहले से उठा हुआ धुआं हो जिसका केवल अंगार ही बच रहा हो।

४४. रथियों ने चोट से आई मूर्च्छा के दूर होने पर घोड़ों को लौटा लाने वाले सारथियों को उलाहना देते हुए पहले देखी हुई पताकाओं से पहचाने गये उन व्यक्तियों को जिन्होंने उन पर पहले आघात किया था, क्रोध में आकर मार डाला।

४५. आधे रास्ते में शत्रुओं के बाणों से काटे गये धनुषधारियों के बाणों के फलवाले आगे के आधे भाग अपनी गति की अनुवृत्ति के कारण अपने लक्ष्य पर पहुंच ही गये।

४६. हाथियों के युद्ध में छुरे की धार के समान तेज धार वाले चक्रों से हाथियों पर सवार योद्धाओं के कटे हुए सिर जिनके बाल बाजों के नखों के सिरों में उलझ गये थे, देर से नीचे गिरे।

४७. पहले प्रहार करने वाले घुड़सवार ने बदले में प्रहार करने में असमर्थ और घोड़े के कन्धे पर पड़ी हुई देह वाले मूर्च्छित शत्रु पर फिर से प्रहार नहीं किया अपितु यह चाहा कि वह फिर जीवित हो उठे।

४८. अपने प्राणों से खेलने वाले कवचधारियों की नंगी तलवारों का प्रहार बड़े-बड़े दांतो पर पड़ने से उठने वाली आग की लपटों को भयभीत हाथियों ने अपनी सूंड़ों से निकले हुए जलकणों से शान्त कर दिया।

शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेव ।
रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्या रराज मृत्योरिव पानभूमिः ॥४९॥

उपान्तयोर्निष्कुषितं विहङ्गैराक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियापि ।
केयूरकोटिक्षततालुदेशा शिवा भुजच्छेदमपाचकार ॥५०॥

कश्चिद्द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य ।
वामांङ्गसंसक्तसुरांगनः स्वं नृत्यत्कबन्धं समरे ददर्श ॥५१॥

अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां तावेव सूतौ रथिनौ च कौचित् ।
व्यश्वौ गदाव्यायतसम्प्रहारौ भग्नायुधौ बाहुविमर्दनिष्ठौ ॥५२॥

परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रोरुत्क्रान्तवाय्वोः समकालमेव ।
अमर्त्यभावेऽपि कयोश्चिदासीदेकाप्सरःप्रार्थितयोर्विवादः ॥५३॥

व्यूहावुभौ तावितरेतरस्माद्भङ्गं जयं चापतुरव्यवस्थम् ।
पश्चात्पुरोमारुतयोः प्रवृद्धौ पर्यायवृत्त्येव महार्णवोर्मी ॥५४॥

परेण भग्नेऽपि बले महौजा ययावजः प्रत्यरिसैन्यमेव ।
धूमो निवर्त्येत समीरणेन यतस्तु कक्षस्तत एववह्निः ॥५५॥

रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः ।
निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः ॥५६॥

४९. बाणों से कटे हुए सिररूपी फलों, औंधे गिरे हुए शिरस्त्राणरूपी प्यालों तथा रक्तरूपी मदिरा के प्रवाह से युक्त वह युद्धभूमि मृत्यु की पान-स्थली जैसी लगने लगी।

५०. एक स्यारिन मांसभक्षी पक्षियों द्वारा आसपास से खोदकर खाये गये बांह के उस टुकड़े को, जिसक केयूर के सिरे से उसका तालु कट गया था, कच्चे मांस का प्रेमी होते हुए भी उन्हीं पक्षियों के लिये फेंककर हट गयी।

५१. कोई योद्धा शत्रु की तलवार से सिर कटने पर भी तत्काल ही विमानवाला देवता बन गया और अपने बायें भाग में एक देवांगना को लिपटाये हुए उसने अपने धड़ को युद्ध में नाचते देखा।

५२. कोई दो वीर अपने-अपने सारथियों के मारे जाने के कारण स्वयं ही सारथी और रथी बन गये। जब उनके घोड़े मारे गये तो वे एक दूसरे पर गदाओं से प्रहार करने लगे और हथियारों के टूट जाने पर बाहु युद्ध करते हुए मारे गये।

५३. परस्पर प्रहार करने वाले किन्हीं दो योद्धाओं ने एक दूसरे को चोट पहुंचाकर एक साथ ही प्राण दे दिये; पर देवत्व की स्थिति प्राप्त करने पर भी एक ही अप्सरा को चाहने के कारण उनमें झगड़ा हो गया।

५४. आगे और पीछे की हवा के द्वारा क्रमश: उठाई गई समुद्र की लहरों के समान उन दोनों सैन्य समूहों ने एक-दूसरे से जय और पराजय दोनों ही पाईं।

५५. शत्रु के द्वारा अपनी सेना के छिन्न-भिन्न कर दिये जाने पर भी महान् तेजस्वी अज शत्रु की सेना की ओर ही अग्रसर हुआ। हवा, धुएं को ही हटा सकती है, आग तो वहीं रहेगी जहां घास-फूस होगी।

५६. रथ, तर्कश, कवच और धनुषवाले उस तेजस्वी एकमात्र वीर ने राजाओं के समूह को उसी प्रकार रोका जैसे महावराह ने कल्प के अन्त में प्रलय मचानेवाले समुद्र के जल को रोका था।

स दक्षिणं तूणमुखेन वामं व्यापारयन् हस्तमलक्ष्यताजौ ।
आकर्णकृष्टा सकृदस्य योद्धुर्मौर्वीव बाणान्सुषुवे रिपुघ्नान् ।।५७।।

स रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैर्व्यक्तोर्ध्वरेखा भ्रुकुटीर्वहद्भिः ।
तस्तार गां भल्लनिकृत्तकण्ठैर्हुंकारगर्भैर्द्विषतां शिरोभिः ।।५८।।

सर्वैर्बलाङ्गैर्द्विरदप्रधानैः सर्वायुधैः कङ्कटभेदिभिश्च ।
सर्वप्रयत्नेन च भूमिपालास्तस्मिन्प्रजह्रुर्युधि सर्व एव ।।५९।।

सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथैः परेषां ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्यः ।
नीहारमग्नो दिनपूर्वभागः किञ्चित्प्रकाशेन विवस्वतेव ।।६०।।

प्रियंवदात्प्राप्तमसौ कुमारः प्रायुङ्क्त राजस्वधिराजसूनुः ।
गान्धर्वमस्त्रं कुसुमास्त्रकान्तः प्रस्वापनं स्वप्ननिवृत्तलौल्यः ।।६१।।

ततो धनुष्कर्षणमूढहस्तमेकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम् ।
तस्थौ ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं निद्राविधेयं नरदेवसैन्यम् ।।६२।।

ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः ।
तेन स्वहस्तार्जितमेकवीरः पिबन्यशो मूर्तमिवाबभासे ।।६३।।

शङ्खस्वनाभिज्ञतया निवृत्तास्तं सन्नशत्रुं ददृशुः स्वयोधाः ।
निमीलितानामिव पंकजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशाङ्कम् ।।६४।।

५७ तर्कश के मुंह से लगे दाहिने हाथ का युद्ध में उपयोग करते हुए वह बहुत ही सुन्दर दिखाई देता था। बार बार कान तक खिंची हुई उस योद्धा के धनुष की डोरी मानों शत्रुओं को मारने वाले बाणों को स्वयं उत्पन्न करती थी।

५८ उसने क्रोध से काटे जाने के कारण और भी लाल ओठों वाले, स्पष्ट दिखाई देने वाली ऊंची रेखाओंवाली भोहों को धारण करने वाले और हुंकार भरे कंठवाले शत्रुओं के सिरों को भल्ल नामक बाणों से काट-काटकर भूमि को पाट दिया।

५९ उस युद्ध में सारे राजाओं ने एक साथ मिलकर हाथियों की सेना जिसमें प्रधान थी ऐसी समस्त अंगों से पूर्ण सेना और कवच को काटने वाले सभी हथियारों से युक्त होकर और सभी प्रयत्न करके अज पर आक्रमण किया।

६० उसका रथ शत्रुओं के हथियारों के समूह से बिल्कुल ढक गया था। जैसे हिम से ढके हुए प्रातःकाल की पहचान थोड़े प्रकाशवाले सूर्य से होती है उसी प्रकार केवल झण्डे के सिरे से ही उसे देखा जा सकता था।

६१ फूलों के अस्त्र धारण करनेवाले कामदेव के समान सुन्दर और निद्रा की इच्छा से मुक्त महाराज रघु के पुत्र राजकुमार अज न प्रियंवद से प्राप्त नींद उत्पन्न करनेवाले प्रस्वापन नामक गांधर्व अस्त्र का प्रयोग किया।

६२ इससे राजाओं की सेना नींद में पड़ गई और उसकी स्थिति यह हो गई कि धनुष के खींचने में सैनिकों के हाथ निष्क्रिय हो गये, शिरस्त्राण सरक कर एक ओर कंधों पर जा गिरे और उनके शरीर झंडों के डंडों के सहारे लुढ़क गये।

६३ तब राजकुमार अज ने अपनी प्रिया इन्दुमती के द्वारा रस प्राप्त करने वाले अपने अधर और ओठ पर शंख रखकर उसे बजाया। अपने ओंठों पर शंख रखने से वह एक मात्र वीर ऐसा लगा मानों अपने ही हाथों से अर्जित अपने मूर्तिमान यश को पी रहा हो।

६४ शंख की ध्वनि को पहचान कर वापस आये हुए उसके अपने योद्धाओं ने उस अज को देखा जिसके शत्रु नींद में मग्न थे। उनके बीच वह ऐसा लग रहा था मानों बन्द कमलों के बीच चमकता हुआ चन्द्रमा हो।

सशोणितैस्तेन शिलीमुखाग्रैर्निक्षेपिताः केतुषु पार्थिवानाम् ।
यशो हृतं सम्प्रति राघवेण न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः ।।६५।।

स चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षण भिन्नमौलिः ।
ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुर्भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे ।।६६।।

इतः परानर्भकहार्यशस्त्रान्वैदर्भि ! पश्यानुमता मयासि ।
एवंविधेनाहवचेष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः ।।६७।।

तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्सद्यो विमुक्तं मुखमाबभासे ।
निःश्वासबाष्पापगमात्प्रपन्नः प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः ।।६८।।

हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षाद्वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत् ।
स्थली नवाम्भःपृषताभिवृष्टा मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम् ।।६९।।

इति शिरसि स वामं पादमाधाय राज्ञामुदवहदनवद्यां तामवद्यादपेतः ।
रथतुरगरजोभिस्तस्य रूक्षालकाग्रा समरविजयलक्ष्मीः सैव मूर्ता बभूव
।।७०।।

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः सन्निवृत्तं
विजयिनमभिनन्द्य श्लाघ्यजायासमेतम् ।
तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभू
न्नहि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ।।७१।।

---

६५. रक्त में डूबे बाणों के फलक से उसने राजाओं के झंडों पर य अक्षर लिख दिये कि इस समय रघु के पुत्र अज ने तुम्हारे यश का ही हरण किया है, उसने कृपा करके तुम्हारे प्राण नहीं लिये ।

६६. शिरस्त्राण के हटा देने से जिसके केश बिखर गये थे और जिसके ललाट पर पसीने की बूंदें जमीं हुईं थीं ऐसा अज धनुष के एक सिरे पर अपना हाथ रखे अपनी प्रिया के पास आकर यह बोला ।

६७. हे विदर्भ की राजकुमारी इन्दुमती, इस प्रकार का युद्ध करके मैंने तुम्हें प्राप्त किया है, मैं तुम्हें अनुमति देता हूं और साथ ही मेरी तुम से यह प्रार्थना भी है कि तुम इन शत्रुओं को देखो जिनके हथियार बच्चे भी छीन सकते हैं ।

६८. शत्रुओं से उत्पन्न दुख से तत्काल ही छूटा हुआ उसका मुख निःश्वास की भाफ के दूर हो जाने से दर्पण के समान अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता से युक्त हो गया ।

६९. उसने प्रसन्न होने पर भी लज्जा के वशीभूत होने के कारण स्वयं नहीं अपितु अपनी सखियों के द्वारा अपने प्रिय अज का उसी प्रकार अभिनन्दन किया जैसे नये बादल की बूंदों से सींची गई भूमि मोर की बोली से मेघ समूह का अभिनन्दन करती है ।

७०. अज ने राजाओं के सिरों पर अपना बायां पैर रखा और उस निर्मल इन्दुमती को लेकर चल पड़ा । रथ के घोड़ों की धूल से रूखी बनी हुई अलकों की छोर वाली वह इन्दुमती उसके लिये मूर्तिमती युद्ध की विजय लक्ष्मी बन गई ।

७१. पहले से ही जिन्हे समाचार प्राप्त हो गया था ऐसे रघु प्रशंसनीय पत्नी सहित विजयी अज का अभिनन्दन करके और उस पर कुटुम्ब का भार रखकर मोक्ष के मार्ग के लिये उत्सुक हुए । कुल का भार वहन करने वाला विद्यमान होने पर सूर्य वंश के लोग गृहस्थ बनकर नहीं रहते ।

अष्टमः सर्गः

अथ तस्य विवाहकौतुकं ललितं बिभ्रत एव पार्थिवः ।
वसुधामपि हस्तगामिनीमकरोदिन्दुमतीमिवापराम् ॥१॥

दुरितैरपि कर्तुमात्मसात्प्रयतन्ते नृपसूनवो हि यत् ।
तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेति न भोगतृष्णया ॥२॥

अनुभूय वसिष्ठसम्भृतैः सलिलैस्तेन सहाभिषेचनम् ।
विशदोच्छ्वसितेन मेदिनी कथयामास कृतार्थतामिव ॥३॥

स बभूव दुरासदः परैर्गुरुणाऽथर्ववविदा कृतक्रियः ।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा ॥४॥

रघुमेव निवृत्तयौवनं तममन्यन्त नवेश्वरं प्रजाः ।
स हि तस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि ॥५॥

अधिकं शुशुभे शुभंयुना द्वितयेन द्वयमेव सङ्गतम् ।
पदमृद्धमजेन पैतृकं विनयेनास्य नवं च यौवनम् ॥६॥

सदयं बुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति ।
अचिरोपनतां स मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधूमिव ॥७॥

अहमेव मतो महीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत् ।
उदधेरिव निम्नगाशतेष्वभवन्नास्य विमानना क्वचित् ॥८॥

आठवां सर्ग

१. इसके बाद राजा रघु ने अज के हाथ में जो विवाह का सुन्दर मंगल-सूत्र धारण किय था दूसरी इन्दुमती के समान पृथ्वी को भी सौंप दिया।

२. राजाओं के लड़के बुरे उपायों से भी जिस राज्य को अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करते हैं उसे उपस्थित पाकर भी अज ने पिता की आज्ञा के रूप में ही स्वीकार किया, भोग की तीव्र अभिलाषा से नहीं।

३. वसिष्ठ द्वारा छिड़के गये जल से अज के साथ अभिषेक का अनुभव करके पृथ्वी ने मानों अपने विशद उच्छ्वास द्वारा अपनी कृतार्थता प्रकट की।

४, अथर्ववेद के ज्ञाता गुरु वसिष्ठ द्वारा अभिषेक का संस्कार किये जान पर अज शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष हो गया। अस्त्र के तेज के साथ ब्रह्मतेज का मेल मानो हवा और आग के सम्मिलन के समान हो गया।

५ प्रजा ने उस नये राजा को लौटे हुए यौवन वाला राजा रघु ही समझा, क्योंकि उसने रघु के केवल ऐश्वर्य को ही नहीं अपितु सारे ही गुणों को ग्रहण किया था।

६, समृद्धिशाली पैतृक पद ने अज को पाया और उसके नयें यौवन ने विनय को, इस प्रकार अपनी अपनी जोड़ी से मिलकर दोनों की शोभा बढ़ गई!

७. यह सोचकर कि कहीं वह उद्विग्न न हो लम्बी भुजाओं वाले अज ने हाल ही में प्राप्त पृथ्वी का नई-नई ब्याही गई बहू के समान सदय होकर भोग किया।

८. प्रजा में से सभी लोग यही सोचते थे कि मैं ही राजा का मान्य हूं। प्रजा के विषय में उसमें उसी प्रकार कभी तिरस्कार का भाव नहीं आया, जैसे सैकड़ों नदियों क होते हुए भी समुद्र में ऐसा भाव नहीं आता।

न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहानिव ।
स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन् ॥९॥

अथ वीक्ष्य रघुः प्रतिष्ठितं प्रकृतिष्वात्मजमात्मवत्तया ।
विषयेषु विनाशधर्मसु त्रिदिवस्थेष्वपि निःस्पृहोऽभवत् ॥१०॥

गुणवत्सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीपवंशजाः ।
पदवीं तरुवल्कवाससां प्रयताः संयमिनां प्रपेदिरे ॥११॥

तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः ।
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः ॥१२॥

रघुरश्रुमुखस्य तस्य तत्कृतवानीप्सितमात्मजप्रियः ।
न तु सर्प इव त्वचं पुनः प्रतिपेदे व्यपवर्जितां श्रियम् ॥१३॥

स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद् बहिः ।
समुपास्यत पुत्रभोग्यया स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया ॥१४॥

प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवं कुलमभ्युद्यतनूतनेश्वरम् ।
नभसा निभृतेन्दुना तुलामुदितार्केण समारुरोह तत् ॥१५॥

यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ ददृशाते रघुराघवौ जनैः ।
अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमंशाविव धर्मयोर्गतौ ॥१६॥

९. उसने न तो अधिक तीव्र और न अधिक नरम अपितु बीच के क्रम को अपना कर राजाओं को जड़ से न उखाड़कर उन्हें उसी प्रकार नम्र बनाया जैसे हवा वृक्षों को झुकाती है ।

१०. रघु ने जब यह देखा कि उनके पुत्र ने उनके समान ही अमात्य इत्यादि में अपना स्थान भली-भांति बना लिया तो स्वर्ग में निवास करते हुए भी विनष्ट होने वाले विषयों के भोग की ओर से इच्छारहित हो गये ।

११. ककुत्स्थ के वंशज वृद्धावस्था में गुणवान् पुत्र को अपना ऐश्वर्य देकर, गृहत्याग करके वृक्ष का वल्कल पहनने वाले सन्यासियों का पद प्राप्त करते रहे हैं ।

१२. वनवास के लिये तैयार पिता के चरणों में पगड़ी से सुशोभित अपना सिर रखकर पुत्र अज ने प्रणाम किया और याचना की कि मुझे छोड़कर आप न जायें ।

१३. पुत्रवत्सल रघु ने आंसू भरे मुख वाले अज की इच्छा पूरी की किन्तु जिस तरह सांप केंचुल को फिर नहीं अपनाता उसी तरह उन्होंने छोड़े हुए ऐश्वर्य को फिर ग्रहण नहीं किया ।

१४. जितेन्द्रिय राजा रघु ने अन्तिम आश्रम का जीवन अपनाकर नगर के बाहर अपना निवास बनाया और पुत्र द्वारा भोगी जाने वाली राज्य-लक्ष्मी ने वधू के समान उनकी सेवा की ।

१५. वह कुल जिसमें पहले राजा रघु अस्त हो रहे थे और नये राजा अज उदित हो रहे थ, अस्तगामी चन्द्रमा और उदय हुए सूर्य के द्वारा आकाश के साथ अपनी समता करने के लिये तुला पर आ बैठा ।

१६. यति और राजा के रूप में रघु और उनके पुत्र अज लोगों को ऐसे दिखाई दिये मानों मोक्ष और अभ्युदय रूपी फलों को देनेवाले धर्मों के पृथ्वी पर आये हुए दो अंश हों ।

अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्युयुजे नीतिविशारदैरजः ।
अनपायिपदोपलब्धये रघुराप्तैः समियाय योगिभिः ।।१७।।

नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा ।
परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम् ।।१८।।

अनयत्प्रभुशक्तिसम्पदा वशमेको नृपतीननन्तरान् ।
अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पंच शरीरगोचरान् ।।१९।।

अकरोदचिरेश्वरः क्षितौ द्विषदारम्भफलानि भस्मसात् ।
इतरो दहने स्वकर्मणां ववृते ज्ञानमयेन वह्निना ।।२०।।

पणबन्धमुखान्गुणानजः षडुपायुङ्क्त समीक्ष्य तत्फलम् ।
रघुरप्यजयद् गुणत्रयं प्रकृतिस्थं समलोष्टकाञ्चनः ।।२१।।

न नवः प्रभुराफलोदयात्स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरापरमात्मदर्शनात् ।।२२।।

इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिषिद्धप्रसरेषु जाग्रतौ ।
प्रसितावुदयापवर्गयोरुभयीं सिद्धिमुभाववापतुः ।।२३।।

अथ काश्चिदजव्यपेक्षया गमयित्वा समदर्शनः समाः ।।
तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः ।।२४।।

१७. अज ने एक ओर अर्जित पद की प्राप्ति के लिये नीति के पंडित मंत्रियों से सम्पर्क रखा और दूसरी ओर रघु ने मोक्ष पद की प्राप्ति के लिये प्रामाणिक योगियों से संगति की ।

१८. युवक राजा ने प्रजा को देखने के लिये न्याय के आसन को स्वीकार किया और वयोवृद्ध राजा रघु ने चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करने के लिये निर्जन स्थान में कुश से पवित्र आसन को ग्रहण किया ।

१९. एक ने बाहर के राजाओं को अपने कोष, दंड आदि प्रभु-शक्ति की संपदा से वश में किया तो दूसरे ने समाधि के अभ्यास से अपने शरीर में स्थित प्राण, अपान आदि पांच प्रकार की वायु को अपने वश में कर लिया ।

२०. नये राजा ने पृथ्वी पर शत्रुओं के कार्यों के फल को भस्म कर दिया तो दूसरा ज्ञान रूपी अग्नि से अपने कर्मों के भस्म करने में लग गया ।

२१. अज ने संधि आदि छः गुणों का प्रभाव देखकर प्रयोग किया और मिट्टी और सोने को समान समझने वाले रघु ने भी सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों को जीत लिया ।

२२. स्थिर होकर कर्म करने वाले नये राजा ने काम से विश्राम नहीं लिया और न निश्चल चित्त पुराने राजा ने ही परमात्मा के दर्शन पर्यन्त योग साधन से विश्राम लिया ।

२३. अनुचित कार्यों में लगे हुए अपने शत्रुओं और इन्द्रियों के प्रति जागरूक तथा अभ्युदय और मोक्ष में आसक्त उन दोनों ने दोनों प्रकार की सिद्धियां प्राप्त कीं ।

२४. इसके बाद सब में समान दृष्टि रखने वाले रघु अज की विशेष अपेक्षा से कुछ वर्ष व्यतीत करके योग समाधि के द्वारा मायारूपी अन्धकार से अतीत पुरुष परमात्मा में लीन हो गये ।

श्रुतदेहविसर्जनः पितुश्चिरमश्रूणिविमुच्य राघवः ।
विदधे विधिमस्यनैष्ठिकं यतिभिः सार्धमनग्निमग्निचित् ।।२५।।

अकरोत्सतदौर्ध्वदैहिकं पितृभक्त्या पितृकार्यकल्पवित् ।
न हि तेन पथा तनुत्यजस्तनयावर्जितपिण्डकाङ्क्षिणः ।।२६।।

स परार्ध्यगतेरशोच्यतां पितुरुद्दिश्य सदर्थवेदिभिः ।
शमिताधिरधिज्यकार्मुकः कृतवानप्रतिशासनं जगत् ।।२७।।

क्षितिरिन्दुमती च भामिनी पतिमासाद्य तमग्र्यपौरुषम् ।
प्रथमा बहुरत्नसूरभूदपरा वीरमजीजनत्सुतम् ।।२८।।

दशरश्मिशतोपमद्युतिं यशसा दिक्षु दशस्वपि श्रुतम् ।
दशपूर्वरथं यमाख्यया दशकण्ठारिगुरुं विदुर्बुधाः ।।२९।।

ऋषिदेवगणस्वधाभुजां श्रुतयागप्रसवैः स पार्थिवः ।
अनृणत्वमुपेयिवान्बभौ परिधेर्मुक्त इवोष्णदीधितिः ।।३०।।

बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहुश्रुतम् ।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना ।।३१।।

स कदाचिदवेक्षितप्रजः सह देव्या विजहार सुप्रजाः ।
नगरोपवने शचीसखो मरुतां पालयितेव नन्दने ।।३२।।

२५. अग्निहोत्र करने वाले रघु के पुत्र अज ने पिता के शरीर त्याग की बात सुनकर देर तक आंसू बहाये और सन्यासियों को साथ लेकर उनका अग्निरहित अन्तिम संस्कार किया।

२६. पिता के श्राद्ध के विधान को जानने वाले अज ने पिता के प्रति अपनी भक्ति के कारण उनका तिलोदक पिंडदान आदि के रूप में देहपरित्याग के बाद होने वाले कार्य किये। योग के मार्ग से शरीर त्याग करने वाले को पुत्र द्वारा दिये गये पिंडदान की आकांक्षा नहीं रहती।

२७. परमार्थ को जानने वालों के द्वारा यह उपदेश दिये जाने पर कि मोक्षत्व को प्राप्त अपने पिता के लिये शोक नहीं करना चाहिये उनकी मनोव्यथा शान्त हो गई और धनुष पर डोरी चढ़ाकर उन्होंने भू-मंडल को एकमात्र अपने शासन के अधीन कर लिया।

२८. उस महापराक्रमी पति को पाकर पृथ्वी और उनकी सुन्दर पत्नी इन्दुमती में से पहली ने बहुत से रत्न और दूसरी ने वीर पुत्र उत्पन्न किया।

२९. हजारों किरणों वाले सूर्य के समान प्रभावाले, अपने यश से दशों दिशाओं में प्रसिद्ध, दशकंठ रावण के शत्रु राम के पिता को विद्वानों ने दशरथ नाम से जाना।

३०. अध्ययन, यज्ञ और पुत्रोत्पत्ति के द्वारा ऋषि, देवता और पितरों से उऋण होकर वह राजा अपने मंडल से सूर्य के समान शोभित हुआ।

३१. उन व्यापक अज का केवल धन ही औरों के हित साधन क लिये न था अपितु उसका पौरुष दुखियों के भय को दूर करने के लिय और उनकी विपुल विद्या भी विद्वानों का सत्कार करने के लिये थी।

३२. एक बार प्रजा के रक्षक और सुन्दर सन्तान के पिता अपनी रानी इन्दुमती के साथ नगर के उपवन में उसी प्रकार बिहार कर रह थे मानों देवताओं का पालन करनेवाले इन्द्र नन्दन वन में शची के साथ विहार कर रह हों।

अथ रोधसि दक्षिणोदधेः श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम् ।
उपवीणयितुं ययौ रवेरुदयावृत्तिपथेन नारदः ।।३३।।

कुसुमैर्ग्रथितामपार्थिवैः स्रजमातोद्यशिरोनिवेशिताम् ।
अहरत्किल तस्य वेगवानधिवासस्पृहयेव मारुतः ।।३४।।

भ्रमरैः कुसुमानुसारिभिः परिकीर्णा परिवादिनी मुनेः ।
ददृशे पवनावलेपजं सृजती बाष्पमिवाञ्जनाविलम् ।।३५।।

अभिभूय विभूतिमार्तवीं मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम् ।
नृपतेरमरस्रगाप सा दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिम् ।।३६।।

क्षणमात्रसखीं सुजातयोः स्तनयोस्तामवलोक्य विह्वला ।
निमिमील नरोत्तमप्रिया हृतचन्द्रा तमसेव कौमुदी ।।३७।।

वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ।।३८।।

उभयोरपि पार्श्ववर्तिनां तुमुलेनार्तरवेण वेजिताः ।
विहगाः कमलाकरालयाः समदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः ।।३९।।

नृपतेर्व्यजनादिभिस्तमो नुनुदे सा तु तथैव संस्थिता ।
प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते ।।४०।।

३३. उसी समय दक्षिण समुद्र के तट पर स्थित गोकर्ण नामक स्थान में स्थापित शिव के समीप बीणा बजाने के लिये नारद मुनि सूर्य के उदय और परिभ्रमण के मार्ग आकाश में होकर गये।

३४. स्वर्गीय फूलों से गुंथी गई नारद की बीणा के ऊपरी सिरे पर लगी हुई माला को तेज हवा ने मानों सुगन्ध के लालच में उठा लिया।

३५. फूलों के पीछे दौड़ने वाले भौरों से व्याप्त नारद मुनि की बीणा मानों हवा के इस अपमान से उत्पन्न हुए अञ्जन मिले आंसुओं को गिराती हुई सी दिखाई पड़ी।

३६. वह दिव्य माला मधु और सुगन्ध की अधिकता से लताओं की ऋतु सम्बन्धी ऐश्वर्य को दबा कर राजा अज की पत्नी के विशाल स्तनों के शिखरों पर आ गिरी।

३७. सुन्दर स्तनों वाली राजा की सखी प्रिय इन्दुमती ने पल भर के लिये उस माला पर दृष्टि डाली और फिर विह्वल होकर उसने अपनी आंखें बन्द कर लीं मानों अन्धकार ने चान्दनी से चन्द्रमा को छीन लिया हो।

३८. इन्दुमती का शरीर ज्ञानशून्य हो गया और स्वयं गिरते हुए उसने अपने पति अज को भी भूमि पर उसी प्रकार गिरा दिया जैसे तेल की बूंदों के गिरने पर दीपक की शिखा भी भूमि पर गिर जाती है।

३९. दोनों के आसपास उपस्थित सेवकों के चीखचीख कर रोने से भयभीत कमल वाले तालाबों के पक्षी भी मानों उस उपवन में समान रूप से दुखी होकर रोने लगें।

४०. राजा की मूर्च्छा तो पंखा आदि करने से दूर हो गई पर वह रानी वैसी ही पड़ी रही। चिकित्सा आयु रहने पर ही सफल होती है।

प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थामथ सत्त्वविप्लवात् ।
स निनाय नितान्तवत्सलः परिगृह्योचितमङ्कमङ्गनाम् ।।४१।।

पतिरङ्कनिषण्णया तया करणापायविभिन्नवर्णया ।
समलक्ष्यत बिभ्रदाविलां मृगलेखामुषसीव चन्द्रमाः ।।४२।।

विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ।।४३।।

कुसुमान्यपि गात्रसङ्गमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः ।।४४।।

अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ।।४५।।

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।।४६।।

अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ।।४७।।

कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि ।
कथमेकपदे निरागसं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे ।।४८।।

४१. चेतनता नष्ट हो जाने के कारण टूटे हुए तार वाली बीणा के समान अवस्थावाली उस नारी को अन्त्यन्त प्रेम विभोंर हो अज ने अपने हाथों से उठाकर सुपरिचित गोद में ले लिया ।

४२. इन्द्रियों के ज्ञान शून्य हो जाने से बदले हुए रूप के कारण पति की गोद में पड़ी हुई इन्दुमती उषाकाल में मलिन मृग की रेखा धारण करने वाले चन्द्रमा के समान दिखाई दे रही थी ।

४३. अपनी स्वाभाविक धीरता को छोड़कर वे आंसू से रुंधे हुए कण्ठ से विलाप करने लगे । संतप्त होकर लोहा भी नरम हो जाता है फिर शरीरधारियों की तो बात ही क्या ।

४४. फूल भी यदि शरीर से लगकर प्राण लेने में समर्थ हो सकते हैं तो हे हन्त, यदि विधि ही प्रहार करने पर तुल गया हो तो और कौन सी वस्तु ऐसी है जो उसका साधन नहीं बन सकती ।

४५. अथवा जन्मधारियों का घातक काल कोमल वस्तु को कोमल वस्तु से ही मारने की व्यवस्था करता है । इसका पहला उदाहरण मैंने कमलिनी के रूप में देखा है जिसके लिये पाले की वर्षा विपत्ति बन जाती है ।

४६. यदि यह माला प्राण लेने वाली है तो हृदय पर रखने पर मुझे क्यों नहीं मारती । ईश्वर की इच्छा से कभी विष अमृत हो जाता है तो कभी अमृत विष ।

४७. अथवा मेरे भाग्य की विपरीतता से ब्रह्मा ने इस वज्र का निर्माण किया है, जिसने पेड़ को तो नहीं गिराया परन्तु उस पेड़ से लिपटी हुई लता को नष्ट कर दिया ।

४८. मेरे द्वारा बारम्बार अपराध करने पर भी जो मेरी अवज्ञा नहीं करती थी वह कैसे एक बारगी मुझ निर्दोष व्यक्ति को बात करने योग्य भी नहीं मानती ।

ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते ! विदितः कैतववत्सलस्तव ।
परलोकमसन्निवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः ।।४९।।

दयितां यदि तावदन्वगाद्विनिवृत्तं किमिदं तया विना ।
सहतां हतजीवितं मम प्रबलामात्मकृतेन वेदनाम् ।।५०।।

सुरतश्रमसम्भृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते ।
अथ चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमां देहभृतामसारताम् ।।५१।।

मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः ।।५२।।

कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान् ।
करभोरु ! करोति मारुतस्त्वदुपावर्तनशङ्कि मे मनः ।।५३।।

तदपोहितुमर्हसि प्रिये ! प्रतिबोधेन विषादमाशु मे ।
ज्वलितेन गुहागतं तमस्तुहिनाद्रेरिव नक्तमोषधिः ।।५४।।

इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्तकथं दुनोति माम् ।
निशि सुप्तमिवैकपङ्कजं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम् ।।५५।।

शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्त्रिणम् ।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः ।।५६।।
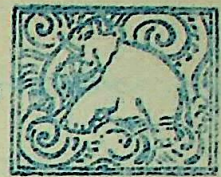
४९. हे उज्ज्वल हंसी हंसने वाली इन्दुमती, तुमने यह जान लिया है कि मैं शठ हूं और तुमसे छलपूर्वक प्रेम करता हूं। इसलिये मुझे बिना पूछे ही तुम इस लोक से परलोक में कभी न लौटने के लिये चली गईं।

५०. यदि यह मेरा अधम जीवन पहले प्रिय इन्दुमती के साथ चला गया था तो उसके बिना किसलिये लौट आया? अब यह अपने किये के अनुसार प्रबल वेदना को सहन करे।

५१. रतिविलास से उत्पन्न पसीने की बूंदें तुम्हारे मुंह पर अभी झलक ही रही हैं और तुम अपने स्वाभाविक रूप में ही ओझल हो गईं। देहधारियों की इस असारता को धिक्कार है।

५२. मैंने मन से भी तुम्हें न रुचने वाला कार्य पहले कभी नहीं किया फिर किस कारण तुम मुझे छोड़ रही हो। मैं तो पृथ्वी का पति नाम के लिये हूं, मेरा प्रेम तो तुम में ही स्वभावतः केन्द्रित है।

५३. फूलों से भलीभांति गुंथी हुई और बलखायी तुम्हारी काली अलकों को हिलाता हुआ पवन, हे हाथी की सूंड़ के समान जंघाओं वाली इन्दुमती, मेरे मन में यह संभावना उत्पन्न करता है कि तुम फिर जी उठोगी।

५४. इसलिये हे प्रिये, तुम शीघ्र ही जागकर मेरे दुख को उसी तरह दूर कर सकती हो जिस प्रकार प्रकाशवान औषधि हिमालय की गुफा के अन्धकार को रात में दूर कर देती है।

५५. रात में सोये हुए तथा जिसके भीतर के भौंरों की गूंज बन्द हो गई है ऐसे अद्वितीय कमल के समान हिलती अलकों वाला तुम्हारा मौन मुख मुझ दुख दे रहा है।

५६. रात चन्द्रमा को फिर प्राप्त करती है, चकवी जोड़ी बनाकर घूमने वाले चकवे को फिर पा जाती है, इस तरह उन दोनों के विरह की अवधि समाप्त हो जाती है फिर सदा के लिये गई हुई तुम मुझे क्यों न दुखी करोगी?

नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्पितम् ।
तदिदं विषहिष्यते कथं वद वामोरु ! चिताधिरोहणम् ।।५७।।

इयमप्रतिबोधशायिनी रशना त्वां प्रथमा रहःसखी ।
गतिविभ्रमसादनीरवा न शुचा नानुमृतेव लक्ष्यते ।।५८।।

कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम् ।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ।।५९।।

त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया ।
विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं न त्ववलम्बितुं क्षमाः ।।६०।।

मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनी च नन्विमौ ।
अविधाय विवाहसत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसाम्प्रतम् ।।६१।।

कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ।
अलकाभरणं कथं नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम् ।।६२।।

स्मरतेव सशब्दनूपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम् ।
अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वमशोकेन सुगात्रि ! शोच्यसे ।।६३।।

तव निःश्वसितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचितां समं मया ।
असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किन्नरकण्ठि ! सुप्यते ।।६४।।

५७. नये पल्लवों के बिछौने पर रखा हुआ भी तुम्हारा कोमल शरीर दुखने लगता था। हे सुन्दर जंघाओं वाली इन्दुमती, तुम्हारा वही शरीर चिता पर रखना भला कैसे सहन करेगा ?

५८ यह पहली और एकान्त में साथ रहनेवाली तुम्हारी सखी करधनी जो चंचल चाल की समाप्ति के साथ मौन हो गई है सदा के लिये सोई हुई तुम्हारे साथ मानों शोक के कारण प्राणहीन दिखाई दे रही है।

५९. कोयलों के पास सुन्दर भाषण, कलहंसियों के पास सुन्दर चाल, हरिणियों के पास चंचल चितवन और पवन से उद्वेलित लताओं के पास तुम्हारा विलास चला गया।

६०. स्वर्ग जाने के लिए उत्सुक होते हुये भी मुझे देखकर तुमने अपने इन गुणों को निश्चय ही उनमें स्थापित कर दिया किन्तु तुम्हारे विरह में मेरी गहरी व्यथा को मेरा हृदय सहन करने में असमर्थ है।

६१. आम और प्रियंगुलता इन दोनों की तुमने जोड़ी बनायी थी। इनका विवाह संस्कार किये बिना ही तुम जा रही हो यह कहां तक उचित है।

६२. तुम्हारे द्वारा दोहद किया गया यह अशोक जब फूलेगा तब तुम्हारे अलकों को सजाने वाले इन फूलों को मैं जलदान के लिये कैसे लूंगा ?

६३. हे सुन्दरी, दूसरों के लिये दुर्लभ तुम्हारे ध्वनियुक्त नूपरों से युक्त चरणों की कृपा को स्मरण करता हुआ यह अशोक अपने फूलरूपी आंसुओं को गिरा कर शोक प्रकट कर रहा है।

६४. अपने निःश्वास का अनुकरण करने वाले बकुल के फूलों से मेरे साथ मिलकर तुमने जो विलास मेखला आधी तैयार कर ली थी उसे समाप्त किये बिना ही तुम क्यों सो रही हो ?

समदुःखसुखः सखीजनः प्रतिपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मजः ।
अहमेकरसस्तथापि ते व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः ।।६५।।

धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः ।
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे ।।६६।।

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ।।६७।।

मदिराक्षि ! मदाननार्पितं मधु पीत्वा रसवत्कथं नु मे ।
अनुपास्यसि बाष्पदूषितं परलोकोपनतं जलाञ्जलिम् ।।६८।।

विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदजस्य गण्यताम् ।
अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः ।।६९।।

विलपन्निति कोसलाधिपः करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति ।
अकरोत्पृथिवीरुहानपि स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान् ।।७०।।

अथ तस्य कथंचिदङ्कतः स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम् ।
विससर्ज तदन्त्यमण्डनामनलायागुरुचन्दनैधसे ।।७१।।

प्रमदामनु संस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात् .
न चकार शरीरमग्निसात्सह देव्या न तु जीविताशया ।।७२।।
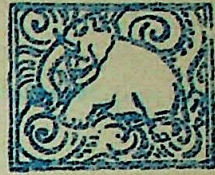
६५. तुम्हारी सखियां तुम्हारे सुख में सुखी और दुख में दुखी रहती हैं। यह पुत्र नये चन्द्रमा के समान सुन्दर है और मैं तुम्हारे प्रेम में एकरस हूं। इतने पर भी तुम्हारा यह व्यवहार निश्चय ही कठोर है।

६६. आज मेरा धैर्य नष्ट हो गया है, सुख समाप्त हो गया है, गान विरत हो गये हैं, ऋतुएं उत्सवहीन हो गयी हैं, आभूषणों का उद्देश्य समाप्त हो गया है और मेरी सेज बिलकुल सूनी हो गयी है।

६७. तुम मेरी गृहिणी, सचिव, एकान्त में सखी और मनोहर कलाओं के प्रयोग में प्रिय शिष्या हो अतः कहो तो तुम्हारा हरण करके करुणा रहित मृत्यु ने मेरा क्या नहीं हरण किया ?

६८. हे मतवाली आंखों वाली इन्दुमती, मेरे मुख से पिलायी गयी स्वादिष्ट मदिरा को पीकर तुम अब आंसुओं से दूषित परलोक में पहुंचाई गई मेरी जल की अंजलि को कैसे पियोगी ?

६९. ऐश्वर्य के होते हुए भी तुम्हारे बिना अज का सुख यहीं समाप्त समझो। अन्य आकर्षणों से मैं आकृष्ट होने वाला नहीं हूं, मेरे तो सारे सुख तुम पर ही आश्रित हैं।

७०. कोसलनरेश अज ने करुणाजनक शब्दों में अपनी प्रिया के लिये विलाप करते हुये वृक्षों को भी मानों बहते हुए मकरन्द रूपी आंसुओं से सिक्त कर दिया।

७१. इसके अनन्तर उसके स्वजनों ने उनकी गोद से किसी प्रकार उस सुन्दरी को लेकर जिसका अलंकार वह फूल ही था अगुरु और चन्दन के ईन्धन वाली अग्नि में विसर्जित कर दिया।

७२. राजा ने विद्वान् होते हुए भी शोकवश स्त्री के साथ अपने प्राण दे दिये, इस निन्दा का विचार करके इन्दुमती के साथ अपने शरीर को अग्नि को समर्पित नहीं किया; जीवित रहने की इच्छा से नहीं।

अथ तेन दशाहतः परे गुणशेषामुपदिश्य भामिनीम् ।
विदुषा विधयो महर्द्धयः पुर एवोपवने समापिताः ।।७३।।

स विवेश पुरीं तया विना क्षणदापायशशाङ्कदर्शनः ।
परिवाहमिवावलोकयन्स्वशुचः पौरवधूमुखाश्रुषु ।।७४।।

अथ तं सवनाय दीक्षितः प्रणिधानाद्गुरुराश्रमस्थितः ।
अभिषङ्गजडं विजज्ञिवानिति शिष्येण किलान्वबोधयत् ।।७५।।

असमाप्तविधिर्यतो मुनिस्तव विद्वानपि तापकारणम् ।
न भवन्तमुपस्थितः स्वयं प्रकृतौ स्थापयितुं पथश्च्युतम् ।।७६।।

मयि तस्य सुवृत्त ! वर्तते लघुसन्देशपदा सरस्वती ।
शृणु विश्रुतसत्त्वसार ! तां हृदि चैनामुपधातुमर्हसि ।।७७।।

पुरुषस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च ।
स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति ।।७८।।

चरतः किल दुश्चरं तपस्तृणबिन्दोः परिशङ्कितः पुरा ।
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुराङ्गनाम् ।।७९।।

स तपःप्रतिबन्धमन्युना प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम् ।
अशपद्भव मानुषीति तां शमवेलाप्रलयोर्मिणा भुवि ।।८०।।

७३. तब विद्वान अज ने केवल गुण के रूप में शेष अपनी पत्नी इन्दुमती के सम्बन्ध में दस दिन के बाद तक की जाने वाली बड़ी-बड़ी विधियों को नगर के उद्यान में ही पूर्ण किया।

७४. इस इन्दुमती के बिना रात बीत जाने पर प्रातःकाल के चन्द्रमा के समान दिखाई देने वाले अज ने नगर की स्त्रियों के मुख के आंसुओं के रूप में अपने शोक की बाढ़ को देखते हुए प्रवेश किया।

७५. तब यज्ञ के लिये दीक्षित गुरु वसिष्ठ ने अपने आश्रम में बैठे हुए ही चित्त को एकाग्र करके यह जान लिया कि अज दुःख से मोहित हो गये हैं। उन्होंने शिष्य द्वारा इस प्रकार सन्देश भेजा।

७६. क्योंकि मुनि के यज्ञ की विधि समाप्त नहीं हुई है इसलिये आपके दुःख के कारण को जानते हुए भी वे आपको जो अपने मार्ग से विचलित हो गये हैं, अपनी स्वाभाविक स्थिति में लाने के लिये स्वयं आपके पास नहीं आये।

७७. हे सदाचारी, छोटे से संदेश के शब्दों वाली वाणी मेरे पास है उसे सुनिये और अपने अतिशय धैर्य के लिये प्रसिद्ध हे राजा, उस वाणी को हृदय में धारण कीजिये।

७८. अपने व्यवधान रहित ज्ञानमय नेत्र से वे अजन्मा पुरुष वामन रूपधारी विष्णु के चरण रूपी तीनों लोकों में जो हुआ है, जो हो रहा है और जो होने वाला है, उसे देखते हैं।

७९. पूर्व काल में कठिनाई से की जाने वाली तपस्या करने वाले तृण-बिन्दु नामक ऋषि से डरकर इन्द्र ने समाधि भंग करने वाली हरिणी नामक अप्सरा को उनके पास भेजा।

८०. उन्होंने शान्ति रूपी तट के लिये प्रलय की लहरों के समान तपस्या में विघ्न पड़ने से उत्पन्न क्रोध के कारण सामने आकर मनोहर विलास प्रकट करने वाली उस अप्सरा को यह शाप दिया कि तू पृथ्वी पर जाकर नारी के रूप में जन्म ले।

भगवन्परवानयं जनः प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व मे ।
इति चोपनतां क्षितिस्पृशं कृतवानासुरपुष्पदर्शनात् ॥८१॥

क्रथकैशिकवंशसम्भवा तव भूत्वा महिषी चिराय सा ।
उपलब्धवती दिवश्च्युतं विवशा शापनिवृत्तिकारणम् ॥८२॥

तदलं तदपायचिन्तया विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता ।
वसुधेयमवेक्ष्यतां त्वया वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः ॥८३॥

उदये मदवाच्यमुज्झता श्रुतिमाविष्कृतमात्मवत्त्वया ।   श्रुत-
मनसस्तदुपस्थिते ज्वरे पुनरक्लीबतया प्रकाश्यताम् ॥८४॥

रुदता कुत एव सा पुनर्भवता नानुमृतापि लभ्यते ।
परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् ॥८५॥

ली
अपशोकमनाः कुटुम्बिनीमनुगृह्णीष्व निवापदत्तिभिः ।
स्वजनाश्रु किलातिसन्ततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते ॥८६॥

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥८७॥

अवगच्छति मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम् ।
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते कुशलद्वारतया समुद्धृतम् ॥८८॥

८१. हे भगवन् मैं पराधीन हूं। आप मेरे विरोधी आचरण को क्षमा करें। इस प्रकार उसके शरणागत होने पर उन्होंने उसे देवपुष्प देखने की अवधि तक पृथ्वी पर रहने वाली नारी बना दिया।

८२. विदर्भ देश के राजा के वंश में उत्पन्न होकर और बहुत देर तक तुम्हारी रानी रहकर आकाश से गिर हुए, शाप से मुक्त होने के कारण स्वरूप फूल को पाकर वह विवश हो गई।

८३. इसलियं, उसके चले जाने की चिन्ता न करनी चाहिये, क्योंकि जिनकी उत्पत्ति होती है उनका नाश भी होता ही है। आपको इस पृथ्वी की देखभाल करनी चाहिये क्योंकि पृथ्वी से ही राजा लोग पत्नी वाले माने जाते हैं।

८४. उन्नति में आपने अभिमान भरी बातें छोड़कर अध्यात्म-ज्ञान का परिचय दिया। मन का संताप उपस्थित होने पर आप उस ज्ञान का फिर से दृढ़तापूर्वक परिचय दीजिये।

८५. आपके रोते रहने से वह कहां से मिलेगी। उसके पीछे आप प्राण भी दे दें तो भी वह आपको नहीं मिलेगी। दूसरे लोक को जाने वाले शरीर-धारियों की गति अपने अपने कर्मों के अनुसार अलग-अलग मार्ग पर होती है।

८६. मन से शोक को दूर करके अपनी पत्नी को पिंडोदक आदि देकर अनुगृहीत कीजिय, क्योंकि कहते हैं कि निरन्तर बहने वाले स्वजनों के आंसु मृत व्यक्ति को दुखी करते हैं।

८७. मरना तो देहधारियों का स्वभाव हीं हं। विद्वान् कहते हैं कि जीवन ही विकृति हं। एसी स्थिति में प्राणी क्षण भर भी यदि जीवित रहता हं तो वह लाभ म ही है।

८८. भ्रान्त बुद्धि वाले प्रिय के नाश को हृदय में गड़ा हुआ कांटा मानते हैं और स्थिर बुद्धि वाले उसी को मोक्ष के द्वार से उसका निकलना मानते हैं।

स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा ।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ।।८९।।

न पृथग्जनवच्छुचो वशं वशिनामुत्तम ! गन्तुमर्हसि ।
द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ।।९०।।

स तथेति विनेतुरुदारमतेः प्रतिगृह्य वचो विससर्ज मुनिम् ।
तदलब्धपदं हृदि शोकघने प्रतियातमिवान्तिकमस्य गुरोः ।।९१।।

तेनाष्टौ परिगमिताः समा कथंचिद्बालत्वादवितथसूनृतेन सूनोः ।
सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैःप्रियायाःस्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च ।।९२।।

तस्य प्रसह्य हृदयंकिल शोकशङ्कुः प्लक्षप्ररोह इव सौधतलं बिभेद ।
प्राणान्तहेतुमपि तं भिषजामसाध्यं लाभं प्रियानुगमने त्वरया स मेने
।।९३।।

सम्यग्विनीतमथ वर्महरं कुमारमादिश्य रक्षणविधौ विधिवत्प्रजानाम् ।
रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिं मुमुक्षुः प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्बभूव ।।९४।।

तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वो-
देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः ।
पूर्वाकाराधिकतररुचा सङ्गतः कान्तयाऽसौ
लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु ।।९५।।

---

८९. अपने शरीर और शरीर वाली आत्मा भी जब शास्त्र में संयोग और वियोग वाले कहे गये हैं तब आप ही कहिये कि बाहरी विषयों का विरह विद्वान् को क्यों दुख दे।

९०. पेड़ और पर्वत में अन्तर क्या है, यदि हवा के चलने पर दोनों ही विचलित हो जायं! हे वशी लोगों में श्रेष्ठ राजा अज, छोटे व्यक्तियों के समान आपको शोक के वशीभूत नहीं होना चाहिये।

९१. अज ने उदारमति गुरु वसिष्ठ की वाणी को शिष्य के मुख स सुनकर उसे स्वीकार किया और मुनि को विदा किया। किन्तु वह वाणी उनके शोक से भरे हुए हृदय में स्थान न पाकर मानों गुरु के पास वापस चली गयी।

९२. यथार्थ और प्रियभाषी अज ने पुत्र की बाल्यावस्था के कारण अपनी प्रिया इन्दुमती के चित्र देखकर और स्वप्न में उसके क्षणिक मिलन का सुख उठाते हुए किसी प्रकार आठ वर्ष का समय बिताया।

९३ शोक के कांटे ने उनके हृदय को बलात् उसी प्रकार वेध दिया जस पीपल का पौधा किसी भवन की सतह को फोड़ डालता है। प्राणों का अन्त करने वाले और चिकित्सकों के लिये असाध्य रोग को उन्होंने हितकर माना, क्योंकि वह उनकी प्रिया इन्दुमती का अनुगमन करने में शीघ्रता का कारण था।

९४. इसके बाद राजा ने भलीभांति विनय-सम्पन्न और कवच धारण करने की अवस्था को प्राप्त राजकुमार दशरथ को प्रजा की रक्षा के उपायों के सम्बन्ध में विधिपूर्वक आदेश देकर, रोग के कारण उत्पन्न शरीर की दुःखद स्थिति से छुटकारा पाने की इच्छा से यह निश्चय किया कि वे अनशन करेंगे।

९५. वे जह्नु ऋषि की कन्या गंगा और सरयू के जलों के सगंम से बने हुए तीर्थ स्थान में दह त्याग करके तत्काल ही देवताओं की सूची में सम्मिलित हो गये और पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर आकृति वाली रमणी क साथ नन्दन वन में स्थित क्रीड़ागृहों में फिर से विहार करने लगे।

नवमः सर्गः

पितुरनन्तरमुत्तरकोसलान्समधिगम्य समाधिजितेन्द्रियः ।
दशरथः प्रशशास महारथो यमवतामवतां च धुरि स्थितः ।।१।।

अधिगतं विधिवद्यदपालयत्प्रकृतिमण्डलमात्मकुलोचितम् ।
अभवदस्य ततो गुणवत्तरं सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः ।।२।।

उभयमेव वदन्ति मनीषिणः समयवर्षितया कृतकर्मणाम् ।
बलनिषूदनमर्थपतिं च तं श्रमनुदं मनुदण्डधरान्वयम् ।।३।।

जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः कुत एव सपत्नजः ।
क्षितिरभूत्फलवत्यजनन्दने शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे ।।४।।

दशदिगन्तजिता रघुणा यथा श्रियमपुष्यदजेन ततः परम् ।
तमधिगम्य तथैव पुनर्बभौ न न महीनमहीनपराक्रमम् ।।५।।

समतया वसुवृष्टिविसर्जनैर्नियमनादसतां च नराधिपः ।
अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ सवरुणावरुणाग्रसरं रुचा ।।६।।

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरणं मधु ।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत् ।।७।।

न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे न वितथा परिहासकथास्वपि ।
न च सपत्नजनेष्वपि तेन वागपरुषा परुषाक्षरमीरिता ।।८।।
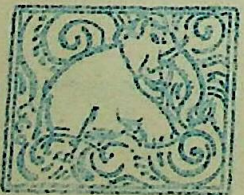
नवां सर्ग

१. समाधि के द्वारा इन्द्रियों को जीतने वाले, संयमियों और राजाओं दोनों में ऊंचा स्थान प्राप्त करने वाले और महारथ कहलाने वाले राजा दशरथ ने कोसल जनपद का राज्य प्राप्त करके उस पर शासन किया।

२. अपने कुल क्रम से प्राप्त नगर के साथ साथ जिस प्रजामंडल का उन्होंने विधिपूर्वक पालन किया कुमार कार्तिकेय के समान तेजस्वी दशरथ का वह प्रजा मंडल अपनी विशेषताओं में और भी बढ़ गया।

३. विद्वान् लोग बल नामक राक्षस को मारने वाले इन्द्र और राजा मनु के वंश में उत्पन्न अर्थपति राजा दशरथ दोनों को ही समय पर क्रमशः जल और धन की वर्षा करके अपना कर्त्तव्य करने वालों के लिये श्रम को दूर करने वाला मानते हैं।

४. शान्ति के उपासक और देवताओं जैसे तेजस्वी अज के पुत्र दशरथ के राजा होने पर देश में व्याधि ने पैर नहीं रखा फिर शत्रु से पराजित होने का प्रश्न ही कैसे उठता। उनके समय में पृथ्वी समृद्धि से पूर्ण थी।

५. दशों दिशाओं को उनकी सीमा पर्यन्त जीतने वाले रघु और उसके अनन्तर अज से जिस प्रकार पृथ्वी की शोभा का पोषण हुआ उसी प्रकार समान पराक्रमशाली दशरथ को स्वामी के रूप में पाकर पृथ्वी फिर शोभायमान हुई।

६. राजा दशरथ ने अपनी समता की भावना से धन की वर्षा करके और दुष्टों को नियंत्रण में रखकर क्रमशः वरुण सहित यम और कुबेर का और अपने तेज से सूर्य का अनुकरण किया।

७. अपने अभ्युदय के लिये प्रयत्नशील दशरथ को न तो शिकार ने न जुए ने, न चन्द्रमा की परछाई वाली मदिरा ने और न नवयुवती पत्नी ने विरत किया।

८. उनके राज्य काल में इन्द्र के सामने भी दीनता पूर्ण वाणी न बोली गई, परिहास की बातों में भी झूठ न बोला गया और शत्रु को भी कड़ी बात न कही गई।

उदयमस्तमयं च रघूद्वहादुभयमानशिरे वसुधाधिपाः ।
स हि निदेशमलङ्घयतामभूत्सुहृदयोहृदय : प्रतिगर्जताम् ।।९।।

अजयदेकरथेन स मेदिनीमुदधिनेमिमधिज्यशरासनः ।
जयमघोषयदस्य तु केवलं गजवती जवतीव्रहया चमूः ।।१०।।

अवनिमेकरथेन वरूथिना जितवतः किल तस्य धनुर्भृतः ।
विजयदुन्दुभितां ययुरर्णवा घनरवा नरवाहनसम्पदः ।।११।।

शमितपक्षबलः शतकोटिना शिखरिणां कुलिशेन पुरन्दरः ।
स शरवृष्टिमुचा धनुषा द्विषां स्वनवता नवतामरसाननः ।।१२।।

चरणयोर्नखरागसमृद्धिभिर्मुकुटरत्नमरीचिभिरस्पृशन् ।
नृपतयः शतशो मरुतो यथा शतमखं तमखण्डितपौरुषम् ।।१३।।

निववृते स महार्णवरोधसः सचिवकारितबालसुताञ्जलीन् ।
समनुकम्प्य सपत्नपरिग्रहाननलकानलकानवमां पुरीम् ।।१४।।

उपगतोऽपि च मण्डलनाभितामनुदितान्यसितातपवारणः ।
श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचलामभूदनलसोऽनलसोमसमद्युतिः ।।१५।।

तमपहाय ककुत्स्थकुलोद्भवं पुरुषमात्मभवं च पतिव्रता ।
नृपतिमन्यमसेवत देवता सकमला कमलाघवमर्थिषु ।।१६।।
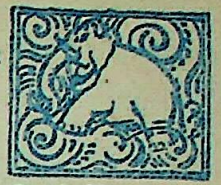
९. राजा लोगों ने रघुनायक दशरथ से उन्नति और अवनति दोनों ही प्राप्त कीं। क्योंकि आज्ञा को मानने वालों क व मित्र थे और प्रतिस्पर्द्धियों के लिये लोहे के हृदय वाले।

१०. अपने धनुष पर डोरी चढ़ाकर उन्होंने समुद्र द्वारा घिरी हुई भूमि को एक ही रथ से जीत लिया। हाथियों और वेगवान घोड़ों वाली उनकी सेना तो केवल उनका जयघोष करती थी।

११. गुप्त होने की शक्ति रखने वाले अपने अद्वितीय रथ से पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने वाले और कुबेर के समान संपत्ति वाले राजा दशरथ के लिये मेघ के समान गर्जन करने वाले समुद्र विजय के नगाड़े बन गये।

१२. पुरदंर नामधारी इन्द्र ने सौ किनारों वाले बज्र से पर्वतों के पंखों की शक्ति नष्ट की थी। नये कमल के समान मुख वाले दशरथ ने बाणों की बर्षा करने वाले और शब्द करने वाले धनुष से शत्रुओं के सहायकों और सेनाओं को नष्ट कर दिया।

१३. सैकड़ों राजा उस अखंड पौरुष वाले दशरथ के चरणों में उनके नखों के रंग से मिश्रित अपने मुकुटों के रत्नों की किरणों से उसी प्रकार प्रणाम करते थे जैसे देवता इन्द्र को प्रणाम करते हैं।

१४. मन्त्रियों द्वारा छोटे छोटे पुत्रों से नमस्कार करवाने वाली और केशों के संस्कार से रहित शत्रुओं की पत्नियों पर कृपा करके वे समुद्र की सीमा से अपनी उस नगरी को लौट गये जो अलका से कम नहीं थी।

१५. राजा दशरथ ने जिनकी आभा चन्द्रमा और अग्नि के समान थी अपने को छोड़कर किसी दूसरे को श्वेत छत्र धारण नहीं करने दिया। यह मानकर कि लक्ष्मी दोष के कारण एक को छोड़कर दूसरे के पास चली जाती है, चक्रवर्ती होते हुये भी वे निरालस रहते थे।

१६. हाथ में कमल धारण करनेवाली पति-परायणा देवी लक्ष्मी याचकों के प्रति उदार ककुत्स्थ के कुल में उत्पन्न राजा दशरथ को और अपने स्वयंभू पुरुष विष्णु को छोड़कर भला और किस राजा के पास जाती?

तमलभन्त पतिं पतिदेवताः शिखरिणामिव सागरमापगाः ।
मगधकोसलकेकयशासिनां दुहितरोऽहितरोपितमार्गणम् ॥१७॥

प्रियतमाभिरसौ तिसृभिर्बभौ तिसृभिरेव भुवं सह शक्तिभिः ।
उपगतो विनिनीषुरिव प्रजा हरिहयोऽरिहयोगविचक्षणः ॥१८॥

स किल संयुगमूर्ध्नि सहायतां मघवतः प्रतिपद्य महारथः ।
स्वभुजवीर्यमगापयदुच्छ्रितं सुरवधूरवधूतभयाः शरैः ॥१९॥

क्रतुषु तेन विसर्जितमौलिना भुजसमाहृतदिग्वसुना कृताः ।
कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनो वितमसा तमसासरयूतटाः ॥२०॥

अजिनदण्डभृतं कुलमेखलां यतगिरं मृगशृङ्गपरिग्रहाम् ।
अधिवसंस्तनुमध्वरदीक्षितामसमभासमभासयदीश्वरः ॥२१॥

अवभृथप्रयतो नियतेन्द्रियः सुरसमाजसमाक्रमणोचितः ।
नमयति स्म स केवलमुन्नतं वनमुचे नमुचेररये शिरः ॥२२॥

असकृदेकरथेन तरस्विना हरिहयाग्रसरेणधनुर्भृता ।
दिनकराभिमुखा रणरेणवो रुरुधिरे रुधिरेण सुरद्विषाम् ॥२३॥

अथ समाववृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम् ।
यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम् ॥२४॥
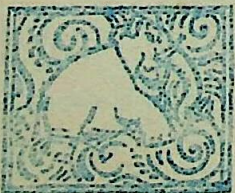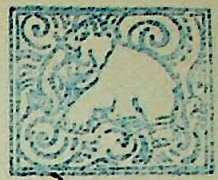
१७. पति ही को दवता मानने वाली मगध, कोसल और केकय देश के राजाओं की कन्याओं सुमित्रा, कौसल्या और कैकेयी ने शत्रुओं को अपने बाणों से अवरुद्ध कर देने वाले राजा दशरथ को उसी प्रकार अपने पति के रूप में प्राप्त किया जैसे पर्वतों की पुत्रियां समुद्र को प्राप्त करती हैं।

१८. शत्रुओं को मारने के उपाय में दक्ष, अपनी तीनों प्रियतमाओं तथा प्रभु, मंत्र और उत्साह की तीन शक्तियों से युक्त, प्रजा को नियन्त्रण में रखने की इच्छा वाले राजा दशरथ पृथ्वी पर आये हुये हरिताश्व इन्द्र के समान शोभित हुए।

१९. महारथ दशरथ ने युद्ध भूमि में इन्द्र की सहायता करके अपने बाणों से देवताओं की स्त्रियों के भय को दूर कर दिया और उन्होंने उनके पराक्रम के गीत गाये।

२०. अश्वमेध यज्ञों में अपन मुकुट को अलग रख देने वाले और अपनी भुजा से दिग्विजय द्वारा धन अर्जित करने वाले तमोगुण से रहित राजा दशरथ ने तमसा और सरयू नदियों के तटों को सोने के यज्ञ स्तम्भ स्थापित करके सुशोभित किया।

२१. जब शिवजी ने राजा दशरथ के मृगचर्म और दंड धारण किये हुए, कुश की मेखला पहिने, बाणी का संयम किये हुए और हरिण के सींग हाथ में लिये यज्ञ की दीक्षा से युक्त शरीर में प्रवेश किया तो उनकी शोभा अद्वितीय हो उठी।

२२ यज्ञ समाप्ति पर अवभृथ स्नान करके संयमित इन्द्रियों वाले राजा दशरथ ने, जो देवताओं की सभा में बैठने के योग्य थे केवल जल की वर्षा करने वाले नमुचि राक्षस के शत्रु इन्द्र को ही अपना उन्नत मस्तक झुकाया।

२३. अद्वितीय रथ वाले, बलवान तथा इन्द्र के आगे आगे चलने वाले धनुर्धर दशरथ ने अनेक बार सूर्य की ओर बढ़ने वाली युद्ध भूमि में उड़ी हुई धूल को दैत्यों के रक्त से शान्त कर दिया।

२४. यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र के समान ही धुरीण एकमात्र राजा दशरथ की सेवा के लिये मानों वसन्त नये फूलों से युक्त होकर आ पहुंचा।

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं रथयुजा परिवर्तितवाहनः ।
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहैर्विमलयन्मलयं नगमत्यजत् ॥२५॥

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥२६॥

नयगुणोपचितामिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः ।
अभिययुः सरसो मधुसम्भृतां कमलिनीमलिनीरपतत्त्रिणः ॥२७॥

कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् ।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः ॥२८॥

विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः ।
मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरबका रवकारणतां ययुः ॥२९॥

सुवदनावदनासवसम्भृतस्तदनुवादिगुणःकुसुमोद्गमः ।
मधुकरैरकरोन्मधु लोलुपैर्बकुलमाकुलमायतपङ्क्तिभिः ॥३०॥

उपहितं शिशिरापगमश्रिया मुकुलजालमशोभत किंशुके ।
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं प्रमदया मदयापितलज्जया ॥३१॥

व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहं जघनर्निर्विषयीकृतमेखलम् ।
न खलु तावदशेषमपोहितुं रविरलं विरलं कृतवान्हिमम् ॥३२॥

२५. कुबेर के निवास की दिशा में जाने के अभिलाषी सूर्य ने, जिसके सारथी अरुण ने घोड़ों का रुख बदल दिया था हिम को दूर करके प्रातःकाल के वातावरण को निर्मल करते हुए मलय पर्वत का त्याग किया।

२६. पहले फूल निकले, फिर नये पल्लव आये और उसके बाद भौंरों और कोयलों ने बोलना आरम्भ किया। इस प्रकार वृक्षों वाली वनस्थली में उतर कर वसन्त क्रमशः प्रकट हुआ।

२७. नीति और गुणों से समृद्ध और सज्जनों के उपकार में लगाई जाने वाली राजा दशरथ की सम्पत्ति के चाहने वालों के समान वसन्त से परि-पुष्ट सरोवर की कमलिनी को भौंरों और जलचर पक्षियों ने घेर लिया।

२८. वसन्त ऋतु में खिला हुआ नये अशोक का फूल ही नहीं अपितु स्त्रियों के कानों में लगे हुए कोमल पल्लव भी विलासियों को काम स पीड़ित कर रहे थे।

२९. वसन्त के द्वारा उपवन की शोभा के रूप में बनायी गयी नयी पत्र-रचना के समान कुरवक के वृक्ष जो मधुदान करने में चतुर थे भौंरों को गूंजने की प्रेरणा देने लगे।

३०. मधुरभाषिणी स्त्रियों के मुख की मदिरा से उत्पन्न और उन्हीं के गुणों का अनुसरण करने वाले फूलों के खिलने स मधु के लोभी लम्बी पंक्तियों में बंधे हुए भौंरों ने बकुल को व्याकुल कर दिया।

३१. वसन्त की शोभा से पलाश के वृक्ष में लगी हुई कलियों का समूह मद के प्रभाव से लज्जा छोड़ देनेवाली स्त्री के द्वारा अपने प्रियतम के शरीर पर किये गये नखक्षत रूपी आभरख के समान शोभित हो रहा था।

३२. दन्तक्षत के कारण सूजे हुये स्त्रियों के अधरों के लिये कठिनाई से सह्य और नितम्ब भाग से करधनी को हटाने वाली ठंड को बिल्कुल ही दूर करने में सूर्य सफल नहीं हुआ परन्तु उसने उसे कम अवश्य कर दिया।

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा ।
अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि ।।३३।।

प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः ।
सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु ।।३४।।

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः ।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ।।३५।।

ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरम् ।
पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम् ।।३६।।

शुशुभिरे स्मितचारुतराननाः स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः ।
विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोदकलोलविहङ्गमाः ।।३७।।

उपययौ तनुतां मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः ।
सदृशमिष्टसमागमनिर्वृतिं वनितयाऽनितया रजनीवधूः ।।३८।।

अपतुषारतया विशदप्रभैः सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः ।
कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरो मकरोर्जितकेतनम् ।।३९।।

हुतहुताशनदीप्ति वनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत् ।
युवतयः कुसुमं दधुराहितं तदलके दलकेसरपेशलम् ।।४०।।

३३. बौरी हुई ग्राम की लता मलयानिल द्वारा पल्लवों के कंपाये जाने पर एसी लगती थी मानों ग्रभिनय की कला सीख रही हो। उसने द्वेष ग्रौर राग को जीतने वालों के मन को भी मतवाला बना दिया।

३४. सुगन्धित वनपंक्तियों में कोयलों के द्वारा सर्वप्रथम बोली गई संक्षिप्ता बोली मितभाषिणी मुग्धा स्त्रियों की वाणी के समान सुनी गई।

३५. वह उपवन की लता जिसका गीत कानों को मधुर लगने वाली भौंरों की गुंजार थी, जिसके दांतों की कोमल कान्ति उसके फूल थे ग्रौर जिसके लय पर हिलने वाले हाथ मानों हवा से हिलाये गये पल्लव थे, सुन्दर लग रही थी।

३६. मधुर विलास को कार्यान्वित करने में कुशल ग्रपनी सुगंधि से बकुल के फूल को पराजित करने वाले, कामदेव के साथी मद्य को स्त्रियों ने पी लिया। उन्होंने ग्रपने पतियों के प्रति ग्रनुराग में किसी प्रकार की कमी न होने दी।

३७. घरों की बावड़ियां जहां कमल खिले हुए थे ग्रौर जो मद के कारण कलरव करते जल में चंचल होकर विचरण करनेवाले पक्षियों से युक्त थीं, ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानों वे मुस्कराहट से सुन्दर मुखवाली ग्रौर ढीली होने के कारण बजनेवाली करधनी पहने स्त्रियां हों।

३८. वसन्त के द्वारा खंडित, चन्द्रमा के उदय से पीले पड़े हुए मुख की शोभावाली रात्रि रूपी वधू प्रियमिलन का सुख न पाने वाली स्त्री के समान क्षीण होती गई।

३९. चन्द्रमा ने हिम के दूर होने के कारण निर्मल कान्ति वाली ग्रौर रतिजनित थकावट को दूर करने वाली किरणों से मकर के चिह्न वाली पताका ग्रौर फूलों का धनुष धारण करने वाले कामदेव को ग्रौर भी तीव्र बना दिया।

४०. प्रिय जनों द्वारा लाये गये फूलों को, जो हवन की गई ग्राग के समान चमक वाल थे, जो वन की लक्ष्मी के सोने के ग्राभूषणों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे ग्रौर जिनके पत्ते ग्रौर पराग बहुत कोमल थे, युवतियों ने ग्रपने बालों में धारण किया।

अलिभिरञ्जनबिन्दुमनोहरैः कुसुमपङ्क्तिनिपातिभिरङ्कितः ।
न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव ।।४१।।

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसङ्गतया मनः ।
कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी ।।४२।।

अरुणरागनिषेधिभिरंशुकैः श्रवणलब्धपदैश्च यवाङ्कुरैः ।
परभृताविरुतैश्च विलासिनः स्मरबलैरबलैकरसाः कृताः ।।४३।।

उपचितावयवा शुचिभिः कणैरलिकदम्बकयोगमुपेयुषी ।
सदृशकान्तिरलक्ष्यत मंजरी तिलकजाऽलकजालकमौक्तिकैः ।।४४।।

ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भृतश्छविकरं मुखचूर्णमृतुश्रियः ।
कुसुमकेसररेणुमलिव्रजाः सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः ।।४५।।

अनुभवन्नवदोलमृतूत्सवं पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया ।
अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलतां जलतामबलाजनः ।।४६।।

त्यजत मानमलं बत विग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः ।
परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः ।।४७।।

अथ यथासुखमार्तवमुत्सवं समनुभूय विलासवतीसखः ।
नरपतिश्चकमे मृगयारतिं स मधुमन्मधुमन्मथसन्निभः ।।४८।।

४१. फूलों के समूह पर आकर गिरने वाले अंजन की बिन्दियों के समान मनोहर भौंरों से चित्रित स्त्रियों के तिलक के समान तिलक का वृक्ष वनस्थली को शोभायमान नहीं करता था ऐसी बात नहीं थी ।

४२. वृक्षों के साथ मनोहर विलास करने वाली नई मल्लिका की लता मधु और सुगन्ध से युक्त, पल्लव रूपी अधर से संलग्न और फूलों से भरी अपनी मुसकान की शोभा से मन को मतवाला बना रही थी।

४३ अरुण की लाली को भी झुठलाने वाले रंगीन वस्त्रों, कान में खोंसे हुए जौ के अंकुरों और कोयल की कूकों के रूप में कामदेव की सेना ने विलासी पुरुषों को स्त्रीमय बना दिया ।

४४. उज्ज्वल पराग से पुष्ट अंगोंवाली तिलक फूल की मंजरी, जिस पर भौरों का समूह आकर बैठ गया था जाली के रूप में गुंथे हुए मोतियों के समान दिखाई दे रही थी ।

४५. धनुष धारण करने वाले कामदेव की पताका और वसन्त की शोभा के लिय सुन्दर मुखचूर्ण के समान पवनयुक्त उपवन से उड़ी फूलों के पराग की धूल के पीछे भौरों का समूह चल पड़ा ।

४६. नये झूले वाले वसन्तोत्सव का आनन्द लेती हुई स्त्रियों ने झूलने में प्रवीण होकर भी अपने प्रेमियों के कण्ठों से लिपटने की इच्छा से झूलों के आसनों में लगी डोरियों के पकड़ने में अपनी भुजा रूपी लताओं को शिथिल कर दिया ।

४७. हे स्त्रियो, बड़ दुख की बात है, तुम मान को छोड़ो और विरोध समाप्त करो, आनन्द लने के लिये उपयुक्त बीता हुआ यौवन फिर नहीं आता । इस प्रकार कोयलों द्वारा कामदेव का अभिप्राय बताने पर स्त्रियों ने अपनी क्रीड़ा आरम्भ की ।

४८. इसके बाद स्त्रियों के साथ इच्छानुसार वसन्तोत्सव का आनन्द लकर विष्णु, वसन्त और कामदेव के समान सुन्दर राजा को आखेट का आनन्द लेने की इच्छा हुई ।

परिचयं चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनम् ।
श्रमजयात्प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ ॥४९॥

मृगवनोपगमक्षमवेषभृद्विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः ।
गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिर्नृसविता स वितानमिवाकरोत् ॥५०॥

ग्रथितमौलिरसौ वनमालया तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः ।
तुरगवल्गनचंचलकुण्डलो विरुरुचे रुरुचेष्टितभूमिषु ॥५१॥

तनुलताविनिवेशितविग्रहा भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः ।
ददृशुरध्वनि तं वनदेवताः सुनयनं नयनन्दितकोसलम् ॥५२॥

श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितं व्यपगतानलदस्यु विवेश सः ।
स्थिरतुरङ्गमभूमि निपानवन्मृगवयोगवयोपचितं वनम् ॥५३॥

अथ नभस्य इव त्रिदशायुधं कनकपिङ्गतडिद्गुण संयुतम् ।
धनुरधिज्यमनाधिरुपाददे नरवरो रवरोषितकेसरी ॥५४॥

तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेणशावैर्व्याहन्यमानहरिणीगमनं पुरस्तात् ।
कुश: आविर्बभूव कुलगर्भमुखं मृगाणां यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम् ॥५५॥

तत्प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा तूणीमुखोद्धृतशरेणविशीर्णपङक्ति ।
श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातैर्वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः

४९. आखेट गतिमान लक्ष्य को मार गिराने का अभ्यास कराता है, भय और क्रोध की चेष्टा का ज्ञान कराता है और शरीर की थकावट को दूर करके उसे गुणों से युक्त करता है इसलिये मंत्रियों के परामर्श से वे आखेटको लिये गये।

५०. मृगों के वन में जाने के लिये उचित वेष धारण करके राजाओं में सूर्य के समान राजा दशरथ ने अपने विशाल कन्धे पर अपना धनुष रखा और घोड़ों के खुरों से उड़ी हुई धूल से आकाश को मानों ढक सा दिया।

५१. वनमाला से अपने केश बांधे हुए, वृक्षों के पत्तों के रंग का कवच पहन, घोड़ों की चाल से हिलते हुए कुंडल वाले राजा रुरु मृगों की क्रीड़ा भूमि में विशष रुप से सुन्दर दिखाई दिये।

५२. छरहरी लताओं को अपना शरीर बनाकर और भौरों में अपनी आंखों की चेष्टा केन्द्रित करके वन-देवियों ने मार्ग में सुन्दर नत्र वाले और अपनी नीति से कोसलदेशवासियों को आनन्दित करने वाले उस राजा को देखा।

५३. शिकारी कुत्ते और जाल लेकर चलने वाले सेवक जहां पहल ही पहुंच चुके थे, जहां अग्नि और डाकुओं का भय दूर कर दिया गया था, जहां की भूमि घोड़ों के चलने के योग्य थी, जहां पानी की व्यवस्था थी और जो हिरन, पक्षी और नील गायों से भरा था उस वन में राजा ने प्रवेश किया।

५४. अपने धनुष की टंकार से सिंहों को चिढ़ाने वाले, मन की व्यथा से मुक्त मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा दशरथ ने सोने के समान पीले रंग की बिजली की डोरी वाले भादों के इन्द्रधनुष के समान उस धनुष को लिया जिसकी डोरी चढ़ी हुई थी।

५५. उनके सामने मृगों का ऐसा झुंड प्रकट हुआ जिसमें स्तन पीने को उत्सुक मृगछौने हरिणियों की गति को बारंबार रोक रहे थे, जो अपने मुंह में कुश दबाये हुए था और जिसके आगे दर्प से भरा कृष्णसार मृग चल रहा था।

५६. वेगवान् घोड़े पर सवार राजा के द्वारा अभिलाषित्र मृगों का वह झुंड तर्कश के मुख से निकाले गये बाण से इधर-उधर बिखर गया। उसकी सजल और व्याकुलदृष्टि से देखने से वन का रंग सांवला हो गया मानों नील कमल की पंखुड़ियां हवा में बिखर गई हों।

लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः प्रेक्ष्य स्थिता सहचरीं व्यवधाय देहम्।
आकर्णकृष्टमपि कामितया स धन्वी बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार
।।५७।।

तस्यापरेष्वपि मृगेषुशरान्मुमुक्षोः कर्णान्तमेत्यबिभिदेनिबिडोऽपिमुष्टिः।
त्रासातिमात्रचटुलैः स्मरतः सुनेत्रैः प्रौढप्रियानयनविभ्रमचेष्टितानि
।।५८।।

उत्तस्थुषः सपदि पल्वलपङ्कमध्यान्मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम्।
जग्राह स द्रुतवराहकुलस्य मार्गं सुव्यक्तमार्द्रपदपंक्तिभिरायताभिः
।।५९।।

तं वाहनादवनतोत्तरकायमीषद्विध्यन्तमुद्धृतसटाः प्रतिहन्तुमीषुः।
नात्मानमस्य विविदुः सहसा वराहा वृक्षेषु विद्धमिषुभिर्जघनाश्रयेषु
।।६०।।

तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री वन्यस्य नेत्रविवरे महिषस्य मुक्तः।
निर्भिद्य विग्रहमशोणितलिप्तपुङ्खस्तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्
।।६१।।

प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमाङ्गान्खड्गांश्चकार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः।
शृङ्गं स दृप्तविनयाधिकृतः परेषामत्युच्छ्रितं न ममृषे न तु दीर्घमायुः
।।६२।।

व्याघ्रानभीरभिमुखोत्पतितान्गुहाभ्यःफुल्लासनाग्रविटपानिववायुरुग्णान्
शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषात्तूणीचकार शरपूरितवक्त्ररन्ध्रान्
।।६३।।

निर्घातोग्रैः कुंजलीनाञ्जिघांसुर्ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामास सिंहान्।
नूनं तेषामभ्यसूयापरोऽभूद्वीर्योदग्रे राजशब्दो मृगेषु ।।६४।।

५७. धनुष लिये हुए इन्द्र क समान प्रभावशाली राजा ने लक्ष्य बनाये गये हरिण की देह को रोककर खड़ी उसकी सहचरी को देख अपने स्त्री प्रेम के स्वभाव के कारण दयार्द्र हृदय होकर कान तक खींच गये बाण को भी वापस कर लिया ।

५८. हरिणों के भय से अत्यन्त चंचल सुन्दर नेत्रों को देख चतुर स्त्रियों के नेत्रों की चंचल चेष्टाओं का स्मरण करके दूसरे मृगों पर बाण चलाने की इच्छा होते हुए भी उनकी मुट्ठी कान के सिरे पर पहुंच कर खुल गई ।

५९. उन्होंने मोथा के अंकुरों के ग्रास के तिनकों से व्याप्त, बड़े और गीले पद चिन्हों से स्पष्ट, शीघ्र ही तालाब के कीचड़ से निकलकर भागे हुए सुअरों के मार्ग को पकड़ा ।

६०. घोड़े पर से अपने शरीर के अगले भाग को थोड़ा झुकाकर प्रहार करते हुए राजा पर अपने रोंए खड़े करके उन सुअरों ने बदले में आक्रमण करना चाहा । उन्हें यह न मालूम हुआ कि वे सहसा उन पेड़ों के साथ जिन पर उनके पुट्ठे टिके थ, बिंध गये हैं ।

६१. आक्रमण करने को तत्पर जंगली भैंसे की आंख में खींचकर मारा हुआ राजा का बाण शरीर को भेदकर इस प्रकार निकल गया कि उसके पंख में रक्त भी न लगा । उसने भैंसे को पहले गिराया और स्वयं बाद में गिरा ।

६२ राजा ने तीखे क्षुरप्र नामक बाणों से खड्ग नामक मृगों को अधिकतर सींग काटकर हल्के सिर वाला बना दिया । दर्पयुक्त लोगों को विनयी बनाने के लिये नियुक्त उस राजा दशरथ ने उनकी लम्बी आयु को सहन नहीं किया ऐसी बात न थी; उनके लिये तो केवल उनके सींग असह्य थे ।

६३. निर्भीक राजा ने गुफाओं से निकलकर ऊपर टूटने वाले बाघों को विशेष रुप से सीखे गये हस्तलाघव से क्षण भर में ही उनके खुले हुए मुंहों में बाण भर कर तर्कश बना दिया । वे ऐसे लगते थे मानों हवा से टूटे हुए सर्ज के पेड़ की टूटी हुई फुनगी हों ।

६४. कुंजों में छिपे हुए सिंहों को मारने के लिये उत्सुक राजा ने वज्र के घोष के समान उग्र धनुष की डोरी की टंकार से उन्हें क्षुब्ध कर दिया । निश्चय ही उन अत्यन्त प्रतापी सिंहों के लिये उनके मन में इसलिये ईर्ष्या उत्पन्न हुई होगी कि इन जंगली जानवरों के लिये राज शब्द का प्रयोग क्यों किया जाता है ।

तान्हत्वा गजकुलबद्धतीव्रवैरान्काकुत्स्थः
कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान् ।
आत्मानं रणकृतकर्मणां गजानामानृण्यं
गतमिव मार्गणैरमंस्त ।।६५।।

चमरान्परितः प्रवर्तिताश्वः क्वचिदाकर्णविकृष्टभल्लवर्षी ।
नृपतीनिव तान्वियोज्य सद्यः सितबालव्यजनैर्जगाम शान्तिम् ।।६६।।

अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं न स
रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार ।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे
रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः ।।६७।।

तस्य कर्कशविहारसम्भवं स्वेदमाननविलग्नजालकम् ।
आचचाम सतुषारशीकरो भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः ।।६८।।

इति विस्मृतान्यकरणीयमात्मनः सचिवावलम्बितधुरं धराधिपम् ।
परिवृद्धरागमनुबन्धसेवया मृगया जहार चतुरेव कामिनी ।।६९।।

स ललितकुसुमप्रवालशय्यां ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथाम् ।
नरपतिरतिवाहयाम्बभूव क्वचिदसमेतपरिच्छदस्त्रियामाम् ।।७०।।

उषसि स गजयूथकर्णतालैः पटुपटहध्वनिभिर्विनीतनिद्रः ।
अरमत मधुराणि तत्र शृण्वन्विहगविकूजितबन्दिमङ्गलानि ।।७१।।

अथ जातु रुरोर्गृहीतवर्त्मा विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः ।
श्रमफेनमुचा तपस्विगाढां तमसां प्राप नदीं तुरङ्गमेण ।।७२।।
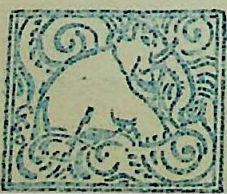
६५. काकुत्स्थ दशरथ ने हाथियों से भारी वैर रखनेवाले उन सिंहों को मारकर जिनके नखों में गजमुक्ता लगा था अपने आप को यह समझा कि उन्होंने अपने बाणों से उन हाथियों का ऋण उतार दिया जिन्होंने युद्ध में उन पर उपकार किया था ।

६६. कहीं चमर वाले मृगों के पीछे घोड़ा दौड़ा कर कान तक धनुष खींचकर भल्ल नाम बाणों की वर्षा करने वाले राजा दशरथ उन्हें झटपट राजाओं समान श्वेत रंग के बालों वाले चामरों से रहित करके ही शान्त हो गये ।

६७. घोड़े के पास से उड़ते हुए सुन्दर कलाप वाले मयूर को उन्होंने अपने बाण का लक्ष्य नहीं बनाया क्योंकि रंग-बिरंगे फूलों की माला से गुंथे हुए और आमोद-प्रमोद में खुले हुए बन्धन वाले अपनी प्रिया के केश-पाश में उनका मन सहसा ही जा लगा ।

६८. कठोर मृगया विहार से उत्पन्न उनके मुख पर झलकती हुई पसीने की बूंदों को पल्लवों के पुटों को खोलने वाले हिमकणों से शीतल वन के पवन ने पी लिया ।

६९. अपने दूसरे कर्त्तव्यों को इस प्रकार भूले हुए, मंत्रियों पर राज्य का भार डाले और बढ़े हुए प्रेम वाले राजा को मृगया ने निरन्तर सेवा के द्वारा चतुर स्त्री के समान वश में कर लिया ।

७०. राजा दशरथ ने सुन्दर फूलों और पल्लवों से बनी हुई सेज वाली और प्रकाशमान बूटियों के दीपक से युक्त रातें कभी-कभी अपने सेवकों के बिना ही बिताईं ।

७१. उषाकाल में सधे हुए पटह की ध्वनि के समान शब्दवाले झुंड बनाकर फिरने वाले हाथियों के कानों के पीटने से उत्पन्न शब्द से उनकी नींद खुलती थी और वे बन्दीजन द्वारा गाये हुए मधुर मंगलगान के रूप में पक्षियों के कलरव को सुनते हुए आनन्द लेते थे ।

७२. इसके बाद एक बार रुरु मृगों का पीछा करते हुए अपने निजी अंगरक्षकों की आंख से ओझल हो परिश्रम से फेन छोड़ने वाले घोड़े पर सवार बहुसंख्यक तपस्वियों से सेवित तमसानदी के तट पर जा पहुंचे ।

कुम्भपूरण भव: पटुरुच्चैरुच्चचार निनदोऽम्भसि तस्याः ।
तत्र स द्विरदबृंहितशङ्की शब्दपातिनमिषुं विससर्ज ।।७३।।

नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पङ्क्तिरथो विलङ्घ्य यत् ।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ।।७४।।

हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्णस्तस्यान्विष्यन्वेतसगूढं प्रभवं सः ।
शल्यप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं तापादन्तःशल्य इवासीत्क्षितिपोऽपि
।।७५।।

तेनावतीर्य तुरगात्प्रथितान्वयेन पृष्टान्वयः स जलकुम्भनिषण्णदेहः ।
तस्मै द्विजेतरतपस्विसुतं स्खलद्भिरात्मानमक्षरपदैः कथयाम्बभूव
।।७६।।

तच्चोदितश्च तमनुद्धृतशल्यमेव पित्रोः सकाशमवसन्नदृशोर्निनाय ।
ताभ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्रमज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस ।।७७।।

तौ दम्पती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः ।
सोऽभूत्परासुरथ भूमिपतिं शशाप हस्तार्पितैर्नयनवारिभिरेव वृद्धः
।।७८।।

दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोका
दन्त्ये वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम् ।
आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविषं भुजङ्गं
प्रोवाच कोसलपतिः प्रथमापराद्धः ।।७९।।

शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मशोभे सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम् ।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति
।।८०।।

७३. उस तमसा नदी के जल में घड़ा भरने से उत्पन्न मधुर गंभीर शब्द हुआ जिसे हाथी का शब्द समझकर राजा ने शब्दवेधी बाण छोड़ा।

७४. हाथी को मारना राजा के लिये निषिद्ध है। राजा दशरथ ने उसका उल्लंघन करके यदि ऐसा किया तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि रजोगुण से प्रभावित होकर विद्वान् लोग भी अनुचित मार्ग पर अपना पैर रखते ही हैं।

७५. हा तात कहकर किये गये चीत्कार को सुनकर उत्साहहीन हो बेतों के झुरमुट में उस चीत्कार के कारण का पता लगाते हुए उन्होंने घड़ा लिये हुए बाण से बिंधे मुनिकुमार को देखा और ऐसे दुखी हुए मानों उनके भीतर भी बाण चुभ गया हो।

७६. प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न राजा ने घोड़े से उतरकर उससे उसका कुल पूछा। जल के घड़े पर अपना शरीर रखे लड़खड़ाते हुए शब्दों में उसने बताया कि वह अब्राह्मण तपस्वी का पुत्र है।

७७. पुत्र के द्वारा प्रेरित राजा उसे बाण निकाले बिना ही अन्धे माता पिता के पास ले गये और उस स्थिति में विद्यमान उस एकमात्र पुत्र के प्रति अज्ञान के कारण किये गये अपने कार्य के विषय में उन्होंने उन दोनों को बताया।

७८. उस दंपत्ति ने बहुत विलाप करके बालक की छाती में गड़े हुए बाण को उसके चलाने वाले राजा से निकलवाया जिससे उसने प्राण त्याग दिये। इसके अनन्तर उस बूढ़े ने हाथ में आंसू लेकर राजा को शाप दिया।

७९. हे राजा, आपका भी अन्तिम अवस्था में मेरे समान ही अन्त होगा। उसके ऐसा कहने पर पहले चोट खाकर बाद में विष छोड़ने वाले सर्प के समान स्थित उस वृद्ध से स्वयं पहले अपराध करने वाले कोसल नरेश दशरथ ने कहा——

८०. मैंने पुत्र के मुख की शोभा को नहीं देखा है। ऐसी स्थिति में आपके द्वारा मुझे दिया गया यह शाप भी मेरे लिये अनुग्रह ही है। ईंधन से जली हुई आग कृषि योग्य भूमि को जलाकर भी बीज के अंकुरों को पैदा करने वाली बना देती है।

इत्थं गते गतघृणः किमयं विधत्तां
वध्यस्तवेत्यभिहितो वसुधाधिपेन ।
एधान्हुताशनवतः स मुनिर्ययाचे
पुत्रं परासुमनुगन्तुमनाः सदारः ॥८१॥

प्राप्तानुगः सपदि शासनमस्य राजा
सम्पाद्य पातकविलुप्तधृतिर्निवृत्तः ।
अन्तर्निविष्टपदमात्मविनाशहेतुं
शापं दधज्ज्वलनमौर्वमिवाम्बुराशिः ॥८२॥

---
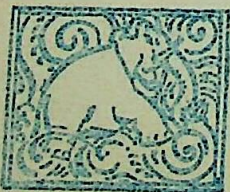
८१. फिर पृथ्वी के स्वामी राजा दशरथ ने कहा, मैं निष्ठुर हूं, अतः आपके लिये वध करने के योग्य हूं। मुझे क्या करना चाहिये यह आदेश दें। मुनि पत्नी सहित अपने मृत पुत्र का अनुसरण करना चाहते थे; अतः उन्होंने जलती हुई चिता तैयार करने के लिये कहा।

८२. राजा के अनुचर तबतक आ गये थे। उन्होंने शीघ्र ही मुनि की आज्ञा पूर्ण की। अपने इस पाप के फलस्वरूप राजा दशरथ धैर्य खोकर उस विनाशकारी शाप को जिसने उनके हृदय में अपना स्थान बना लिया था उसी प्रकार धारण करते हुए लौट गये जैसे समुद्र बडवानल को धारण करता है।

दशमः सर्गः

पृथिवीं शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः ।
किंचिदूनमनूनर्द्धेः शरदामयुतं ययौ ॥१॥

न चोपलेभे पूर्वेषामृणनिर्मोक्षसाधनम् ।
सुताभिधानं स ज्योतिः सद्यः शोकतमोपहम् ॥२॥

अतिष्ठत्प्रत्ययापेक्षसन्ततिः स चिरं नृपः ।
प्राङ् मन्थादनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिरिवार्णवः ॥३॥

ऋष्यशृङ्गादयस्तस्य सन्तः सन्तानकांक्षिणः ।
आरेभिरे जितात्मानः पुत्रीयामिष्टिमृत्विजः ॥४॥

तस्मिन्नवसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुता हरिम् ।
अभिजग्मुर्निदाघार्ताश्छायावृक्षमिवाध्वगाः ॥५॥

ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः
अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ॥६॥

भोगिभोगासनासीनं ददृशुस्तं दिवौकसः ।
तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम् ॥७॥

श्रियः पद्मनिषण्णायाः क्षौमान्तरितमेखले ।
अङ्के निक्षिप्तचरणमास्तीर्णकरपल्लवे ॥८॥

दसवाँ सर्ग

१. इस प्रकार इन्द्र के समान तेजस्वी अत्यन्त समृद्धिवान् राजा दशरथ के पृथ्वी पर शासन करते लगभग दस हजार वर्ष का समय बीत गया।

२. पर राजा दशरथ ने पितरों के ऋण से मुक्त होने के साधनस्वरूप और तत्काल शोक रूपी अन्धकार को दूर करने वाले पुत्र नामक ज्योति को प्राप्त नहीं किया

३. मन्थन से पूर्व जिसके रत्नों की उत्पत्ति प्रकट नहीं हुई थी उस समुद्र के समान राजा दशरथ लम्बे समय तक सोद्देश्य सन्तान की प्रतीक्षा करते रहे।

४. आत्मविजयी ऋष्यश्रृंग आदि यज्ञ करनेवाले सन्तों ने सन्तान के अभिलाषी राजा दशरथ के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ किया।

५. उसी समय ऋषि पुलत्स्य की सन्तान रावण द्वारा पीड़ित देवता उसी प्रकार विष्णु की शरण में गये जैसे धूप से पीड़ित बटोही वृक्ष की छाया में जाता है।

६. उन देवताओं ने समुद्र के पास जाकर आदि पुरुष विष्णु को स्वयं जगाया क्योंकि कार्य में व्यवधान न होना भावी कार्य की सफलता का सूचक होता है।

७. उन देवताओं ने उन्हें शेष नाग के शरीर रूपी आसन पर विराजमान देखा जिसके फणों में विद्यमान प्रकाश की किरणें बिखेरने वाली मणियों से उनका शरीर जगमगा रहा था।

८. उन्होंने अपने चरणों को कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी की गोद में रखा था जिसमें करधनी का भाग दुपट्टे से ढका हुआ था और जहां उन्होंने अपने दोनों हाथ फैलाकर रख लिये थे।

प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं बालातपनिभांशुकम् ।
दिवसं शारदमिव प्रारम्भसुखदर्शनम् ।।९।।

प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम् ।
कौस्तुभाख्यमपां सारं बिभ्राणं बृहतोरसा ।।१०।।

बाहुभिर्विटपाकारैर्दिव्याभरणभूषितैः ।
आविर्भूतमपां मध्ये पारिजातमिवापरम् ।।११।।

दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां मदरागविलोपिभिः ।
हेतिभिश्चेतनावद्भिरुदीरितजयस्वनम् ।।१२।।

मुक्तशेषविरोधेन कुलिशव्रणलक्ष्मणा ।
उपस्थितं प्रांजलिना विनीतेन गरुत्मता ।।१३।।

योगनिद्रान्तविशदैः पावनैरवलोकनैः ।
भृग्वादीननुगृह्वन्तं सौखशायनिकानृषीन् ।।१४।।

प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम् ।
अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम् ।।१५।।

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते ।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधा स्थितात्मने ।।१६।।

९. खिले हुए श्वेत कमल के समान उनकी आंखें थीं, और प्रभात-कालीन धूप के रंग के समान उन्होंने पीताम्वर धारण कर रखा था, इस प्रकार शरत्कालीन दिवस के समान उनकी शोभा योगियों के लिये सुखदायक थी।

१०. उन्होंने अपने विशाल वक्षस्थल पर समुद्र के सार कौस्तुभ मणि को धारण कर रखा था जो लक्ष्मी जी की चेष्टाओं के लिये दर्पण के समान था और जो अपनी चमक से उनके श्रीवत्स नामक चिन्ह को प्रभायुक्त कर रहा था।

११. वृक्षों की शाखा के समान विशाल सजी हुई भुजाओं से वे ऐसे लग रहे थे मानो पानी में दूसरा पारिजात का वृक्ष प्रकट हो गया हो।

१२. दैत्यों की स्त्रियों के गालों पर कस्तूरी से बने फूल-पत्तों को नष्ट करनेवाले उनके सजीव अस्त्र उनका जयजयकार कर रहे थे।

१३. शेष नाग से अपना विरोध छोड़े हुए, वज्र के घाव के चिह्न वाले विनीत गरुड़ उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े थे।

१४. योग निद्रा की समाप्ति पर जो सुखपूर्वक शयन किया या नहीं यह प्रश्न पूछनेवाले भृगु आदि ऋषियों पर अपनी प्रसन्न और पवित्र दृष्टि डाल रहे थे।

१५. दर्शन के अनन्तर असुरों के विनाशक, स्तुति के योग्य, वाणी और मन से अगम्य विष्णु को प्रणाम करके देवताओं ने उनकी स्तुति की।

१६. पहले विश्व की सृष्टि करनेवाले, उसके अनन्तर उसका पोषण करनेवाले और फिर उसका संहार करनेवाले तीन रूपों में स्थित आत्मस्वरूप आपको नमस्कार है।

रसान्तराण्येकरसं यथा दिव्यं पयोऽश्नुते ।
देश-देशे गुणेष्वेवमवस्थास्त्वमविक्रिय : ।।१७।।

अमेयो मितलोकस्त्वमनर्थी प्रार्थनावहः ।
अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्तकारणम् ।।१८।।

हृदयस्थमनासन्नमकामं त्वां तपस्विनम् ।
दयालुमनघस्पृष्टं पुराणमजरं विदु : ।।१९।।

सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः ।
सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपभाक् ।।२०।।

सप्तसामोपगीतं त्वां सप्तार्णवजलेशयम् ।
सप्तार्चिर्मुखमाचख्युः सप्तलोकैकसंश्रयम् ।।२१।।

चतुर्वर्गफलं ज्ञानं कालावस्थाश्चतुर्युगाः ।
चतुर्वर्णमयो लोकस्त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात् ।।२२।।

अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयम् ।
ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये ।।२३।।

अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ।।२४।।

१७. जैसे एक प्रकार के रस वाला वर्षा का जल देश-देश में पहुंचकर अन्य रसवाला हो जाता है उसी प्रकार निर्विकार होकर भी आप सत्त्व आदि गुणों में स्थित होकर स्रष्टा आदि का रूप धारण करते हैं।

१८. आप अपरिमेय होकर भी सबसे अलग हैं, निस्पृह होकर भी प्रार्थना पूरी करने वाले हैं, अजित होकर भी जयशील हैं और अत्यन्त सूक्ष्म होकर भी व्यक्त जगत् के कारणस्वरूप हैं।

१९. हृदय में विद्यमान होते हुए भी आप निकट नहीं हैं, आप कामनाओं से रहित हैं और तपस्वी के रूप में जाने जाते हैं; दयालु होते हुए भी दुःख क स्पर्श से आप परे हैं और पुराण-पुरुष होते हुए भी अजर हैं।

२०. सर्वज्ञ होते हुए भी आप अविज्ञात हैं, सबके कारण होते हुए भी आप अपने आप उत्पन्न होने वाले हैं, सब के स्वामी होते हुए भी आप स्वयं स्वामी-रहित हैं और अकेले होते हुए भी सब रूपों को धारण करनेवाले हैं।

२१. विद्वानों ने कहा है कि सामवेद के सातों छन्दों में आपकी स्तुति की गई है, सात समुद्रों के जल में आप शयन करते हैं, आपके मुख में सातों अग्नियों का निवास है और सातों लोक आपके आश्रय में हैं।

२२. आपके चतुर्मुख रूप ब्रह्मा से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले ज्ञान, काल की अवस्था को बताने वाले सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त जनसमाज की सृष्टि हुई है।

२३. अपनी मुक्ति के लिये योगीजन अभ्यास के द्वारा वश में लाये गये मन से हृदय में स्थित आपके ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करते हैं।

२४. आप अज होते हुए जन्म लेनेवाले, इच्छारहित होते हुए भी शत्रुओं का नाश करनेवाले और सोते हुए भी जागनेवाले हैं। आपकी वास्तविकता को कौन जानता है?

शब्दादीन्विषयान्भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः ।
पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम् ।।२५।।

बहुधाऽप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः ।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ।।२६।।

त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम् ।
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयः संनिवृत्तये ।।२७।।

प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यो मह्यादिर्महिमा तव ।
आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा ।।२८।।

केवलं स्मरणेनैव पुनासि पुरुषं यतः
अनेन वृत्तयः शेषा निवेदितफलास्त्वयि ।।२९।।

उदधेरिव रत्नानि तेजांसीव विवस्वतः ।
स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते ।।३०।।

अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते ।
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ।।३१।।

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ।।३२।।

२५. अवतरित होकर विषयों को भोगने, कठिन तपस्या करने और राक्षसों को मारकर प्रजा की रक्षा करने के साथ ही आप तटस्थ होकर रहने में समर्थ हैं ।

२६. शास्त्रों द्वारा अनेक प्रकार से भिन्न बताये जाने पर भी पुरुषार्थ को सफल बनानेवाले मार्ग आप में ही जाकर उसी प्रकार समाप्त होते हैं जैसे गंगा के प्रवाह अन्त में समुद्र में ही जाकर गिरते हैं ।

२७. आप में अपना ध्यान केन्द्रित करनेवाले और आपको ही अपना कर्म सर्मापित करने वाले विरक्त लोगों को बारंबार जन्म लेने के बन्धन से मुक्ति दिलाने के लिये आप ही एकमात्र गति हैं ।

२८. प्रत्यक्ष प्रमाण से जाने जा सकने के योग्य होकर भी पृथ्वी आदि के रूप में विद्यमान आपकी महिमा के विस्तार का अनुमान नहीं किया जा सकता । वेद वाक्य और अनुमान इन दोनों से ही आप जाने जाते हैं । आपके विषय में क्या कहा जाय ?

२९. आप स्मरणमात्र से अपने जन को पवित्र करते हैं, अतः स्मरण करने से ही दर्शन आदि के रूप में आपके प्रति किये जानेवाले व्यवहारों का लाभ उसे मिल जाता है ।

३०. वाणी और मनसे परे आपका चरित्र उसी प्रकार स्तुति की सीमा से बाहर रह जाता है जैसे समुद्र के रत्न और सूर्य की किरणें ।

३१. आपके लिये कोई भी ऐसी अलभ्य वस्तु नहीं है जिसे आपको प्राप्त करना हो । आपके जन्म-ग्रहण का एक ही कारण है और वह है लोगों पर आपकी कृपा ।

३२. आपकी महिमा का कीर्त्तन करके यदि वाणी चुप होती है तो इसलिय कि वह थक जाती है या उसकी सामर्थ्य का अन्त हो जाता है । इसलिये नहीं कि आपके गुणों की कोई सीमा है ।

इति प्रसादयामासुस्ते सुरास्तमधोक्षजम् ।
भूतार्थव्याहृतिः सा हि न स्तुतिः परमेष्ठिनः ।।३३।।

तस्मै कुशलसम्प्रश्नव्यंजितप्रीतये सुराः ।
भयमप्रलयोद्वेलादाचख्युर्नैर्ऋतोदधेः ।।३४।।

अथ वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादिना ।
स्वरेणोवाच भगवान्परिभूतार्णवध्वनिः ।।३५।।

पुराणस्य कवेस्तस्य वर्णस्थानसमीरिता ।
बभूव कृतसंस्कारा चरितार्थैव भारती ।।३६।।

बभौ सदशनज्योत्स्ना सा विभोर्वदनोद्गता ।
निर्यातशेषा चरणाद्गङ्गेवोर्ध्वप्रवर्तिनी ।।३७।।

जाने वो रक्षसाऽऽक्रान्तावनुभावपराक्रमौ ।
अङ्गिनां तमसेवोभौ गुणौ प्रथममध्यमौ ।।३८।।

विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम् ।
अकामोपनतेनेव साधोर्हृदयमेनसा ।।३९।।

कार्येषु चैककार्यत्वादभ्यर्थ्योऽस्मि न वज्रिणा ।
स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते ।।४०।।

३३. इस प्रकार उन देवताओं ने उन विष्णु को प्रसन्न किया जिनको जानने में इन्द्रियों का ज्ञान समर्थ नहीं। सर्वोच्च स्थितिवाले उन विष्णु की यह स्तुति-मात्र नहीं थी अपितु वास्तविकता का कथन भी था।

३४. कुशल प्रश्न करके अपनी प्रीति व्यक्त करनेवाले भगवान विष्णु से देवताओं ने कहा कि बिना प्रलय के उथल-पुथल मचानेवाले राक्षस रूपी समुद्र से भय उत्पन्न हो गया है।

३५. इस प्रकार अपनी वाणी से समुद्र की गर्जना को भी तिरस्कृत करनेवाल भगवान बोले और उनके स्वर से समुद्रतट पर स्थित पर्वतों की गुफाएं प्रतिध्वनित हो उठीं।

३६. उस चिरन्तन कवि की वाणी वर्णों के उच्चारण स्थानों से भलीभांति उच्चरित और इसी कारण संस्कारयुक्त होकर मानो सफल हो गई।

३७. विष्णु के मुख से निकली हुई और दांतों की कान्ति से संलग्न वह वाणी चरण से निकलने में शेष बची हुई ऊपर की ओर बहनेवाली गंगा के समान शोभित हुई।

३८. राक्षस रावण के द्वारा आपकी महिमा और पराक्रम उसी प्रकार आक्रान्त हो गये हैं जैसे तमोगुण द्वारा शरीरधारियों के सत्त्व और रज गुण आक्रान्त हो जाते हैं।

३९. सज्जन के हृदय में बिना चाहे हुए ही प्रविष्ट पाप के समान उसके द्वारा मेरे तीनों लोक जल रहे हैं यह मुझे विदित है।

४०. उद्देश्य एक ही होने के कारण इन्द्र के द्वारा मेरे कर्त्तव्य के सम्बन्ध में प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं; हवा तो स्वयं ही अग्नि का सारथी बन जाती है।

स्वासिधारापरिहृतः कामं चक्रस्य तेन मे ।
स्थापितो दशमो मूर्धा लभ्यांश इव रक्षसा ।।४१।।

स्रष्टुर्वरातिसर्गात्तु मया तस्य दुरात्मनः ।
अत्यारूढं रिपोः सोढं चन्दनेनेव भोगिनः ।।४२।।

धातारं तपसा प्रीतं ययाचे स हि राक्षसः ।
दैवात्सर्गादवध्यत्वं मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः ।।४३।।

सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रणभूमेर्बलिक्षमम् ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरःकमलोच्चयम् ।।४४।।

अचिराद्यज्वभिर्भागं कल्पितं विधिवत्पुनः ।
मायाविभिरनालीढमादास्यध्वे निशाचरैः ।।४५।।

वैमानिकाः पुण्यकृतस्त्यजन्तु मरुतां पथि ।
पुष्पकालोकसंक्षोभं मेघावरणतत्पराः ।।४६।।

मोक्ष्यध्वे स्वर्गबन्दीनां वेणीबन्धानदूषितान् ।
शापयन्त्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैः ।।४७।।

रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन सः ।
अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघस्तिरोदधे ।।४८।।

४१. उसके अपने खड्ग की धारा से छूटा हुआ उसका दसवां सिर उस राक्षस द्वारा सुरक्षित रख दिया गया है मानो वह मेरे चक्र का प्राप्तव्य भाग हो ।

४२. ब्रह्मा के वरदान के कारण मैंने इस दुरात्मा शत्रु की वृद्धि को उसी प्रकार सहन किया है जैसे चन्दन सांप का चढ़ना सहन करता है ।

४३. तपस्या से प्रसन्न ब्रह्मा से उस राक्षस ने मनुष्यों में कोई आस्था न होने के कारण यह वर मांगा कि देवताओं में से कोई उसे न मार सके ।

४४. दशरथ की सन्तान बन कर मैं तीक्ष्ण बाणों से उसके सिर रूपी कमलों के समूह को युद्धभूमि की पूजा के योग्य बनाऊंगा ।

४५. यज्ञ करने वालों द्वारा विधिपूर्वक दिये गये हवि के भाग को आप लोग मायावी राक्षसों के चखे बिनाही शीघ्र प्राप्त करेंगे ।

४६. मेघों की आड़ में छिपने को तत्पर पुण्यात्मा वैमानिक आकाश मार्ग में पुष्पक विमान को देखकर उत्पन्न होने वाले भय से चकित होना छोड़ दें ।

४७. बन्दियों की उन वेणियों के बन्धनों को अब आप लोग खोलेंगे जो नल कूबर क शाप से विवश होने के कारण पुलत्स्य की सन्तान रावण द्वारा बलात्कारपूर्बक बालों के पकड़ने से दूषित नहीं हुई है ।

४८. वह काला मेघ रावणरुपी अवर्षा से म्लान देवतारूपी शस्य पर अपनी वाणीरुपी अमृत की वर्षा करके अन्तर्धान हो गया ।

पुरुहूतप्रभृतयः सुरकार्योद्यतं सुराः ।
अंशैरनुययुर्विष्णुं पुष्पैर्वायुमिव द्रुमाः ।।४९।।

अथ तस्य विशाम्पत्युरन्ते काम्यस्य कर्मणः ।
पुरुषः प्रबभूवाग्नेर्विस्मयेन सहर्त्विजाम् ।।५०।।

हेमपात्रगतं दोर्भ्यामादधानः पयश्चरुम् ।
अनुप्रवेशादाद्यस्य पुंसस्तेनापि दुर्वहम् ।।५१।।

प्राजापत्योपनीतं तदन्नं प्रत्यग्रहीन्नृपः ।
वृषेव पयसां सारमाविष्कृतमुदन्वता ।।५२।।

अनेन कथिता राज्ञो गुणास्तस्यान्यदुर्लभाः ।
प्रसूतिं चकमे तस्मिंस्त्रैलोक्यप्रभवोऽपि यत् ।।५३।।

स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम् ।
द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम् ।।५४।।

अर्चिता तस्य कौसल्या प्रिया केकयवंशजा ।
अतः सम्भावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः ।।५५।।

ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः ।
चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे ।।५६।।

४९. इन्द्र आदि देवताओं ने देवताओं का कार्य करने के लिये उद्यत विष्णु का अनुकरण अपने-अपने अंश से उसी प्रकार किया जैसे वृक्ष अपने फूलों से वायु का अनुकरण करते हैं।

५०. तब राजा दशरथ द्वारा चाहे गये कार्य पुत्रेष्टि यज्ञ की समाप्ति पर अग्नि से एक दिव्य पुरुष निकला जिसे देख ऋत्विक् लोग आश्चर्य से भर उठे।

५१. आदि पुरुष विष्णु का अधिष्ठान होने के कारण उस दिव्य पुरुष से भी कठिनाई से उठाये जाने योग्य सोने के बर्तन में रखी हुई खीर को वह दोनों हाथों से उठाये हुए था।

५२. राजा दशरथ ने प्रजापति ब्रह्मा के यहां से आये हुए उस पुरुष द्वारा लाये गये उस अन्न को उसी प्रकार ले लिया मानों समुद्र द्वारा प्रकट किये गये अमृत को इन्द्र ने ग्रहण किया हो।

५३. तीनों लोकों के कारण स्वरूप विष्णु ने स्वयं उनके यहां जन्म लेने की इच्छा की। इसीसे राजा दशरथ के उन गुणों का वर्णन किया गया जो दूसरों के लिये दुर्लभ हैं।

५४. राजा ने चरु के रूप में विष्णु के तेज को दो पत्नियों में उसी प्रकार बांटा मानों सूर्य ने बालातप को द्युलोक और पृथ्वी लोक में बांट दिया हो।

५५. राजा दशरथ की ज्येष्ठ पत्नी कौसल्या और प्रिय पत्नी कैकेयी थी इसलिये उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की कि उन दोनों के द्वारा सुमित्रा को उसका भाग देकर सम्मानित किया जाय।

५६. अपने अतिशय ज्ञानी पति राजा दशरथ के मन की बात जानने वाली उन पत्नियों ने अपना-अपना आधा-आधा भाग सुमित्रा को दे दिया।

सा हि प्रणयवत्यासीत्सपत्न्योरुभयोरपि ।
भ्रमरी वारणस्येव मदनिष्यन्दरेखयोः ।।५७।।

ताभिर्गर्भः प्रजाभूत्यै दध्रे देवांशसम्भवः ।
सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मयः ।।५८।।

सममापन्नसत्त्वास्ता रेजुरापाण्डुरत्विषः ।
अन्तर्गतफलारम्भाः सस्यानामिव सम्पदः ।।५९।।

गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः ।
जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तिभिः ।।६०।।

हेमपक्षप्रभाजालं गगने च वितन्वता ।
उह्यन्ते स्म सुपर्णेन वेगाकृष्टपयोमुचा ।।६१।।

बिभ्रत्या कौस्तुभन्यासं स्तनान्तरविलम्बिनम् ।
पर्युपास्यन्त लक्ष्म्या च पद्मव्यजनहस्तया ।।६२।।

कृताभिषेकैर्दिव्यायां त्रिस्रोतसि च सप्तभिः ।
ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपतस्थिरे ।।६३।।

ताभ्यस्तथाविधान् स्वप्नाञ्छ्रुत्वा प्रीतो हि पार्थिवः ।
मेने परार्ध्यमात्मानं गुरुत्वेन जगद्गुरोः ।।६४।।
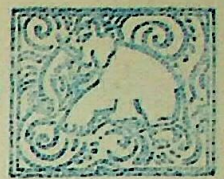
५७. वह सुमित्रा अपनी दोनों सौतों से उसी कार प्रेम रखती थी जैसे भ्रमरी हाथी की मद टपकती हुई दोनों कनपटियों की रेखाओं से प्रेम रखती है।

५८. जैसे अमृता नामक सूर्य की किरणें जल को अपने गर्भ में धारण करती हैं उसी प्रकार उन रानियों ने प्रजा के कल्याण के लिये देवताओं के अंशभूत गर्भ को धारण किया।

५९. एक साथ ही गर्भ धारण करने वाली रानियां अपनी पीली पड़ी हुई प्रभासे ऐसी शोभित हुई जैसे भीतर फल का आरम्भ हो जाने पर अनाज की फसल।

६०-६१. उन सबने स्वप्न में देखा कि छोटी-छोटी कमल, खड्ग गदा और चक्र धारण करनेवाली मूर्तियां उनकी रक्षा कर रही हैं और सोने के पंखों से निकलने वाले प्रकाश के पुंज को आकाश में फैलाने वाला और अपने वेग से मेघों को अपनी ओर खींचने वाला गरुड़ उन्हें आकाश में उड़ा रहा है।

६२. हाथ में कमल का पंखा लेकर हिलाती हुई और अपने स्तनों के बीच में लटकते हुए कौस्तुभ मणि को धारण करने से शोभायमान लक्ष्मी उनकी सेवा कर रही हैं।

६३. आकाशगंगा में स्नान करके वेदों का पाठ करते हुए सातों ब्रह्मर्षियों न उनकी उपासना की।

६४. उनसे इस प्रकार के स्वप्नों को सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और जगद्गुरु विष्णु के पिता होने क कारण उन्होंने अपने को सबसे उत्कृष्ट माना।

विभक्तात्मा विभुस्तासामेकः कुक्षिष्वनेकधा ।
उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामपामिव ।।६५।।

अथाग्रयमहिषी राज्ञः प्रसूतिसमये सती ।
पुत्रं तमोपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवौषधिः ।।६६।।

राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः ।
नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममङ्गलम् ।।६७।।

रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा ।
रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभवन् ।।६८।।

शय्यागतेन रामेण माता शातोदरी बभौ ।
सैकताम्भोजबलिना जाह्नवीव शरत्कृशा ।।६९।।

कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान् ।
जनयित्रीमलंचक्रे यः प्रश्रय इव श्रियम् ।।७०।।

सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ ।
सम्यगाराधिता विद्या प्रबोधविनयाविव ।।७१।।

निर्दोषमभवत्सर्वमाविष्कृतगुणं जगत् ।
अन्वगादिव हि स्वर्गो गां गतं पुरुषोत्तमम् ।।७२।।

६५. एक ही व्यापक विष्णु अपने आपको विभक्त करके उनके गर्भ में अनक होकर वैसे ही विद्यमान थे जैसे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल में दिखाई देता है ।

६६. प्रसूति का समय आने पर राजा की पतिव्रता बड़ी रानी ने रात में प्रकाशित होनेवाली औषधि के समान अन्धकार को दूर करने वाला पुत्र पाया ।

६७. उसके मनोहर शरीर से प्रेरित होकर पिता ने जगत् के लिये सबसे अधिक मंगल करने वाला राम नाम रखा ।

६८. अत्यधिक तेजस्वी रघुवंश के उस दीपक से प्रसूति गृह के दीपक मानों अभिभूत हो गये ।

६९. राम के शय्या पर आने पर उनकी माता अपने उदर के संकुचित हो जाने पर ऐसी शोभायमान हुई जैसे शरद्ऋतु की पतली धारा वाली गंगा ।

७०. कैकेयी के भरत नामक शीलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने अपनी माता को उसी प्रकार सुशोभित किया जैसे लक्ष्मी को विनय सुशोभित करता है ।

७१. सुमित्रा ने दो जुड़वे पुत्रों को जन्म दिया जैसे भली भांति अभ्यास की गई विद्या तत्वज्ञान और विनय को जन्म देती है ।

७२. पृथ्वी पर विष्णु का अवतार लेने पर मानों उनके पीछे-पीछे स्वर्ग ही यहां उतर आया । सारा जगत् दुर्भिक्ष आदि दोषों से रहित हो गया और उसके नीरोगता आदि गुण प्रकट होकर सामने आ गये ।

तस्योदये चतुर्मूर्तेः पौलस्त्यचकितेश्वराः ।
विरजस्कैर्नभस्वद्भिर्दिश उच्छ्वसिता इव ।।७३।।

कृशानुरपधूमत्वात्प्रसन्नत्वात्प्रभाकरः ।
रक्षोविप्रकृतावास्तामपविद्धशुचाविव ।।७४।।

दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रियः ।
मणिव्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः ।।७५।।

पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्याणां तस्य पुत्रिणः ।
आरम्भं प्रथमं चक्रुर्देवदुन्दुभयो दिवि ।।७६।।

सन्तानकमयी वृष्टिर्भवने चास्य पेतुषी ।
सन्मङ्गलोपचाराणां सैवादिरचनाऽभवत् ।।७७।।

कुमाराः कृतसंस्कारास्ते धात्रीस्तन्यपायिनः ।
आनन्देनाग्रजेनेव समं ववृधिरे पितु ः ।।७८।।

स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनयकर्मणा ।
मुमूर्च्छ सहजं तेजो हविषेव हविर्भुजाम् ।।७९।।

परस्पराविरुद्धास्ते तद्रघोरनघं कुलम् ।
अलमुद्योतयामासुर्देवारण्यमिवर्तवः ।।८०।।

७३. राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन चार मूर्तियों वाले विष्णु के अवतार लेने पर रावण से भयभीत स्वामियों वाली दिशाओं ने मानो धूल रहित वायु से अपना उच्छ्वास व्यक्त किया।

७४. राक्षस रावण द्वारा पीड़ित हुए अग्नि और सूर्य क्रमशः धुएं से मुक्त और निर्मल होकर मानों दुःख से छुटकारा पा गये।

७५. राम जन्म के समय राक्षसों की समृद्धि ने मानों रावण के मुकुटों से गिरे हुए मणियों के बहाने अपने आंसू की बूंद पृथ्वी पर गिराईं ।

७६. राजा दशरथ के पुत्र होन पर पुत्रजन्म के उपलक्ष में बजाये जाने वाल बाजों का प्रारम्भ सबसे पहले स्वर्ग में वजने वाले देवताओं के नगाड़ों से हुआ।

७७. राजा दशरथ के भवन में कल्पवृक्ष के फूलों की जो वर्षा हुई वही उस समय के मंगल कार्यो की पहली रचना बन गई।

७८. वे कुमार जिनके जातकर्म आदि संस्कार हो चुके थे और जो अपनी धायों का स्तन पी रह थ, अपने पिता क हृदय में पहले से ही उत्पन्न आनन्द के साथ ही साथ बढ़ने लगे।

७९. उन कुमारों की स्वाभाविक विनम्रता शिक्षा के द्वारा उसी प्रकार बढ़ी जैसे अग्नि का स्वाभाविक तेज हवि पाकर बढ़ जाता है।

८०. आपस में प्रेम रखने वाले उन कुमारों ने रघु के उस पवित्र कुल को उसी प्रकार प्रकाशमान कर दिया जैसे वसन्त आदि ऋतुएं नन्दन कानन की शोभा को बढ़ा देती हैं।

समानेऽपि हि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः ।।८१।।

तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं बिभिदे न कदाचन ।
यथा वायुविभावस्वोर्यथा चन्द्रसमुद्रयोः ।।८२।।

ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च ।
मनो जह्रुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव ।।८३।।

स चतुर्धा बभौ व्यस्तः प्रसवः पृथिवीपतेः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गवान् ।।८४।।

गुणैराराधयामासुस्ते गुरुं गुरुवत्सलाः ।
तमेव चतुरन्तेशं रत्नैरिव महार्णवाः ।।८५।।

सुरगज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारै
नय इव पणबन्धव्यक्तयोगैरुपायैः ।
हरिरिव युगदीर्घैर्दोर्भिरंशैस्तदीयैः
पतिरवनिपतीनां तैश्चकाशे चतुर्भिः ।।८६।।

———

८१. आपस में समान रूप से भ्रातृभाव होते हुए भी जैसे राम और लक्ष्मण वैसे ही भरत और शत्रुघ्न अपने प्रेम के कारण जोड़े बन गये।

८२. उन चारों भाइयों में दो-दो भाइयों की एकता कभी न टूटी जैसे वायु और अग्नि तथा चन्द्रमा और समुद्र की।

८३. प्रजा के हृदयों के स्वामी इन राजकुमारों ने अपने प्रभाव और विनय से प्रजा का मन उसी प्रकार हरण कर लिया जैसे गरमी के अन्त में काले मेघवाले दिन प्रजा का मन हर लेते हैं।

८४. राजा के चारों पुत्र अलग-अलग ऐसे शोभित हुए मानों वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के साक्षात् अवतार हों।

८५. इन पितृभक्त राजकुमारों ने विनय आदि अपने गुणों से अपने पिता को उसी प्रकार आनन्दित किया जैसे चारों दिशाओं के स्वामी उन्हीं राजा दशरथ को चारों समुद्रों ने अपने रत्नों से।

८६. राक्षसों की तलवारों की धारों को खण्ड-खण्ड करने वाले चारों दांतों से जैसे देवताओं का हाथी ऐरावत; फल की सिद्धि से जिस के प्रयोग का अनुमान होता है ऐसे साम आदि चार उपायों से जैसे नीति; और एकसाथ ही बड़ी-बड़ी चार भुजाओं से जैसे विष्णु शोभित होते हैं उसी प्रकार विष्णु के उन चार अंशों से राजाओं के राजा दशरथ शोभित हुए।

एकादशः सर्ग

कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये ।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ।।१।।

कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक् तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ।
अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ।।२।।

यावदादिशति पार्थिवस्तयोर्निर्गमाय पुरमार्गसंस्क्रियाम् ।
तावदाशु विदधे मरुत्सखैः सा सपुष्पजलवर्षिभिर्घनैः ।।३।।

तौ निदेशकरणोद्यतौ पितुर्धन्विनौ चरणयोर्निपेततुः ।
भूपतेरपि तयोः प्रवत्स्यतोर्नम्रयोरुपरि बाष्पबिन्दवः ।।४।।

तौ पितुर्नयनजेन वारिणा किञ्चिदुक्षितशिखण्डकावुभौ ।
धन्विनौ तमृषिमन्वगच्छतां पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ ।।५।।

लक्ष्मणानुचरमेव राघवं नेतुमैच्छदृषिरित्यसौ नृपः ।
आशिषं प्रयुयुजे न वाहिनीं सा हि रक्षणविधौ तयोः क्षमा ।।६।।

मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः ।
रेजतुर्गतिवशात्प्रवर्तिनौ भास्करस्य मधुमाधवाविव ।।७।।

वीचिलोलभुजयोस्तयोर्गतं शैशवाच्चपलमप्यशोभत ।
तोयदागम इवोद्ध्यभिद्ययोर्नामधेयसदृशं विचेष्टितम् ।।८।।
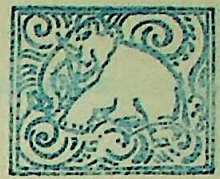
ग्यारहवाँ सर्ग

१. कौशिक विश्वामित्र ने राजा दशरथ के पास जाकर काकपक्षधारी राम को यज्ञ में होने वाले विघ्नों की शान्ति के लिये मांगा। तेजस्वी लोगों की आयु का विचार नहीं किया जाता।

२. विद्वानों का आदर करने वाले राजा ने कठिनाई से प्राप्त पुत्र राम को लक्ष्मण समेत मुनि को सौंप दिया। प्राणों की भी मांग करने वालों की मांग रघु कुल में कभी व्यर्थ नहीं गई।

३. जब तक राजा ने उनके जाने के लिये नगर के मार्गों की सजावट का आदेश दिया तब तक हवा के साथ बादलों ने फूलों के साथ जल की वर्षा करके वह काम कर डाला।

४. आज्ञा का पालन करने के लिये तत्पर धनुषधारी राम और लक्ष्मण पिता के चरणों में पड़ गये। प्रवास में जाने वाले उन झुके हुए राजकुमारों पर राजा के आंसू की बून्दें भी टपक पड़ीं।

५. पिता के नेत्रों से निकले हुए जल से उन धनुषधारियों की चोटियां कुछ सिंचित हो गई। ऋषि विश्वामित्र के पीछे जाने वाले इन राजकुमारों के लिये नगर निवासियों की दृष्टियों ने तोरण का काम किया।

६. ऋषि विश्वामित्र रामचन्द्र के साथ केवल लक्ष्मण को ले जाना चाहते थे, इसलिये राजा ने अपनी सेना साथ न भेजकर अपने आशीर्वाद ही उनके साथ भेजे क्योंकि वे उनकी रक्षा के लिये समर्थ थे।

७. माताओं के चरणों का स्पर्श करके, मुनि के पदचिह्नों पर चलने वाले वे राजकुमार ऐसे शोभित हुए जैसे महान् तेजस्वी सूर्य की गति के वशीभूत होकर चलने वाले चैत्र और वैशाख मास शोभित होते हैं।

८. बचपन के कारण उनकी लहरों के समान चंचल भुजाओं के साथ चलना उसी प्रकार सुन्दर लग रहा था जैसे वर्षा के आने पर उद्धय और मिद्य नदियां अपने नाम के अनुरूप उमड़कर चलने और किनारों को काटने की चष्टा से अच्छी लगती हैं।

तौ बलातिबलयोः प्रभावतो विद्ययोः पथि मुनिप्रदिष्टयोः ।
मम्लतुर्न मणिकुट्टिमोचितौ मातृपार्श्वपरिवर्तिनाविव ।।९।।

पूर्ववृत्तकथितैः पुराविदः सानुजः पितृसखस्य राघवः ।
उह्यमान इव वाहनोचितः पादचारमपि न व्यभावयत् ।।१०।।

तौ सरांसि रसवद्भिरम्बुभिः कूजितैः श्रुतिसुखैः पतत्त्रिणः ।
वायवः सुरभिपुष्परेणुभिश्छायया च जलदाः सिषेविरे ।।११।।

नाम्भसां कमलशोभिनां तथा शाखिनां च न परिश्रमच्छिदाम् ।
दर्शनेन लघुना यथा तयोः प्रीतिमापुरुभयोस्तपस्विनः ।।१२।।

स्थाणुदग्धवपुषस्तपोवनं प्राप्य दाशरथिरात्तकार्मुकः ।
विग्रहेण मदनस्य चारुणा सोऽभवत्प्रतिनिधिर्न कर्मणा ।।१३।।

तौ सुकेतुसुतया खिलीकृते कौशिकाद्विदितशापया पथि ।
निन्यतुः स्थलनिवेशिताटनी लीलयेव धनुषी अधिज्यताम् ।।१४।।

ज्यानिनादमथ गृह्णती तयोः प्रादुरास बहुलक्षपाछविः ।
ताडका चलकपालकुण्डला कालिकेव निबिडा बलाकिनी ।।१५।।

तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया प्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया ।
अभ्यभावि भरताग्रजस्तया वात्ययेव पितृकाननोत्थया ।।१६।।

९. मणिमय फर्श पर चलने के योग्य वे दोनों राजकुमार मुनि द्वारा सिखाई गई बला और अतिवला विद्याओं के प्रभाव से मार्ग में न कुम्हलाये, मानों वे अपनी माताओं के आसपास ही घूम रहे हों ।

१०. सवारी पर चलने योग्य भाई सहित रामचन्द्र पूर्व इतिहास के ज्ञाता अपने पिता के मित्र ऋषि विश्वामित्र द्वारा सुनाय गय पूव वृत्तान्तों क कारण इस प्रकार चले जारहे थे मानों सवारी से जा रहे हों; उन्हें पैदल चलन का भान ही न हुआ ।

११. सरस जल से सरोवरों ने, मधुर कलरव से पक्षियों ने, सुगन्धित परागों से वायु ने और छाया से मेघों ने उनकी सवा की ।

१२. न कमलों से शोभायमान जलाशयों से और न थकावट को दूर करने वाले वृक्षों से ही तपस्वियों के हृदय में वैसा प्रेम उत्पन्न हुआ, जैसा उन दोनों के क्षणिक दर्शन से हुआ ।

१३. धनुष उठाये हुए दशरथ के पुत्र राम जब शिवजी द्वारा भस्म किये गये कामदेव के वन में पहुंचे, तो उन्होंने अपने सुन्दर शरीर से उसका प्रतिनिधित्व किया; अपने कर्म से नहीं ।

१४. जिसके शाप की बात उन्हें विदित हो चुकी थी, वह सुकेतु की कन्या ताड़का उन्हें उस मार्ग में मिली जिस उसने वीरान कर दिया था । उन दोनों ने अपने धनुषों के सिरों को पृथ्वी पर टेक कर सहज ही उनकी डोरी चढ़ा ली ।

१५. तब उनके धनुषों की डोरियों की टंकार को सुनकर कृष्णपक्ष की रात्रि के समान कान्तिवाली ताड़का प्रकट हुई । अपने कानों के हिलते हुए कपाल-कुण्डलों स वह एसी लग रही थी मानों मेघों की सघन माला में बगलों की पंक्ति उड़ी जा रही हो ।

१६. अपनी तीव्रगति से उसने रास्ते के पेड़ों को कंपा दिया । कफन लपेट और भीषण गर्जना करती हुई वह भरत के बड़े भाई राम पर श्मशान भूमि से उड़े हुए बवंडर के समान छा गई ।

उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् ।
तां विलोक्य वनितावधे घृणां पत्रिणा सह मुमोच राघवः ।।१७।।

यच्चकार विवरं शिलाघने ताडकोरसि स रामसायकः ।
अप्रविष्टविषयस्य रक्षसां द्वारतामगमदन्तकस्य तत् ।।१८।।

बाणभिन्नहृदया निपेतुषी सा स्वकाननभुवं न केवलाम् ।
विष्टपत्रयपराजयस्थिरां रावणश्रियमपि व्यकम्पयत् ।।१९।।

राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी ।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ।।२०।।

नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रवन्मुनेः प्रापदस्त्रमवदानतोषितात् ।
ज्योतिरिन्धननिपाति भास्करात्सूर्यकान्त इव ताडकान्तकः ।।२१।।

वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान् ।
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः ।।२२।।

आससाद मुनिरात्मनस्ततः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम् ।
बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम् ।।२३।।

तत्र दीक्षितमृषिं ररक्षतुर्विघ्नतो दशरथात्मजौ शरैः ।
लोकमन्धतमसात्क्रमोदितौ रश्मिभिः शशिदिवाकराविव ।।२४।।

१७ उसे एक हाथ से मुक्का ताने हुए और कमर में मनुष्य की आंतों की करधनी पहने हुए देखकर रघुवंश में उत्पन्न रामचन्द्र ने अपने बाण के साथ ही स्त्री को मारने के संबंध में अपने करुणा के भाव को भी छोड़ दिया।

१८ रामचन्द्र के उस बाण ने चट्टान के समान दृढ़ ताड़का की छाती को छेद दिया मानों राक्षसों के उस देश के लिये जहां काल ने प्रवेश नहीं किया था द्वार बन गया।

१९ बाण से हृदय के छिद जाने पर वह गिर पड़ी। उसके गिरने से केवल वन की वह भूमि ही नहीं, अपितु तीनों लोकों के पराजय से स्थिर रावण का ऐश्वर्य भी हिल उठा।

२० कामदेव के समान सुन्दर राम के कठिनाई से ही सहन करने योग्य बाण की चोट खाकर वह राक्षसी जो दुर्गन्धित रक्तरुपी चन्दन में लिपटी हुई थी, यमलोक को चली गई।

२१ इसके अनन्तर ताड़का का वध करने वाले राम पर उनके पराक्रम के कारण सन्तुष्ट होकर ऋषि ने उन्हें नैर्ऋतघ्न अस्त्र दिया, जिसमें सूर्यकान्त मणि के समान सूर्य से ज्वलनशील शक्ति प्राप्त करने की शक्ति थी।

२२ इसके अनन्तर रामचन्द्र ऋषि विश्वामित्र द्वारा बताये गये वामनाश्रम नामक स्थान में पहुंचे और पूर्वजन्म की अपनी क्रीड़ाओं को स्मरण करते हुए भी उन्होंने उसके प्रति अपनी उत्सुकता प्रकट की।

२३ इसके बाद मुनि उस तपोवन में पहुंचे, जहां शिष्यों के समूह ने पूजा की सामग्री तैयार की थी, वृक्षों ने अपने पल्लवों की अंजलि बना ली थी और मृग देखने के लिये उत्सुक हो मुंह उठाये हुए थे।

२४ उस तपोवन में दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण ने अपने बाणों के द्वारा यज्ञ के लिये दीक्षा संस्कारयुक्त ऋषि की विघ्नों से उसी प्रकार रक्षा की जैसे क्रम से चन्द्र और सूर्य गाढ़े अन्धकार से लोगों की रक्षा करते हैं।

वीक्ष्य वेदिमथ रक्तबिन्दुभिर्बन्धुजीवपृथुभिः प्रदूषिताम् ।
सम्भ्रमोऽभवदपोढकर्मणामृत्विजां च्युतविकङ्कतस्रुचाम् ।।२५।।

उन्मुखः सपदि लक्ष्मणाग्रजो बाणमाश्रयमुखात्समुद्धरन् ।
रक्षसां बलमपश्यदम्बरे गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम् ।।२६।।

तत्र यावधिपती मखद्विषां तौ शरव्यमकरोत्स नेतरान् ।
किं महोरगविसर्पिविक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते ।।२७।।

सोऽस्त्रमुग्रजवमस्त्रकोविदः सन्दधे धनुषि वायुदैवतम् ।
तेन शैलगुरुमप्यपातयत्पाण्डुपत्रमिव ताडकासुतम् ।।२८।।

यः सुबाहुरिति राक्षसोऽपरस्तत्र तत्र विससर्प मायया ।
तं क्षुरप्रशकलीकृतं कृती पत्रिणां व्यभजदाश्रमाद्बहिः ।।२९।।

इत्यपास्तमखविघ्नयोस्तयोः सांयुगीनमभिनन्द्य विक्रमम् ।
ऋत्विजः कुलपतेर्यथाक्रमं वाग्यतस्य निरवर्तयन्क्रियाः ।।३०।।

तौ प्रणामचलकाकपक्षकौ भ्रातराववभृथाप्लुतो मुनिः ।
आशिषामनुपदं समस्पृशद्दर्भपाटिततलेन पाणिना ।।३१।।

तं न्यमन्त्रयत सम्भृतक्रतुर्मैथिलः स मिथिलां व्रजन्वशी ।
राघवावपि निनाय बिभ्रतौ तद्धनुः श्रवणजं कुतूहलम् ।।३२।।

२५. बन्धूक के फूल के समान बड़ी-बड़ी रक्त की बून्दों से दूषित वेदी को देखकर उन्होंने अपना काम बन्द कर दिया और खैर की लकड़ी आदि से बनी स्रुवा को छोड़कर आश्चर्य में मग्न हो गये ।

२६. लक्ष्मण के बड़े भाई राम ने तर्कश के मुख से बाण निकालते हुए ऊपर मुंह करते ही आकाश में राक्षसों की सेना देखी जिनकी पताका गिद्धों के उड़ने से हिल रही थी ।

२७. रामचन्द्र ने वहां औरों को छोड़ यज्ञद्रोही राक्षसों के दोनों स्वामी सुबाहु और मारीच को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया । बड़े-बड़े सांपों पर पराक्रम दिखाने वाला गरुड़ क्या पानी के सांप पर आक्रमण करता है ?

२८. अस्त्र की विद्या को जानने वाले राम ने भीषण गति वाले उस अस्त्र को धनुष पर चढ़ाया जिसके देवता वायु थे । उस अस्त्रस पर्वत के समान भारी ताड़का का पुत्र मारीच पीले पत्ते के समान नीचे आ गिरा ।

२६. दूसरा सुबाहु नामक राक्षस अपनी माया से इधर-उधर घूमने लगा । उसे कुशल योद्धा राम ने अपने क्षुरप्र नामक बाण से टुकड़े-टुकड़े करके आश्रम के बाहर पक्षियों में बांट दिया ।

३०. यज्ञ के विघ्न को दूर करने वाले उन दोनों के सम्मिलित पराक्रम की प्रशंसा करके ऋत्विजों ने मौनी कुलपति के यज्ञ को विधिपूर्वक सम्पन्न किया।

३१. यज्ञ के अन्त में स्नान करके मुनि ने प्रणाम करने में हिलती हुई चोटी वाले उन भाइयों को आशीर्वाद देकर कुशयुक्त हाथ से स्पर्श किया ।

३२. इसी समय यज्ञ का निश्चय करने वाले मिथिला देश के राजा जनक ने विश्वामित्र ऋषि को आमन्त्रित किया । वे संयमी ऋषि मिथिला जाते हुए राजा जनक के धनुष के विषय में सुनकर कौतूहल भरे राम और लक्ष्मण को भी साथ ले गये ।

तैः शिवेषु वसतिर्गताध्वभिः सायमाश्रमतरुष्वगृह्यत ।
येषु दीर्घतपसः परिग्रहो वासवक्षणकलत्रतां ययौ ।।३३।।

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी ।
स्वं वपुः स किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः ।।३४।।

राघवान्वितमुपस्थितं मुनिं तं निशम्य जनको जनेश्वरः ।
अर्थकामसहितं सपर्यया देहबद्धमिव धर्ममभ्यगात् ।।३५।।

तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसू ।
मन्यते स्म पिबतां विलोचनैः पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मनः ।।३६।।

यूपवत्यवसिते क्रियाविधौ कालवित्कुशिकवंशवर्धनः ।
राममिष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयाम्बभूव सः ।।३७।।

तस्य वीक्ष्य ललितं वपुः शिशोः पार्थिवः प्रथितवंशजन्मनः ।
स्वं विचिन्त्य च धनुर्दुरानमं पीडितो दुहितृशुल्कसंस्थया ।।३८।।

अब्रवीच्च भगवन्मतङ्गजैर्यद्बृहद्भिरपि कर्म दुष्करम् ।
तत्र नाहमनुमन्तुमुत्सहे मोघवृत्ति कलभस्य चेष्टितम् ।।३९।।

ह्रेपिता हि बहवो नरेश्वरास्तेन तात ! धनुषा धनुर्भृतः ।
ज्यानिघातकठिनत्वचो भुजान्स्वान्विधूय धिगिति प्रतस्थिरे ।।४०।।

३३. वे तीनों यात्री सायंकाल उस सुन्दर आश्रम के वृक्षों के नीचे ठहरे जहां महान् तपस्वी गौतम की पत्नी क्षण भर को इन्द्र की पत्नी बन गई थीं।

३४. पत्थर की मूर्ति बनी हुई गौतम की पत्नी अहल्या को बहुत लम्बे समय के बाद अपना सुन्दर शरीर प्राप्त हुआ। यह निश्चय ही पापहारी रामचन्द्र के चरणों की धूल की कृपा थी।

३५. राजा जनक ने यह समाचार पाकर कि दोनों रघुवंशी राजकुमार राम और लक्ष्मण सहित मुनि विश्वामित्र आये हुये हैं, मानो अर्थ और काम से युक्त सशरीर धर्म की पूजा के लिये प्रस्थान किया।

३६. आकाश से पृथ्वी पर उतरे हुए पुनर्वसु नक्षत्रों के जोड़े के समान शोभायमान राम और लक्ष्मण दोनों को अपने नेत्रों से पीते हुए मिथिला के नगर-निवासियों ने मन में यह सोचा कि पल भर पलकों का गिरना भी विडम्बना ही है।

३७. यूपवाली क्रिया की विधि समाप्त हो जाने पर समय को पहचानने वाले कुशिक वंश की उन्नति करने वाले विश्वामित्र ऋषि ने राजा जनक से कहा कि राम धनुष देखने को उत्सुक हैं।

३८. राजा जनक को उच्चकुल में जन्म हुए उस बालक के सुन्दर शरीर को देख और अपने कठिनाई से झुकने वाले धनुष की बात सोचकर कन्या सीता को प्राप्त करने के संबंध में अपने निश्चय से दुःख हुआ।

३९. उन्होंने मुनि से कहा, हे भगवन, बड़े-बड़े हाथी भी जिस कठिन कार्य को नहीं कर सकते, उसके लिये हाथी के बच्चे की व्यर्थ चेष्टा का अनुमान करने के लिये मुझे कोई उत्साह नहीं होता।

४०. हे तात, उस धनुष ने अनेक धनुषधारी राजाओं को लज्जित किया है। उन राजाओं ने अपने धनुष की डोरियों की चोट से कठिन चमड़ी वाली अपनी भुजाओं को धिक्कारते हुए यहां से प्रस्थान किया है।

प्रत्युवाच तमृषिर्निशम्यतां सारतोऽयमथवा गिरा कृतम् ।
चाप एव भवतो भविष्यति व्यक्तशक्तिरशनिर्गिराविव ।।४१।।

एवमाप्तवचनात्स पौरुषं काकपक्षकधरेऽपि राघवे ।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ।।४२।।

व्यादिदेश गणशोऽथ पार्श्वगान्कार्मुकाभिहरणाय मैथिलः ।
तैजसस्य धनुषः प्रवृत्तये तोयदानिव सहस्रलोचनः ।।४३।।

तत्प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणं वीक्ष्य दाशरथिराददे धनुः ।
विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं येन बाणमसृजद् वृषध्वजः ।।४४।।

आततज्यमकरोत्स संसदा विस्मयस्तिमितनेत्रमीक्षितः ।
शैलसारमपि नातियत्नतः पुष्पचापमिव पेशलं स्मरः ।।४५।।

भज्यमानमतिमात्रकर्षणात्तेन वज्रपरुषस्वनं धनुः ।
भार्गवाय दृढमन्यवे पुनः क्षत्रमुद्यतमिव न्यवेदयत् ।।४६।।

दृष्टसारमथ रुद्रकार्मुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः ।
राघवाय तनयामयोनिजां रूपिणीं श्रियमिव न्यवेदयत् ।।४७।।

मैथिलः सपदि सत्यसङ्गरो राघवाय तनयामयोनिजाम् ।
सन्निधौ द्युतिमतस्तपोनिधेरग्निसाक्षिक इवातिसृष्टवान् ।।४८।।

४१. ऋषि ने उन्हें उत्तर दिया, सुनिये ये राम बल में अथवा वाणी में अद्वितीय हैं। जैसे वज्र पर्वत पर अपनी शक्ति प्रकट करता है वैसे ही धनुष ही इनकी शक्ति बतलायगा।

४२. इस प्रकार ऋषि के प्रामाणिक वचन को सुनकर काकपक्षधारी बालक राम के पराक्रम पर उन्हें उसी प्रकार भरोसा हुआ जैसे बीरबहूटी के बराबर अंगार में भी जलाने की शक्ति होती है।

४३. तब मिथिला के राजा जनक ने अपने समीप रहने वाले सेवकों को धनुष लाने का आदेश दिया मानों सहस्रनेत्र इन्द्र ने अपना तेजमय धनुष लाने के लिये मेघों के समूह को आदेश दिया हो।

४४. दशरथ पुत्र राम ने सोये हुए महान् सर्प के समान उस भयंकर धनुष को देखकर उठा लिया। यह वही धनुष था जिस के द्वारा वृषभ-लाञ्छन शिवजी ने तेज भागने वाले यज्ञ रूपी मृग के पीछे अपना बाण छोड़ा था।

४५. सभा के आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से देखते ही देखते राम ने पर्वत के सार के समान उस धनुष पर थोड़े प्रयत्न से ही डोरी चढ़ा दी मानों वह फूलों का बना कामदेव का कोमल धनुष हो।

४६. राम के द्वारा अधिक खींचे जाने से टूटने पर वज्र के समान कठोर शब्द करने वाले उस धनुष ने प्रबल क्रोधी भृगु की सन्तान परशुराम से जाकर मानों यह कहा कि क्षत्रिय कुल ने फिर सिर उठाया है।

४७. तब मिथिला नरेश जनक ने राम को, जिनके बल की परीक्षा शिव धनुष पर हो चुकी थी और धनुष भंग के पराक्रम के रूप में जिन्होंने अपना शुल्क भी दे दिया था, दैवी उत्पत्तिवाली साक्षात् लक्ष्मी के समान अपनी कन्या सीता समर्पित कर दी।

४८. सत्यप्रतिज्ञ राजा जनक ने तेजस्वी और तप के धनी ऋषि विश्वामित्र के सामने, जो ऐसे लगते थे मानों स्वयं अग्नि साक्षी होकर वहां उपस्थित हों, अपनी कन्या रामचन्द्र को तत्काल समर्पित की.

प्राहिणोच्च महितं महाद्युतिः कोसलाधिपतये पुरोधसम् ।
भृत्यभावि दुहितुः परिग्रहाद्दिश्यतां कुलमिदं निमेरिति ।।४६।।

अन्वियेष सदृशीं स च स्नुषां प्राप चैनमनुकूलवाग्द्विजः ।
सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम् ।।५०।।

तस्य कल्पितपुरस्क्रियाविधेः शुश्रुवान्वचनमग्रजन्मनः ।
उच्चचाल बलभित्सखो वशी सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिः ।।५१।।

आससाद मिथिलां स वेष्टयन्पीडितोपवनपादपां बलैः ।
प्रीतिरोधमसहिष्ट सा पुरी स्त्रीव कान्तपरिभोगमायतम् ।।५२।।

तौ समेत्य समये स्थितावुभौ भूपती वरुणवासवोपमौ ।
कन्यकातनयकौतुकक्रियां स्वप्रभावसदृशीं वितेनतुः ।।५३।।

पार्थिवीमुदवहद्रघूद्वहो लक्ष्मणस्तदनुजामथोर्मिलाम् ।
यौ तयोरवरजौ वरौजसौ तौ कुशध्वजसुते सुमध्यमे ।।५४।।

ते चतुर्थसहितास्त्रयो बभुः सूनवो नववधूपरिग्रहाः ।
सामदानविधिभेदनिग्रहाः सिद्धिमन्त इव तस्य भूपतेः ।।५५।।

ता नराधिपसुता नृपात्मजैस्ते च ताभिरगमन्कृतार्थताम् ।
सोऽभवद्वरवधूसमागमः प्रत्ययप्रकृतियोगसन्निभः ।।५६।।
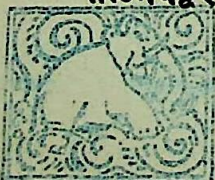
४६. महान् तेजस्वी जनक ने पूजनीय पुरोहित को राजा दशरथ के पास यह सन्देश देकर भेजा कि कन्या का विवाह हो जाने से राजा निमि के इस कुल को अब आप अपने सेवक के रूप में स्वीकार कीजिये ।

५०. राजा दशरथ ने अनुकूल पुत्रवधू को पाने की इच्छा प्रकट की और अनुकूल वचन कहने वाले पुरोहित को राजा दशरथ प्राप्त हुए । वस्तुतः सज्जनों की अभिलाषा कल्पवृक्ष के फल के समान तत्काल ही पूर्ण हो जाती है ।

५१. इन्द्र के मित्र और अपने आपको वश में रखने वाले राजा दशरथ ने उस ब्राह्मण की पूजा करके उससे सन्देश सुना और मिथिला के लिये प्रस्थान किया । उनकी सेना के चलने से उठी हुई धूल से सूर्य का प्रकाश ढंक गया ।

५२. मिथिला नगरी के उपवनों के वृक्षों को रौंदने वाली सेनाओं से लपेटते हुए उन्होंने उसे घेर लिया । उस नगरी ने प्रेम के इस बन्धन को उसी प्रकार सहन किया जैसे अपने प्रेमी के दीर्घकालीन विलास को स्त्री सहन कर लेती है ।

५३. वरुण और इन्द्र के समान उन दोनों ही आचारनिष्ठ राजाओं ने मिलकर अपनी महिमा के अनुरूप कन्याओं और पुत्रों के विवाह समारोह को विस्तारपूर्वक मनाने का आयोजन किया ।

५४. रघुवंश को चलाने वाले राम ने पृथ्वी की कन्या सीता से विवाह किया और लक्ष्मण ने उनकी छोटी बहन उर्मिला से । श्रेष्ठ तेज को धारण करने वाले उनके छोटे भाइयों ने कुशध्वज की सुन्दर कटि प्रदेश वाली कन्याओं से विवाह किया ।

५५. राजा दशरथ के वे चारों पुत्र अपनी नई बहुओं से विवाह करके सिद्धियुक्त होकर ऐसे शोभित हुए जैसे वे उनके साम, दाम, दण्ड और भेद ये चार उपाय ही हों ।

५६. ये राजकुमारियां राजकुमारों से और वे राजकुमार उन राज-कुमारियों से कृतार्थ हो गये । वरों और वधुओं का वह समागम प्रत्यय प्रकृति के आपस में मिलन के समान सिद्ध हुआ ।

एवमात्तरतिरात्मसम्भवांस्तान्निवेश्य चतुरोऽपि तत्र सः ।
अध्वसु त्रिषु विसृष्टमैथिलः स्वां पुरीं दशरथो न्यवर्तत ।।५७।।

तस्य जातु मरुतः प्रतीपगा वर्त्मसु ध्वजतरुप्रमाथिनः ।
चिक्लिशुर्भृशतया वरूथिनीमुत्तटा इव नदीरयाः स्थलीम् ।।५८।।

लक्ष्यते स्म तदनन्तरं रविर्बद्धभीमपरिवेषमण्डलः ।
वैनतेयशमितस्य भोगिनो भोगवेष्टित इव च्युतो मणिः ।।५९।।

श्येनपक्षपरिधूसरालकाः सान्ध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः ।
अङ्गना इव रजस्वला दिशो नो बभूवुरवलोकनक्षमाः ।।६०।।

भास्करश्च दिशमध्युवास यां तां श्रिताः प्रतिभयं ववासिरे ।
क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं चोदयन्त्य इव भार्गवं शिवाः ।।६१।।

तत्प्रतीपपवनादिवैकृतं प्रेक्ष्य शान्तिमधिकृत्य कृत्यवित् ।
अन्वयुङ्क्त गुरुमीश्वरः क्षितेः स्वन्तमित्यलघयत्स तद्व्यथाम् ।।६२।।

तेजसः सपदि राशिरुत्थितः प्रादुरास किल वाहिनीमुखे ।
यः प्रमृज्य नयनानि सैनिकैर्लक्षणीयपुरुषाकृतिश्चिरात् ।।६३।।

पित्र्यमंशमुपवीतलक्षणं मातृकं च धनुरूर्जितं दधत् ।
यः ससोम इव धर्मदीधितिः सद्विजिह्व इव चन्दनद्रुमः ।।६४।।

५७. इस प्रकार अनुराग भरे राजा दशरथ ने वहां अपने चारों पुत्रों का विवाह करके मिथिला से प्रस्थान किया और तीन दिन में अपने नगर को लौट आये।

५८. रास्ते में एक समय पताका रूपी वृक्षों को कंपाने वाली और उलटी चलने वाली हवा ने सेना को उसी प्रकार बहुत कष्ट दिया जैसे किनारे की भूमि के ऊपर बहने वाली नदी का वेग आसपास के स्थान को कष्ट पहुंचाता है।

५९. इसके बाद अपने चारों ओर बने हुए भयंकर मण्डल से सूर्य ऐसा लगने लगा मानों गरुड़ के द्वारा मारे गये सांप के फन से गिरी हुई मणि सांप से घिरी हुई पड़ी हो।

६०. बाजों के पंखों से मटमैले बालों वाली और सायंकालीन मेघों से रक्त से गीले कपड़ोंवाली दिशाएं उस समय रजस्वला स्त्रियों के समान दिखाई देने लगीं।

६१. जिस दिशा में सूर्य थे, उसी ओर जाकर स्यारियां भयानक स्वरों में रोने लगीं मानों क्षत्रियों के रक्त से अपने पिता का तर्पण करने वाले भृगुपुत्र परशुराम को वे पुकार रही हों।

६२. हवा का उलटा प्रवाह आदि अपशकुन देखकर कर्त्तव्य को जानने वाले राजा ने गुरु वसिष्ठ से पूछा कि यह उपद्रव कैसे शान्त होगा। उन्होंने यह कहकर कि इसका अन्त अच्छा ही होगा, उनका दुःख कम किया।

६३. सहसा उठी हुई प्रकाश की एक राशि सेना के सामने प्रकट हुई। सैनिकों ने देर तक अपनी आंखें मलकर उसे देखा तो विदित हुआ कि वह मनुष्य की आकृति है।

६४. वे अपने पिता का अंश यज्ञोपवीत और माता का अंश धनुष धारण किये हुए थे। उनकी शोभा चन्द्रमासहित सूर्य और सांप स लिपटे हुए चन्दन के वृक्ष के समान थी।

येन रोषपरुषात्मनः पितुः शासने स्थितिभिदोऽपि तस्थुषा ।
वेपमानजननीशिरश्छिदा प्रागजीयत घृणा ततो मही ।।६५।।

अक्षबीजवलयेन निर्बभौ दक्षिणश्रवणसंस्थितेन यः ।
क्षत्रियान्तकरणैकविंशतेर्व्याजपूर्वगणनामिवोद्वहन् ।।६६।।

तं पितुर्वधभवेन मन्युना राजवंशनिधनाय दीक्षितम् ।
बालसूनुरवलोक्य भार्गवं स्वां दशां च विषसाद पार्थिवः ।।६७।।

नाम राम इति तुल्यमात्मजे वर्तमानमहिते च दारुणे ।
हृद्यमस्य भयदायि चाभवद्रत्नजातमिव हारसर्पयोः ।।६८।।

अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपं सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजो यतः ।
क्षत्रकोपदहनार्चिषं ततः सन्दधे दृशमुदग्रतारकाम् ।।६९।।

तेन कार्मुकनिषक्तमुष्टिना राघवो विगतभीः पुरोगतः ।
अङ्गुलीविवरचारिणं शरं कुर्वता निजगदे युयुत्सुना ।।७०।।

क्षत्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य बहुशः शमं गतः ।
सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मितव विक्रमश्रवात् ।।७१।।

मैथिलस्य धनुरन्यपार्थिवैस्त्वं किलानमितपूर्वमक्षणोः ।
तन्निशम्य भवता समर्थये वीर्यशृङ्गमिव भग्नमात्मनः ।।७२।।
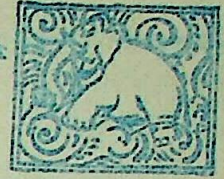
६५. क्रोध से कठोर हृदय बने हुए और मर्यादा का भंग करने वाले, अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी कांपती हुई माता का सिर काटने वाले परशुराम ने पहले तो दया पर विजय पाई और फिर पृथ्वी पर।

६६. दाहिने कान पर लटकती हुई रुद्राक्ष की माला को उन्होंने मानों क्षत्रियों के विनाश करने की इक्कीस संख्या के मिस पहले की संख्या में ही धारण कर रखा था ।

६७. राजा दशरथ को जिनके पुत्र अभी छोटे ही थे पिता के मारे जाने से क्रोध के कारण राजाओं के वंशों को समाप्त करने के लिये उद्यत भृगुवंशी परशुराम को तथा अपनी दशा को देखकर बहुत विषाद हुआ ।

६८. अपने पुत्र रामचन्द्र और भयंकर शत्रु परशुराम दोनों में ही समान रूप से विद्यमान रामनाम हार और सर्प दोनों में विद्यमान रत्नों के समान हृदय को आनन्द देने वाला और भयानक दोनों ही सिद्ध हुआ ।

६९. 'अर्घ्य अर्घ्य' कहते हुए राजा को न देख उन्होंने क्षत्रियों को अपने कोप से जलाने वाली ज्वाला के समान और भीषण पुतलियों वाली अपनी दृष्टि वहां डाली जहां भरत के बड़े भाई रामचंद्र थे।

७०. युद्ध के लिये उत्सुक, अपने धनुष को मुट्ठी में दबाये और उंगलियों के बीच अपने बाण को घुमाते हुए उन्होंने सामने आये हुए रामचन्द्र से कहा ।

७१. मेरा अपकार करने के कारण क्षत्रिय जाति मेरी शत्रु है। उसका अनेक बार नाश करके मैंने शान्तिलाभ की है फिर भी तुम्हारी वीरता की बात सुनकर मुझे वैसे ही क्रोध हो आया है जैसे डंडे के आघात से सांप क्रोधित हो जाता है।

७२. राजा जनक के जिस धनुष को राजा लोग पहले झुका भी न सके उसे तुमने तोड़ डाला । इस बात को सुनकर मैं यह मानता हूं कि तुमने मेरे पराक्रम रूपी शिखर को ही गिरा दिया है ।

अन्यदा जगति राम इत्ययं शब्द उच्चरित एव मामगात् ।
व्रीडमावहति मे स सम्प्रति व्यस्तवृत्तिरुदयोन्मुखे त्वयि ।।७३।।

बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितं द्वौ रिपू मम मतौ समागसौ ।
धेनवत्सहरणाच्च हैहयस्त्वं च कीर्तिमपहर्तुमुद्यतः ।।७४।।

क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन मामवति नाजिते त्वयि ।
पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः ।।७५।।

विद्धि चात्तबलमोजसा हरेरैश्वरं धनुरभाजि या त्वया ।
खातमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम्।। ७६ ।।

तन्मदीयमिदमायुधं ज्यया सङ्गमय्य सशरं विकृष्यताम् ।
तिष्ठतु प्रधनमेवमप्यहं तुल्यबाहुतरसा जितस्त्वया ।। ७७ ।।

कातरोऽसि यदि वोद्गतार्चिषा तर्जितः परशुधारया मम ।
ज्यानिघातकठिनाङ्गुलिर्वृथा बध्यतामभययाचनाञ्जलिः ।। ७८ ।।

एवमुक्तवति भीमदर्शने भार्गवे स्मितविकम्पिताधरः ।
तद्धनुर्ग्रहणमेव राघवः प्रत्यपद्यत समर्थमुत्तरम् ।। ७९ ।।

पूर्वजन्मधनुषा समागतः सोऽतिमात्रलघुदर्शनोऽभवत् ।
केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः ।। ८० ।।

७३ पहले इस संसार में राम शब्द कहने पर लोगों को मेरा ही बोध होता था । आज ज्यों-ज्यों तुम्हारा उदय होता जा रहा है, त्यों-त्यों तुमसे उसका सम्पर्क अधिक होने के कारण मुझे लज्जित होना पड़ रहा है ।

७४. क्रौंच आदि पर्वतों पर भी कुंठित न होने वाले अस्त्रों को धारण करने वाले मुझ परशुराम के माने हुए दो ही समान रूप से अपराधी शत्रु हैं, एक मेरे पिता की गाय और बछड़े को छीनने वाला हैहयवंशी कार्तवीर्य और दूसरा मेरे यश का अपहरण करने के लिये उद्यत तुम।

७५. इसलिये क्षत्रियों का नाश करने में समर्थ मेरा पराक्रम, जब तक तुम्हें नहीं जीत लेता, मुझे अच्छा नहीं लग रहा है । अग्नि का बड़प्पन इसीमें है कि वह जैसे कक्ष में जलती है वैसे ही समुद्र में भी जले ।

७६ शिवजी के जिस धनुष को तुमने तोड़ा है उसे तुम विष्णु के बल से बलहीन किया हुआ समझो । पानी के वेग से खुदी हुई जड़ वाले नदी के किनारे के वृक्ष को हल्की सी भी हवा गिरा देती है।

७७. इसलिये तुम मेरे इस हथियार की डोरी चढ़ाकर बाण सहित इसे खींचो। युद्ध न सही, वैसे भी यदि तुम समान बाहुबल वाले सिद्ध हुए तो यह मान लूंगा कि तुमने मुझे जीत लिया ।

७८. अथवा यदि मेरे फरसे की चमचमाती धार से भयभीत होकर तुम कायर हो गये हो, तो धनुष की डोरी की चोटों से व्यर्थ ही कठोर बनी हुई उंगलियों वाले हाथ जोड़कर अभयदान मांग लो ।

७९. देखने में भयंकर भृगुवंशी परशुराम के ऐसा कहने पर रघुवंशी राम के ओठ मुसकराहट से हिल उठे । धनुष लेने को ही रामचन्द्र ने इसका उचित उत्तर समझा ।

८०. पूर्व जन्म के अपने धनुष से युक्त होकर वे अत्यधिक सुन्दर लगने लगे नया मेघ अकेले ही सुन्दर लगता है यदि उसमें इन्द्रधनुष लग जाय तो फिर क्या कहना ।

तेन भूमिनिहितैककोटि तत्कार्मुकं च बलिनाऽधिरोपितम् ।
निष्प्रभश्च रिपुरास भूभृतां धूमशेष इव धूमकेतनः ।। ८१ ।।

तावुभावपि परस्परस्थितौ वर्धमानपरिहीनतेजसौ ।
पश्यति स्म जनता दिनात्यये पार्वणौ शशिदिवाकराविव ।। ८२ ।।

तं कृपामृदुरवेक्ष्य भार्गवं राघवः स्खलितवीर्यमात्मनि ।
स्वं च संहितममोघमाशुगं व्याजहार हरसूनुसन्निभः ।। ८३ ।।

न प्रहर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्यभिभवत्यपि त्वयि ।
शंस किं गतिमनेन पत्रिणा हन्मि लोकमुत ते मखार्जितम् ।। ८४ ।।

प्रत्युवाच तमृषिर्न तत्त्वतस्त्वां न वेद्मि पुरुषं पुरातनम् ।
गां गतस्य तव धाम वैष्णवं कोपितो ह्यसि मया दिदृक्षुणा ।।८५।।

भस्मसात्कृतवतः पितृद्विषः पात्रसाच्च वसुधां ससागराम् ।
आहितो जयविपर्ययोऽपि मे श्लाघ्य एव परमेष्ठिना त्वया ।। ८६ ।।

तद्गतिं मतिमतां वरेप्सितां पुण्यतीर्थगमनाय रक्ष मे ।
पीडयिष्यति न मां खिलीकृता स्वर्गपद्धतिरभोगलोलुपम् ।। ८७ ।।

प्रत्यपद्यत तथेति राघवः प्राङ्मुखश्च विससर्ज सायकम् ।
भार्गवस्य सुकृतोऽपि सोऽभवत्स्वर्गमार्गपरिघो दुरत्ययः ।। ८८ ।।

८१ एक सिरा भूमि पर रखकर बलवान राम ने उस धनुष की डोरी चढ़ा दी। राजाओं के शत्रु परशुराम इससे उसी प्रकार तेजहीन हो गये जैसे केवल धुआं शेष रह जाने पर अग्नि तेज रहित हो जाती है।

८२ आमने-सामने खड़े हुए उन दोनों को जिनमें एक का तेज बढ़ रहा था दूसरे का कम हो रहा था, जनता इस प्रकार देख रही थी मानों वे दिन बीतने पर सन्ध्या समय के चन्द्रमा और सूर्य हों।

८३ स्कन्द के समान कृपा से कोमल हृदय वाले राम अपने प्रति कुंठित पराक्रम वाले परशुराम को और अपने धनुष पर चढ़े हुए अमोघ बाण को देखकर बोले।

८४ आपके पराजित होने पर भी ब्राह्मण होने के कारण मैं आप पर प्रहार नहीं कर सकता। कहिये इस बाण से आपकी गति को रोक दूं अथवा यज्ञों से अर्जित आपके स्वर्ग का विनाश करूं?

८५ ऋषि ने उत्तर दिया, आप पुरुष पुरातन हैं, मैं आपको वस्तुतः नहीं जानता यह बात नहीं है। मैं यह देखना चाहता था कि पृथ्वी पर अवतार लेने पर आपमें कितना तेज है। इसलिये मैंने आपको कुपित किया।

८६ अपने पिता के शत्रुओं को भस्मसात् करने वाले और समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को दान करने वाले मुझ परशुराम के लिये आप जैसे परम पुरुष के हाथों मिली पराजय भी प्रशंसनीय है।

८७ इसलिये हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राम, पवित्र तीर्थों में जाने के लिये मेरी अभिलाषित गति की रक्षा कीजिये। मुझे भोग की इच्छा नहीं है इसलिये स्वर्ग का मार्ग यदि सीमित हो जाय, तो मुझे दुखः नहीं होगा।

८८ रामचन्द्र ने ऐसा ही होगा, यह स्वीकार कर लिया और पूर्व की ओर मुंह करके अपना बाण छोड़ा। शुभ कार्य करने वाला होते हुए भी वह बाण परशुराम के लिये स्वर्ग के मार्ग को रोकने वाली अत्यन्त कठिन बाधा बन गया।

राघवोऽपि चरणौ तपोनिधेः क्षम्यतामिति वदन्समस्पृशत् ।
निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये ।। ८९ ।।

राजसत्वमवधूय मातृकं पित्र्यमस्मि गमितः शमं यदा ।
नन्वनिन्दितफलो मम त्वया निग्रहोऽप्ययमनुग्रहीकृतः ।। ९० ।।

साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते देवकार्यमुपपादयिष्यतः ।
ऊचिवानिति वचः सलक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजमृषिस्तिरोदधे ।। ९१ ।।

तस्मिन् गते विजयिनं परिरभ्य रामं
स्नेहादमन्यत पिता पुनरेव जातम् ।
तस्याभवत्क्षणशुचः परितोषलाभः
कक्षाग्निलङ्घिततरोरिव वृष्टिपातः ।। ९२ ।।

अथ पथि गमयित्वा क्लृप्तरम्योपकार्ये
कतिचिदवनिपालः शर्वरीः शर्वकल्पः ।
पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शनीनां
कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम् ।। ९३ ।।

———

८९. रामचन्द्र ने तपोनिधि परशुराम से क्षमा कीजिये कहते हुए उनके चरण छुए। बलवान् लोगों के लिये बल से जीते गये शत्रु के प्रति विनय का व्यवहार कीर्ति को बढ़ाने वाला होता है।

९. माता से प्राप्त रजोगुण को दूर करके पिता से प्राप्त शान्ति का भाव प्राप्त कराके आपके द्वारा दिया गया यह दण्ड भी प्रशंसनीय है जिसका परिणाम मेरे लिये कृपा बन गया है।

९१. लक्ष्मण सहित रामचन्द्र से यह कहकर कि मैं जा रहा हूं, देवताओं का कार्य करते हुए आपको कोई विघ्न न हो ऋषि परशुराम आंखों से ओझल हो गये।

९२. परशुराम के जाने पर पिता ने स्नेह से भरकर राम को हृदय से लगा लिया और उन्हें ऐसा लगा मानों उनका फिर से जन्म हुआ हो। क्षण भर के लये शोकाकुल राजा दशरथ को उसी प्रकार सन्तोष प्राप्त हुआ जैसे दावानल के लपेट में आये हुए वृक्ष को वर्षा होने से होता है।

९३. इसके अनन्तर शिव के समान राजा दशरथ ने रास्ते में सुव्यवस्थित सुन्दर राजसी तम्बुओं में कुछ रातें बिताकर अयोध्या नगरी में प्रवेश किया जिसके झरोखे मानों मिथिला की राजकुमारी सीता को देखने वाली स्त्रियों के नेत्र कमलों से सजे हुए जान पड़ते थे।

द्वादशः सर्गः

निर्विष्टविषयस्नेहः स दशान्तमुपेयिवान् ।
आसीदासन्ननिर्वाणः प्रदीपार्चिरिवोषसि ।। १ ।।

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति ।
कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा ।। २ ।।

सा पौरान्पौरकान्तस्य रामस्याभ्युदय श्रुतिः ।
प्रत्येकं ह्लादयाञ्चक्रे कुल्येवोद्यानपादपान् ।। ३ ।।

तस्याभिषेकसम्भारं कल्पितं क्रूरनिश्चया ।
दूषयामास कैकेयी शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः ।। ४ ।।

सा किलाश्वासिता चण्डी भर्त्रा तत्संश्रुतौ वरौ ।
उद्ववामेन्द्रसिक्ता भूर्बिलमग्नाविवोरगौ ।। ५ ।।

तयोश्चतुर्दशैकेन रामं प्राव्राजयत्समाः ।
द्वितीयेन सुतस्यैच्छद्वैधव्यैकफलां श्रियम् ।। ६ ।।

पित्रा दत्तां रुदन् रामः प्राङ्महीं प्रत्यपद्यत ।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ।। ७ ।।

दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले ।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः ।। ८ ।।

बारहवाँ सर्ग

१. विषय रूपी स्नह का भोग करके जीवन की अन्तिम अवस्था को प्राप्त राजा दशरथ की स्थिति उषाकाल के दीपक की उस लौ के समान थी जिसका निर्वाण समीप हो।

२, बुढ़ापे ने मानो ककेयी के सम्बन्ध में सन्देह करके सफेद बालों के बहाने कान के पास आकर उनसे कहा कि राम को राज्यलक्ष्मी सौंप दो।

३. नगर निवासियों के प्रिय रामचन्द्र के अभिषेक की बात ने प्रत्येक नागरिक को उसी प्रकार हर्षित किया जैसे छोटी सी नहर बगीचे के वृक्षों को हर्षित करती है।

४. कठोर निश्चय वाली कैकेयी ने रामचन्द्र के राजतिलक की सामग्री को दुःख स गरम हुए राजसी आंसुओं से दूषित कर दिया।

५. स्वामी के द्वारा अनुनय-विनय करने पर अत्यन्त क्रोध से भरी हुई कैकेयी ने उनके द्वारा प्रतिज्ञा के रूप में दिये गये दो वरों को इस प्रकार निकाल कर रखा मानो वर्षा से सिंची भूमि ने बिल में छिपे हुए दो सांपों को निकालकर सामने रख दिया हो।

६. उनमें से एक से उसने चौदह वर्ष के लिये रामचन्द्र को निर्वासित कर दिया और दूसरे से अपने पुत्र के लिये उस राज्यलक्ष्मी की मांग की जिसका एकमात्र परिणाम उसका वैधव्य हुआ।

७. पिता द्वारा दी गई पृथ्वी को पहले तो राम ने रोते हुए स्वीकार किया था और बाद में उन्होंन ही उनकी वन जाने की आज्ञा को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

८. शुभ रेशमी वस्त्र और वल्कल दोनों को ही धारण करने पर उनके मुख के रंग को लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा।

स सीतालक्ष्मणसखः सत्याद् गुरुमलोपयन् ।
विवेश दण्डकारण्यं प्रत्येकं च सतां मनः ।। ९ ।।

राजाऽपि तद्वियोगार्तः स्मृत्वा शापं स्वकर्मजम् ।
शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभममन्यत ।। १० ।।

विप्रोषितकुमारं तद्राज्यमस्तमितेश्वरम् ।
रन्ध्रान्वेषण दक्षाणां द्विषामामिषतां ययौ ।। ११ ।।

अथानाथः प्रकृतयो मातृबन्धुनिवासिनम् ।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः ।। १२ ।।

श्रुत्वा तथाविधं मृत्युं कैकेयीतनयः पितुः ।
मातुर्न केवलं स्वस्याः श्रियोऽप्यासीतपराङ्मुखः ।। १३ ।।

ससैन्यश्चान्वगाद्रामं दर्शितानाश्रमालयैः ।
तस्य पश्यन्ससौमित्रेरुदश्रुर्वसतिद्रुमान् ।। १४ ।।

चित्रकूटवनस्थं च कथितस्वर्गतिर्गुरोः ।
लक्ष्म्या निमन्त्रयाञ्चक्रे तमनुच्छिष्टसम्पदा ।। १५ ।।

स हि प्रथमजे तस्मिन्नकृतश्रीपरिग्रहे ।
परिवेत्तारमात्मानं मेने स्वीकरणाद्भुवः ।। १६ ।।

९. रामचन्द्र ने अपने पिता को सत्य से नहीं हटाया और सीता तथा लक्ष्मण को साथ ले दण्डकारण्य में प्रवेश करने के साथ-साथ प्रत्येक सज्जन के मन में भी प्रवेश कर लिया।

१०. उनके वियोग से दुःखी राजा ने भी अपने ही कर्म के फल के रूप में मिले हुए शाप का स्मरण करके यह समझा कि शरीर का त्याग करने से ही प्रायश्चित्त होगा।

११. वह राज्य, जिसके राजकुमार प्रवास में थे और जिसके स्वामी का निधन हो गया था, छिद्र ढूंढ़ने में चतुर शत्रुओं के लिये भोग्य वस्तु बन गया।

१२. स्वामीविहीन अमात्य वर्ग ने मामा के घर में निवास करनेवाले भरत को अपने आंसू रोके हुए सचिवों द्वारा बुलवाया।

१३. कैकेयी के पुत्र भरत पिता की उस प्रकार की मृत्यु सुनकर केवल माता से ही नहीं अपितु राज्यलक्ष्मी से भी विमुख हो गये।

१४. तपस्वियों द्वारा दिखाये गये उन वृक्षों को जिनके नीचे रामचन्द्र ने सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण के साथ निवास किया था आंसू भरी आंखों से देखते हुए भरत अपनी सेना के साथ उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

१५. चित्रकूट वन में निवास करनेवाले राम से पिता के स्वर्ग जाने की बात कहकर भरत ने राम को उस राज्यलक्ष्मी को स्वीकार करने के लिये आमन्त्रित किया जिसकी विशेषताएं उनके लिये अछूती थीं।

१६. भरत ने बड़े भाई राम द्वारा राज्यलक्ष्मी के स्वीकार न करने पर पृथ्वी को स्वयं स्वीकार करके अपने को परिवेत्ता अर्थात् बड़े भाई से पहले विवाह करनेवाला समझा।

तमशक्यमपाक्रष्टुं निदेशात्स्वर्गिण : पितुः ।
ययाचे पादुके पश्चात्कर्तुं राज्याधिदेवते ।। १७ ।।

स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा भ्रात्रा नैवाविशत्पुरीम् ।
नन्दिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक् ।। १८ ।।

दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुखः ।
मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत् ।। १९ ।।

रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्तयन् ।
चचार सानुजः शान्तो वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं युवा ।। २० ।।

प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः स वनस्पतिम् ।
कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किञ्चिदिव श्रमात् ।। २१ ।।

ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः ।
प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन् ।। २२ ।।

तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं रामो रामावबोधितः ।
आत्मानं मुमुचे तस्मादेकनेत्रव्ययेन सः ।। २३ ।।

रामस्त्वासन्नदेशत्वाद् भरतागमनं पुनः ।
आशंक्योत्सुकसारङ्गां चित्रकूटस्थलीं जहौ ।। २४ ।।

१७. स्वर्गवासी पिता की आज्ञा से राम को विचलित करना सम्भव न देख भरत ने बाद में राज्य का अधिष्ठाता देवता बनाने के लिये उनसे उनकी खड़ाऊं की जोड़ी मांगी।

१८. भाई के द्वारा ऐसा ही हो कहकर विदा किये जाने पर भरत ने नगर में प्रवेश नहीं किया अपितु नन्दिग्राम में जाकर थाती के रूप में उनके राज्य का पालन किया।

१९. राज्य की चाह से विमुख होकर इस प्रकार बड़े भाई में अपनी भक्ति रखते हुए भरत ने मानों अपनी माता के पाप का प्रायश्चित्त किया।

२०. वनवासी राम ने भी सीता सहित वन में उत्पन्न होनेवाले कन्द, मूल, फल आदि से निर्वाह करते हुए शान्त चित्त हो लक्ष्मण के साथ बूढ़े इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के व्रत का युवावस्था में ही पालन किया।

२१. एक बार वे मानो कुछ थके से होने के कारण सीता की गोद में उस वृक्ष के नीचे सो गये जिसकी छाया को उन्होंने अपने प्रभाव से स्थिर कर दिया था।

२२. इन्द्र के पुत्र जयन्त ने पक्षी रूप में सीता के स्तनों को अपने पंजों से चीर दिया मानो राम के नखक्षत रूपी उपभोग चिह्नों में उसने दोष दिखलाने का काम किया हो।

२३. पत्नी के द्वारा जगाये जाने पर राम ने उस पर सींक का बाण छोड़ा और अपनी एक आंख खोकर उसने अपने प्राण बचाये।

२४. राम ने उस स्थान के समीप होने के कारण इस आशंका से कि कहीं भरत फिर न आएं चंचल हरिणों से युक्त चित्रकूट की वह स्थली छोड़ दी।

प्रथयावातिथेयेषु वसन्नृषिकुलेषु सः ।
दक्षिणां दिशमृक्षेषु वार्षिकेष्विव भास्करः ।। २५ ।।

बभौ तमनुगच्छन्ती विदेहाधिपतेः सुता ।
प्रतिषिद्धापि कैकेय्या लक्ष्मीरिव गुणोन्मुखी ।। २६ ।।

अनुसूयातिसृष्टेन पुण्यगन्धेन काननम् ।
सा चकाराङ्गरागेण पुष्पोच्चलितषट्पदम् ।। २७ ।।

संध्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षसः ।
अतिष्ठन्मार्गमावृत्य रामस्येन्दोरिव ग्रहः ।। २८ ।।

स जहार तयोर्मध्ये मैथिलीं लोकशोषणः ।
नभोनभस्ययोर्वृष्टिमवग्रह इवान्तरे ।। २९ ।।

तं विनिष्पिष्य काकुत्स्थौ पुरा दूषयति स्थलीम् ।
गन्धेनाशुचिना चेति वसुधायां निचख्नतुः ।। ३० ।।

पञ्चवट्यां ततो रामः शासनात्कुम्भजन्मनः ।
अनपोढस्थितिस्तस्थौ विन्ध्याद्रिः प्रकृताविव ।। ३१ ।।

रावणावरजा तत्र राघवं मदनातुरा ।
अभिपेदे निदाघार्ता व्यालीव मलयद्रुमम् ।। ३२ ।।

२५. उन्होंने अतिथिसत्कार करनेवाले ऋषियों के आश्रमों में ठहरते हुए दक्षिण दिशा में प्रयाण किया जैसे वर्षाकालीन नक्षत्रों में होता हुआ सूर्य दक्षिण दिशा में जाता है।

२६. विदेहराज जनक की कन्या सीता उनके पीछे-पीछे चलती हुई ऐसी शोभित हुई मानो कैकेयी द्वारा रोके जाने पर भी राज्यलक्ष्मी उनके गुणों की अनुसरण करती जा रही हो।

२७. अनसूया द्वारा दिये गये सीता के पवित्र सुगन्ध से भरे अंगराग से उस वन में फूलों पर बैठे भौंरों में हलचल मच गई।

२८. सायंकालीन बादल के समान पीले रंग का विराध नामक राक्षस राम का मार्ग रोककर खड़ा हो गया, मानो राहु ग्रह ने चन्द्रमा को रोक लिया हो।

२९. लोगों को चूसनेवाले उस राक्षस ने उन दोनों के बीच स्थित सीता जी को उठा लिया, मानो सावन और भादों के बीच की वर्षा को अनावृष्टि ने रोक लिया हो।

३०. काकुत्स्थ राम और लक्ष्मण ने उस विराध को मारकर, इस उद्देश्य से कि कहीं वह अपने अपवित्र गन्ध से उस स्थान को दूषित न करे, भूमि खोदकर उसमें दबा दिया।

३१. इसके अनन्तर राम ने मर्यादापूर्वक पंचवटी में निवास किया जैसे ऋषि अगस्त्य के आदेश से विन्ध्याचल अपनी मर्यादित अवस्था में रहा।

३२. वहां रावण की छोटी बहन शूर्पणखा काम से विह्वल हो रामचन्द्र के पास उसी प्रकार आई, जैसे धूप से पीड़ित सर्पिणी चन्दन के वृक्ष के पास जाती है।

सा सीतासन्निधावेव तं वव्रे कथितान्वया ।
अत्यारूढो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः ।।३३ ।।

कलत्रवानहं बाले ! कनीयांसं भजस्व मे ।
इति रामो वृषस्यन्तीं वृषस्कन्धः शशास ताम् ।। ३४ ।।

ज्येष्ठाभिगमनात्पूर्वं तेनाप्यनभिनन्दिताम् ।
साऽभूद्रामाश्रया भूयो नदीवोभयकूलभाक् ।। ३५ ।।

संरम्भं मैथिलीहासः क्षणसौम्यां निनाय ताम् ।
निवातास्तमितां वेलां चन्द्रोदय इवोदधेः ।।३६।।

फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम् ।
मृग्याः परिभवो व्याघ्यामित्यवेहि त्वया कृतम् ।।३७।।

इत्युक्त्वा मैथिलीं भर्तुरङ्के निविशतीं भयात् ।
रूपं शूर्पणखा नाम्नः सदृशं प्रत्यपद्यत ।। ३८ ।।

लक्ष्मणः प्रथमं श्रुत्वा कोकिलामञ्जुवादिनीम् ।
शिवाघोरस्वनां पश्चाद् बुबुधे विकृतेति ताम् ।। ३९ ।।

पर्णशालामथ क्षिप्रं विकृष्टासिः प्रविश्य सः ।
वैरूप्यपौनरुक्त्येन भीषणां तामयोजयत् ।। ४० ।।

३३. उसने सीता के सामने ही अपने वंश का परिचय देकर कहा कि मैं आपको पति के रूप में वरण करती हूं। जब काम स्त्रियों पर भयंकर रूप से सवार हो जाता है तो वह समय को नहीं पहचानता।

३४. बैल के समान कन्धे वाले राम ने उस काम से पीड़ित शूर्पणखा को आदेश दिया, "हे बाले, मेरी तो पत्नी है; तुम मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के पास जाओ।"

३५. बड़े भाई के पास पहले जाने के कारण लक्ष्मण द्वारा भी स्वीकार न किये जाने पर वह फिर राम के पास गई। इस प्रकार उसकी स्थिति उस नदी के समान हो गई जो कभी इस किनारे तो कभी उस किनारे की ओर झुकती है।

३६. सीता की हंसी ने क्षण भर के लिये सुन्दर रूप धारण करने वाली उस शूर्पणखा को वैसे ही क्षुब्ध कर दिया जैसे वायु के शान्त रहने से निश्चल समुद्रतट को चन्द्रोदय क्षुब्ध कर देता है।

३७. तुम मेरी ओर देखो, इस उपहास का फल तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा, तुम यह समझ लो कि तुम्हारे द्वारा किया गया यह अपमान हिरनी द्वारा किया गया बाघिन का अपमान है।

३८. भय के मारे स्वामी की गोद में छिपती हुई सीता से यह कहकर शूर्पणखा ने अपने नाम के अनुसार ही अपना रूप धारण कर लिया।

३९. लक्ष्मण ने पहले कोयल के समान मधुर स्वर में बोलने वाली शूर्पणखा को जब बाद में स्यारनी के समान भयंकर वाणी में बोलते हुए सुना तो समझ लिया कि यह मायाविनी है।

४०. पर्णकुटी में जाकर लक्ष्मण ने तलवार निकाली और शीघ्र ही उसकी कुरूपता को दुगना करके उसे और भी भयंकर बना दिया।

सा वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया ।
अङ्कुशाकारयाऽङ्गुल्या तावतर्जयदम्बरे ।। ४१ ।।

प्राप्य चाशु जनस्थानं खरादिभ्यस्तथाविधम् ।
रामोपक्रममाचख्यौ रक्षःपरिभवं नवम् ।। ४२ ।।

मुखावयवलूनां तां नैर्ऋता यत्पुरो दधुः ।
रामाभियायिनां तेषां तदेवाभूदमङ्गलम् ।। ४३ ।।

उदायुधानापततस्तान्दृप्तान्प्रेक्ष्य राघवः ।
निदधे विजयाशंसां चापे सीतां च लक्ष्मणे ।। ४४ ।।

एको दाशरथिः कामं यातुधानाः सहस्रशः ।
ते तु यावन्त एवाजौ तावांश्च ददृशे स तैः ।। ४५ ।।

असज्जनेन काकुत्स्थः प्रयुक्तमथ दूषणम् ।
न चक्षमे शुभाचारः स दूषणमिवात्मनः ।। ४६ ।।

तं शरैः प्रतिजग्राह खरत्रिशिरसौ च सः ।
क्रमशस्ते पुनस्तस्य चापात्सममिवोद्ययुः ।। ।। ४७ ।।

तैस्त्रयाणां शितैर्बाणैर्यथापूर्वविशुद्धिभिः ।
आयुर्देहातिगैः पीतं रुधिरं तु पतत्त्रिभिः ।। ४८ ।।

४१. टेढ़े नख वाली, बांस के समान कठोर पोरों वाली और अंकुश के आकार की उंगलियों वाली उस शूर्पणखा ने आकाश में जाकर उन दोनों को भला-बुरा कहा।

४२. शीघ्र ही जनस्थान नामक नगर में पहुंचकर उसने खर आदि राक्षसों से राम की इस चेष्टा की बात कही जो राक्षसों के लिये नये अपमान की बात थी।

४३. नाक, कान आदि मुख के कटे हुए अंगोंवाली शूर्पणखा को सामने रखना ही राम पर आक्रमण करने के लिये जाने वाले उन राक्षसों के लिये अमंगल बन गया।

४४. उन्हें हथियार उठाये हुए और क्रोध में भरकर आते देख राम ने विजय की आशा अपने धनुष पर केंद्रित कर दी और सीता का भार लक्ष्मण को सौंप दिया।

४५. दशरथ के पुत्र राम अकेले थे और राक्षस हजारों की संख्या में, पर युद्ध में उन्होंने राम को अपनी संख्या के समान ही देखा।

४६. सदाचारी काकुत्स्थ राम ने दुष्टों द्वारा की गई अपनी बुराई के समान ही राक्षसों द्वारा भेजे गये दूषण राक्षस को सहन नहीं किया।

४७. राम ने उसे खर तथा त्रिशिरा को अपने बाणों से मारडाला, यद्यपि वे बाण एक-एक करके चलाये गये, पर जान ऐसा पड़ा मानों वे एक-साथ ही धनुष से छूटे हों।

४८. उनकी देह को भेद करके पार जाने वाले, तीक्ष्ण और पहले के समान ही शुद्ध उन बाणों ने उनकी आयु का ही पान किया, उनका रक्त तो पक्षियों ने पिया।

तस्मिन्रामशरोत्कृत्ते बले महति रक्षसाम् ।
उत्थितं ददृशेऽन्यच्च कबन्धेभ्यो न किञ्चन ।।४६।।

सा बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा सुरद्विषाम् ।
अप्रबोधाय सुष्वाप गृध्रच्छाये वरूथिनी ।।५०।।

राघवास्त्रविदीर्णानां रावणं प्रति रक्षसाम् ।
तेषां शूर्पणखैवैका दुष्प्रवृत्तिहराऽभवत् ।।५१।।

निग्रहात्स्वसुराप्तानां वधाच्च धनदानुजः ।
रामेण निहितं मेने पदं दशसु मूर्धसु ।।५२।।

रक्षसा मृगरूपेण वञ्चयित्वा स राघवौ ।
जहार सीतां पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितः ।।५३।।

तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं लूनपक्षमपश्यताम् ।
प्राणैर्दशरथप्रीतेरनृणं कण्ठवर्तिभिः ।।५४।।

स रावणहृतां ताभ्यां वचसाऽऽचष्ट मैथिलीम् ।
आत्मनः सुमहत्कर्म व्रणैरावेद्य संस्थितः ।।५५।।

तयोस्तस्मिन्नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः ।
पितरीवाग्निसंस्कारात्परा ववृतिरे क्रियाः ।।५६।।

४९. राम के बाणों से राक्षसों की महान् सेना के कट जाने पर किसी ने धड़ को छोड़ ऊपर उठा हुआ और कुछ नहीं देखा।

५०. देवताओं के शत्रु राक्षसों की वह सेना बाण की वर्षा करने वाले राम से युद्ध करके गिद्धों की छाया में सदा के लिये सो गई।

५१. रघुवंशी रामचन्द्र के अस्त्रों से खंड-खंड किये गये उन राक्षसों के इस अशुभ समाचार को रावण तक पहुंचाने वाली एकमात्र शूर्पणखा ही रह गई थी।

५२. बहन को दण्ड देने और बन्धुओं के वध को कुबेर के छोटे भाई रावण ने यह समझा कि उसके दशों सिरों पर राम ने पैर रख दिया है।

५३. रावण ने मृगरूपधारी राक्षस मारीच के द्वारा राम और लक्ष्मण को धोखा देकर सीता का हरण कर लिया। पक्षियों के राजा जटायु ने थोड़ी देर प्रयत्न करके उसमें अवश्य बाधा डाली।

५४. सीता को खोजने वाले दोनों रघुवंशी राम और लक्ष्मण ने उस गिद्ध को देखा जिसके पंख कट गये थे और अपने कण्ठ तक आये हुए प्राणों से उसने दशरथ की मित्रता का ऋण चुका दिया था।

५५. उसने उन दोनों से यह तो बोलकर बताया कि रावण ने सीता का हरण किया है पर अपने महान् कर्म को अपने घावों से ही निवेदन करके वह चुप हो गया।

५६. उन दोनों ने जिनका पिता के मरने का दुःख इस तरह नया हो गया था अपने पिता के समान ही अग्नि संस्कार से लेकर बाद की उसकी समस्त क्रियायें सम्पन्न कीं।

वधनिर्धूतशापस्य कबन्धस्योपदेशतः ।
मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य समानव्यसने हरौ ।।५७।।

स हत्वा वालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाङ्क्षिते ।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत् ।।५८।।

इतस्ततश्च वैदेहीमन्वेष्टुं भर्तृचोदिताः ।
कपयश्चेरुरार्तस्य रामस्येव मनोरथाः ।।५९।।

प्रवृत्तावुपलब्धायां तस्याः सम्पातिदर्शनात् ।
मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः ।।६०।।

दृष्टाविचिन्वता तेन लङ्कायांराक्षसीवृता ।
जानकी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः ।।६१।।

तस्यै भर्तुरभिज्ञानमङ्गुलीयं ददौ कपिः ।
प्रत्युद्गतमिवानुष्णैस्तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः ।।६२।।

निर्वाप्य प्रियसन्देशैः सीतामक्षवधोद्धतः ।
स ददाह पुरीं लङ्कां क्षणसोढारिनिग्रहः ।।६३।।

प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत्कृती ।
हृदयं स्वयमायातं वैदेह्या इव मूर्तिमत् ।।६४।।

५७. राम द्वारा मारे जाने पर शाप से मुक्त कबन्ध के उपदेश से अपने समान ही विपत्ति में पड़े हुए वानर सुग्रीव के प्रति राम का प्रेम बढ़ गया।

५८. उन वीर राम ने बालि को मारकर उसके चिरअभिलषित स्थान में सुग्रीव को इस प्रकार स्थापित किया मानों एक शब्द के स्थान में दूसरे पर्यायवाची शब्द को रखा गया हो।

५९. अपने स्वामी की प्रेरणा से सीता को ढूंढ़ने के लिये वे वानर दुःखी राम के मनोरथ के समान इधर-उधर विचरण करने लगे।

६०. संपाति के मिलने पर सीता का हाल मालूम करके वायुपुत्र हनुमान ने समुद्र को उसी प्रकार पार कर लिया जैसे निस्पृह व्यक्ति संसार को पार कर लेता है।

६१. सीता को ढूंढ़ने वाले हनुमान ने राक्षसियों से घिरी हुई जानकी को देखा मानों वह विष की बेलों से घिरी हुई संजीवनी की लता हो।

६२. वानर हनुमान ने स्वामी के चिन्ह रूप में उन्हें अंगूठी दी जो मानों उनके आनन्द के कारण निकले हुए शीतल आंसुओं के समान थी।

६३. हनुमान ने प्रिय राम के संदेश से सीता को आनन्दित किया और रावण के पुत्र अक्षयकुमार को मारकर आवेश में भर गये। इसके बाद उन्होंने कुछ देर शत्रु के बन्धन में रहने के बाद लंका नगरी को जला डाला।

६४. कृतकृत्य हो हनुमान ने सीता के बदले में दिये गये पहचान के रत्न को राम को दिखाया जो मानों उनका स्वयं ही आया हुआ मूर्तिमान हृदय था

स प्राप हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः ।
अपयोधरसंसर्गां प्रियालिङ्गननिर्वृतिम् ॥६५॥

श्रुत्वा रामः प्रियोदन्तं मेने तत्सङ्गमोत्सुकः ।
महार्णवपरिक्षेपं लङ्कायाः परिखालघुम् ॥६६॥

स प्रतस्थेऽरिनाशाय हरिसैन्यैरनुद्रुतः ।
न केवलं भुवः पृष्ठे व्योम्नि सम्बाधवर्तिभिः ॥६७॥

निविष्टमुदधेः कूले तं प्रपेदे विभीषणः ।
स्नेहाद्राक्षसलक्ष्म्येव बुद्धिमाविश्य चोदितः ॥६८॥

तस्मै निशाचरैश्वर्यं प्रतिशुश्राव राघवः ।
काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः ॥६९॥

स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि ।
रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिणः ॥७०॥

तेनोत्तीर्य पथा लङ्कां रोधयामास पिङ्गलैः ।
द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः ॥७१॥

रणः प्रववृते तत्र भीमः प्लवगरक्षसाम् ।
दिग्विजृम्भितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः ॥७२॥

६५. अपने हृदय पर उस मणि को रखकर राम उसके स्पर्श से मोहित हो गये और उसमें उन्हें केवल स्तनस्पर्श को छोड़ अपनी प्रिया को हृदय से लगाने का सुख मिला।

६६. अपनी प्रिया सीता का हाल सुनकर उनसे मिलने के लिये उत्सुक राम ने लंका के महान् समुद्र के घेरे को साधारण खाई जैसा अनुभव किया।

६७. वे शत्रु के नाश के लिये चल पड़े और न केवल पृथ्वी पर, अपितु आकाश में भी कठिनाई से समाने वाली वानरों की सेना उनके पीछे चली।

६८. जब वे समुद्र तट पर पड़ाव डाले हुए थे, विभीषण उनके पास इस प्रकार आये, मानों साक्षात् राक्षसों की राज्यलक्ष्मी ने उनकी बुद्धि में प्रवेश करके उन्हें प्रेरित किया हो।

६९. रघुवंशी राम ने उन्हें राक्षसों का ऐश्वर्य देने का वचन दिया। समय पर आरम्भ की गई नीतियों का सुफल मिलता ही है।

७०. राम ने वानरों द्वारा खारे समुद्र पर पुल बंधवाया जो विष्णु के सोने के लिये पाताल से निकल कर आये हुए शेषनाग के समान जान पड़ता था।

७१. उस मार्ग से उतरकर उन्होंने पीले रंग के वानरों से लंका को घेर लिया जिनसे मानों उसके चारों ओर सोने की दूसरी दीवार बन गई।

७२. वहां वानरों और राक्षसों का भयंकर युद्ध हुआ जिन्होंने काकुत्स्थ राम और पुलस्त्य की सन्तान रावण के जयघोष से दिशाओं को भर दिया।

पादपाविद्धपरिघः शिशानिष्पिष्टमुद्गरः ।
अतिशस्त्रनखन्यासः शैलरुग्णमतङ्गजः ।।७३।।

अथ रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम् ।
सीतां मायेति शंसन्ती त्रिजटा समजीवयत् ।।७४।।

कामं जीवति मे नाथ इति सा विजहौ शुचम् ।
प्राङ्मत्वा सत्यमस्यान्तं जीविताऽस्मीति लज्जिता ।।७५।।

गरुडापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः ।
दाशरथ्योः क्षणक्लेशः स्वप्नवृत्त इवाभवत् ।।७६।।

ततो बिभेद पौलस्त्यः शक्त्या वक्षसि लक्ष्मणम् ।
रामस्त्वनाहतोऽप्यासीद्विदीर्णहृदयः शुचा ।।७७।।

स मारुतिसमानीतमहौषधिहतव्यथः ।
लङ्कास्त्रीणां पुनश्चक्रे विलापाचार्यकं शरैः ।।७८।।

स नादं मेघनादस्य धनुश्चेन्द्रायुधप्रभम् ।
मेघस्येव शरत्कालो न किंचित्पर्यशेषयत् ।।७९।।

कुम्भकर्णः कपीन्द्रेण तुल्यावस्थः स्वसुः कृतः ।
रुरोध रामं शृङ्गीव टङ्कच्छिन्नमनः लिशः ।।८०।।

७३. वह युद्ध ऐसा था जिसमें वृक्षों से परिघ नामक शस्त्र और पत्थरों से मुग्दर तोड़ डाले गये, नखों ने हथियारों को बेकार कर दिया और पर्वतों ने हाथियों को नष्ट कर दिया।

७४. राम का कटा हुआ सिर देखने के कारण मूच्छित सीता को त्रिजटा ने 'यह माया है' कहकर जीवन धारण कराया।

७५. सीता पहले यह समझकर कि सचमुच उनका अन्त हो गया और मैं जीवित हूं लज्जित थीं। जब उन्हें विदित हुआ कि उनके स्वामी जीवित हैं तो उन्होंने अपना शोक दूर कर दिया।

७६. दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण का वह क्षणिक क्लेश जिसमें मेघनाद के नागपाश अस्त्र के बन्धन को गरुड़ ने आकर काट दिया था सपने की बात होकर रह गई।

७७. फिर रावण ने शक्ति नामक अस्त्र से लक्ष्मण की छाती विदीर्ण कर दी। इससे चोट न लगने पर भी राम का हृदय शोक से विदीर्ण हो गया।

७८. हनुमान द्वारा लाई गई संजीवनी बूटी से व्यथा दूर होने पर लक्ष्मण ने अपने बाणों से फिर से लंका की स्त्रियों के विलाप में आचार्य का काम किया।

७९. लक्ष्मण ने मेघनाद की गर्जना और इन्द्रधनुष की शोभावाले धनुष इन दोनों में किसी एक को भी शेष नहीं रहने दिया, जैसे शरत् का समय मेघ का कुछ भी शेष नहीं रहने देता।

८०. हनुमान ने कुम्भकर्ण को उसकी बहन के समान स्थिति में पहुंचा दिया। छेनी से कटे हुए मन:शिला नामक लाल रंग की धातु के पर्वत के समान वह राम के सामने अड़ गया।

अकाले बोधितो भ्रात्रा प्रियस्वप्नो वृथा भवान् ।
रामेषुभिरितीवासौ दीर्घनिद्रां प्रवेशितः ।।८१ ।।

इतराण्यपि रक्षांसि पेतुर्वानरकोटिषु ।
रजांसि समरोत्थानि तच्छोणितनदीष्विव ।।८२।।

निर्ययावथ पौलस्त्यः पुनर्युद्धाय मन्दिरात् ।
अरावणमरामं वा जगदद्येति निश्चितः ।।८३।।

रामं पदातिमालोक्य लङ्केशं च वरूथिनम् ।
हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरन्दरः ।।८४।।

तमाधूतध्वजपटं व्योमगङ्गोर्मिवायुभिः ।
देवसूतभुजालम्बी जैत्रमध्यास्त राघवः ।।८५।।

मातलिस्तस्य माहेन्द्रमामुमोच तनुच्छदम् ।
यत्रोत्पलदलक्लैब्यमस्त्राण्यापुः सुरद्विषाम् ।।८६।।

अन्योन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरं चिरात् ।
रामरावणयोर्युद्धं चरितार्थमिवाभवत् ।।८७।।

भुजमूर्धोरुबाहुल्यादेकोऽपि धनदानुजः ।
ददृशे ह्ययथापूर्वो मातृवंश इव स्थितः ।।८८।।

८१. आप नींद के प्रेमी हैं, भाई ने आपको असमय में व्यर्थ ही जगा दिया, मानों ऐसा कहते हुए राम के बाणों ने उसे लम्बी नींद में सुला दिया।

८२. दूसरे राक्षस भी करोड़ों वानरों में इस प्रकार निमग्न हो गये जैसे उनके रक्त की नदी में युद्ध में उठी हुई धूल।

८३. तब पुलस्त्य की सन्तान रावण फिर से युद्ध करने के लिये यह निश्चय करके अपने भवन से निकला कि आज इस संसार में या तो रावण न होगा या राम न होंगे।

८४. राम को पैदल और रावण को रथ सहित देखकर इन्द्र ने पीले रंग के घोड़ों से युक्त रथ राम के लिये भेजा।

८५. राम आकाशगंगा की लहरों को स्पर्श करके आनेवाली हवा से फहराती हुई पताका वाले उस विजयी रथ पर देवताओं के सारथी के हाथ का सहारा लेकर बैठे।

८६. मातलि ने राम को इन्द्र का कवच पहनाया। उस कवच पर राक्षसों के हथियार कमल की पंखुड़ियों के समान व्यर्थ हो गये।

८७. बहुत दिनों के बाद एक दूसरे के दर्शन से पराक्रम दिखाने का अवसर मिलने के कारण राम और रावण का यह युद्ध मानों चरितार्थ हो गया।

८८. कुबेर का छोटा भाई रावण भुजाओं, सिरों, जंघा आदि अंगों की बहुलता से अकेला होते हुए भी पहले से भिन्न दिखाई दे रहा था मानों वह अपनी माता के वंश में ही भरे-पूरे परिवार के साथ विद्यमान है।

जेतारं लोकपालानां स्वमुखैर्र्चितेश्वरम् ।
रामस्तुलितकैलासमरातिं बह्वमन्यत ॥८९॥

तस्य स्फुरति पौलस्त्यः सीतासङ्गमशंसिनि ।
निचखानाधिकक्रोधः शरं सव्येतरे भुजे ॥९०॥

रावणास्यापि रामास्तो भित्त्वा हृदयमाशुगः ।
विवेश भुवमाख्यातुमुरगेभ्य इव प्रियम् ॥९१॥

वचसैव तयोर्वाक्यमस्त्रमस्त्रेण निघ्नतोः ।
अन्योन्यजयसंरम्भो ववृधे वादिनोरिव ॥९२॥

विक्रमव्यतिहारेण सामान्याऽभूद्द्वयोरपि ।
जयश्रीरन्तरावेदिर्मत्तवारणयोरिव ॥९३॥

कृतप्रतिकृतप्रीतैस्तयोर्मुक्तां सुरासुरैः ।
परस्परशरव्राताः पुष्पवृष्टिं न सेहिरे ॥९४॥

अयःशङ्कुचितां रक्षः शतघ्नीमथ शत्रवे ।
हृतां वैवस्वतस्येव कूटशाल्मलिमक्षिपत् ॥९५॥

राघवो रथमप्राप्तां तामाशां च सुरद्विषाम् ।
अर्धचन्द्रमुखैर्बाणैश्चिच्छेद कदलीसुखम् ॥९६॥

८९. लोकपालों पर विजय प्राप्त करने वाले अपने मुखों से शंकर की पूजा करनेवाले और कैलास को उठाने वाले शत्रु को राम ने असाधारण माना।

९०. अधिक क्रोध में भरे रावण ने राम के फड़कते हुए, अतएव सीता से मिलने की आशा करने वाले दाहिने हाथ पर अपना बाण मारा।

९१. राम के द्वारा छोड़ा हुआ बाण रावण के हृदय को बेधकर पृथ्वी में इस प्रकार प्रवेश कर गया, मानों नागों से प्रिय सन्देश कहने गया हो।

९२. वाणी का वाणी से और अस्त्र का अस्त्र से प्रतिकार करते हुए उन दोनों का विवाद करने वालों के समान परस्पर जीत के लिये संघर्ष बढ़ता ही गया।

९३. बारी बारी से पराक्रम दिखाने के कारण विजयलक्ष्मी दोनों के लिये उसी प्रकार समान होकर रह गई, जैसे दो मतवाले हाथियों के बीच की दीवार।

९४. आक्रमण और प्रत्याक्रमण से प्रसन्न होकर देवताओं और राक्षसों द्वारा की गई फूलों की वर्षा को उनके एक दूसरे पर चलाये गये बाणों के समूहों ने सहन नहीं किया।

९५. फिर राक्षस रावण ने अपने शत्रु राम पर लोहे की कीलों से जड़ी विजय में प्राप्त शतघ्नी से उसी प्रकार प्रहार किया मानों स्वयं यमराज ने कूट-शाल्मलि नामक अस्त्र चलाया हो।

९६. राम ने रथ तक पहुंचने के पहले ही उस शतघ्नी को जो राक्षसों की आशा थी अपने अर्धचन्द्र के आकार के मुख वाले बाणों से ऐसे काट डाला मानों वह केले का तना हो।

अमोघं सन्दधे चास्मै धनुष्येकधनुर्धरः ।
ब्राह्ममस्त्रं प्रियाशोकशल्यनिष्कर्षणौषधम् ।।९७।।

तद्व्योम्नि शतधा भिन्नं ददृशे दीप्तिमन्मुखम् ।
वपुर्महोरगस्येव करालफणमण्डलम् ।।९८।।

तेन मन्त्रप्रयुक्तेन निमेषार्धादपातयत् ।
स रावणशिरः पंक्तिमज्ञातव्रणवेदनाम् ।।९९।।

बालार्कप्रतिमेवाप्सु वीचिभिन्ना पतिष्यतः ।
रराज रक्षःकायस्य कण्ठच्छेदपरम्परा ।।१००।।

मरुतां पश्यतां तस्य शिरांसि पतितान्यपि ।
मनो नातिविशश्वास पुनः सन्धानशङ्किनाम् ।।१०१।।

अथ मदगुरुपक्षैर्लोकपालद्विपाना-
मनुगतमलिवृन्दैर्गण्डभित्तीर्विहाय ।
उपनतमणिबन्धे मूर्ध्नि पौलस्त्यशत्रोः
सुरभि सुरविमुक्तं पुष्पवर्षं पपात ।।१०२।।

यन्ता हरेः सपदि संहृतकार्मुकज्य-
मापृच्छ्य राघवमनुष्ठितदेवकार्यम् ।
नामाङ्करावणशराङ्कितकेतुयष्टि-
मूर्ध्वं रथं हरिसहस्रयुजं निनाय ।।१०३।।

रघुपतिरपि जातवेदोविशुद्धां प्रगृह्य प्रियां
प्रियसुहृदि विभीषणे सङ्गमय्य श्रियं वैरिणः ।
रविसुतसहितेन तेनानुयातः ससौमित्रिणा
भुजविजितविमानरत्नाधिरूढः प्रतस्थे पुरीम् ।।१०४।।

---
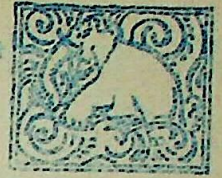
९७. अद्वितीय धनुषधारी राम ने अपनी प्रिया सीता के शोकरूपी कांटे को निकालने के लिये औषध-तुल्य अमोघ ब्रह्मास्त्र को धनुष पर चढ़ाया।

९८. आकाश में सैकड़ों टुकड़ों में फैलकर चमकते हुए अग्रभागवाला वह अस्त्र ऐसा दिखाई दिया मानों वह भयंकर फणों के समूह वाला शेषनाग का शरीर हो।

९९. राम ने मन्त्र से चलाये गये उस अस्त्र से आधे क्षण में ही रावण के सिरों की पंक्ति को, जिसे चोट की अनुभूति भी न हुई काटकर गिरा दिया।

१००. गिरते हुए राक्षस रावण के शरीर के कटे हुए कंठों की पंक्ति ऐसी शोभित हुई मानों वह पानी में लहरों से अलग किये गये बाल सूर्य के प्रतिबिम्ब हों।

१०१. उसके गिरे हुए सिरों को देखते हुए भी इस आशंका से कि कहीं वे फिर से जाकर न जुड़ जायें देवताओं के मन में अधिक विश्वास नहीं हुआ।

१०२. तब लोकपालों के हाथियों के गण्डस्थलों को छोड़कर देवताओं द्वारा की गयी सुगन्धित पुष्पों की वर्षा के पीछे-पीछे दौड़ने वाले भौंरे जिनके पंख मद के कारण भारी हो रहे थे, रावण के शत्रु राम के सिर पर, जिसका राज्याभिषक के समय का मणिबन्ध शीघ्र ही होने वाला था, टूट पड़े।

१०३. इन्द्र के सारथी मातलि ने शीघ्र ही राम से, जिन्होंने देवताओं का काम पूरा किया था और जिन्होंने धनुष से अपनी डोरी उतार ली थी पूछकर उस रथ को, जिसमें हजारों घोड़े जोते जा सकते थे और जिसकी पताका की छड़ी पर रावण के नाम खुदे हुए बाणों के चिह्न बन गये थे, ऊपर ले गया।

१०४. रघुपति राम ने भी अग्नि-परीक्षा से पवित्र अपनी प्रिय भार्या सीता को ग्रहण करके और अपने शत्रु रावण की राज्यलक्ष्मी को अपने प्रिय मित्र विभीषण को सौंपकर तथा सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ विभीषण को भी साथ ले अपनी भुजा से जीते गये श्रेष्ठ विमान में बैठ अयोध्या के लिये प्रस्थान किया।

त्रयोदशः सर्गः

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच ।।१।।

वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ।।२।।

गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं सङ्क्रमिते तुरङ्गे ।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः ।।३।।

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ।
अबिन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन ।।४।।

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना ।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ।।५।।

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा ।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते ।।६।।

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीध्राः ।
नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते ।।७।।

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः ।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ।।८।।

तेरहवाँ सर्ग

१. गुणों के पारखी, रामनाम से विख्यात् भगवान् विष्णु, शब्द गुण-वाले अपने स्थान आकाश को विमान से पार करते हुए, रत्नों की खान समुद्र को देखकर अपनी प्रिया सीताजी से धीरे से बोले—

२. हे जनकनन्दिनी, मलय पर्वत पर्यन्त मेरे द्वारा बनाये गये पुल से विभक्त फेनयुक्त समुद्र को देखो जो आकाश गंगा से विभक्त निर्मल सुन्दर तारागणों से युक्त शरद् ऋतु के आकाश के समान है।

३. यज्ञ करने के अभिलाषी हमारे पुरखे राजा सगर के यज्ञ का घोड़ा जब पाताल में कपिल मुनि के पास पहुंचाया गया तो उसे प्राप्त करने के लिये पृथ्वी को खोदनेवाले हमारे पूर्वजों ने इस समुद्र की सीमा को बढ़ाया था।

४. सूर्य की किरणें इससे जल प्राप्त करती हैं, रत्नों की इसमें वृद्धि होती है, बड़वा नामक जल की अग्नि को यह धारण करता है और इसीसे आनन्द-दायक चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है।

५. अनेक रूपों को धारण करनेवाले तथा विष्णु के समान अपनी महिमा से दशों दिशाओं में व्याप्त, इस समुद्र का स्वरूप ऐसा है अथवा इतना, यह कहना संभव नहीं।

६. प्रलयकाल में संसार का संहार कर विष्णु भगवान् स्वाभाविक योगनिद्रा में मग्न हो इसी समुद्र में सोते हैं, उस काल में उनके नाभि-कमल से आविर्भूत प्रथम ब्रह्मा उनकी स्तुति करते हैं।

७. इन्द्र द्वारा सैकड़ों पर्वतों के पंख काटे जाने पर, दर्पहीन पर्वतों ने उसी प्रकार इस समुद्र में आश्रय लिया जिस प्रकार शत्रुओं द्वारा पराजित राजा किसी धर्मपरायण मध्यम श्रेणी के राजा की शरण में चले जाते हैं।

८. प्रलयकाल में बढ़ा हुआ इस समुद्र का स्वच्छ जल, आदि वराह द्वारा पाताल से उठाकर लाई गई पृथ्वी का क्षणमात्र के लिये घूंघट बन गया था।

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाधरदानदक्षः ।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः ।।९।।

ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः सम्मीलयन्तो विवृताननत्वात् ।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान् ।।१०।।

मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्रफेनान् ।
कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम् ।।११।।

वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः ।
सूर्यांशुसम्पर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः ।।१२।।

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात् ।
ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम् ।।१३।।

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद् भ्रमता घनेन ।
आभाति भूयिष्ठमयंसमुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ।।१४।।

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला ।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा ।।१५।।

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते सम्भावयत्याननमायताक्षि ।
मामक्षमं मण्डनकालहानेर्वेत्तीव बिम्बाधरबद्धतृष्णम् ।।१६।।

९. यह समुद्र अपना मुख अर्पित करने में स्वभाव से धृष्ट नदियों का अधरपान करता है और स्वयं अपने तरंगरूपी अधरों का दान करने में चतुर होने से उन्हें अधरपान कराता है। इस प्रकार वह स्त्रियों के साथ औरों की अपेक्षा विशेष प्रकार का व्यवहार करता है

१०. अपने विशाल मुख के कारण जलचर जीवों सहित नदी के मुहाने के पानी को पीकर ये तिमि नामक मछलियां अपने मुंह को बन्द कर लेती हैं और फिर अपने छेदोंवाले मस्तकों से जल की धाराओं को फव्वारे के समान ऊपर फेंक रही हैं।

११. हाथी के समान विशाल मगर के एकाएक उछलने से दो हिस्सों में बंटे हुए समुद्र फेनों को देखो, जो इनके कपोलों से लगकर क्षणभर के लिये कानों के चंवर बन जाते हैं।

१२. समुद्र के किनारे की वायु का पान करने के लिए बाहर निकले हुए विशाल तरंगों के समान स्थित ये मणिधर सर्प, अपनी मणियों पर पड़ी हुई सूर्य की चमक से पहचाने जाते हैं।

१३. तुम्हारे अधर के समान लाल रंग के मूंगों के ऊपर, एकाएक तरंगों के वेग से आकर अंकुरों में फंसा हुआ शंख-समूह किसी प्रकार कठिनाई से अलग हो पाता है।

१४. पानी पीना आरम्भ करते ही समुद्र के भंवर में फंसकर उसके वेग से घूमते हुए मेघ के द्वारा यह समुद्र फिर से मंदराचल से मथे जाने की शोभा धारण कर रहा है।

१५. दूर से लोहे के पहिये के समान दिखाई देनेवाला खारे समुद्र का किनारा तमाल और ताल की पतली और श्यामल वन-श्रेणी से, किनारे पर लगी कीचड़ की शोभा को धारण कर रहा है।

१६. हे विशाल लोचनवाली सीता! समुद्रतट की वायु केतकी के पराग से तुम्हारे मुख को मंडित कर रही है। तुम्हारे बिम्बाफल के समान सुन्दर अधर में लगी हुई मेरी सतृष्ण दृष्टि देखकर वह मानो यह समझ गया है कि मैं तुम्हारे श्रृंगार में समय लगाने में असमर्थ हूं।

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।
प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात्कूलं फलावर्जितपूगमालम् ।।१७।।

कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम् ।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः ।।१८।।

क्वचित्पथा संचरते सुराणां क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च ।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ।।१९।।

असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः ।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान्मुखे ते ।।२०।।

करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या ।
आमुंचतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते ।।२१।।

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि ।
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्झितान्याश्रममण्डलानि ।।२२।।

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ।।२३।।

त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ।।२४।।
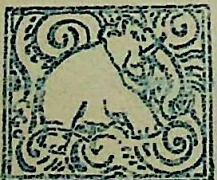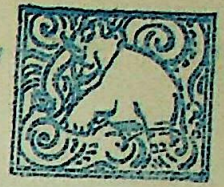
१७. हम लोग विमान के वेग के कारण, फलों से झुके हुए सुपारी के वृक्षोंवाले उस समुद्र-तट पर क्षणभर में ही पहुंच गये जहां की रेत पर खुले हुए सीपों से निकलकर मोतियों का समूह बिखरा पड़ा है।

१८. हे करभोरु और मृगनयनी सीता ! जरा पीछे छूटे हुए मार्ग पर दृष्टि डालो। ऐसा जान पड़ता है मानो दूर हटते हुए समुद्र से वनों के सहित यह पृथ्वी निकलती आ रही है।

१९. इस विमान को देखो जो मेरे मन की इच्छा के अनुसार कभी देवताओं के मार्ग से, कभी बादलों के मार्ग से, तो कभी पक्षियों के मार्ग से चलने लगता है।

२०. ऐरावत के मद के गन्ध से भरी और गंगा के लहरों के संपर्क से शीतल यह आकाश की वायु दोपहर के कारण तुम्हारे मुख पर झलकते हुए पसीने की बूंदों को पी रही है।

२१. हे कुपित होनेवाले सीते ! कुतूहलवश तुम्हारे द्वारा खिड़की से बाहर निकाले गये हाथ से छूआ हुआ मेघ, जिसमें बिजली के चक्र उभर रहे है, मानों तुम्हें दूसरा आभूषण प्रदान कर रहा है।

२२. ये तपस्वी इस प्रदेश को विघ्न स मुक्त समझकर अब देर से छोड़े हुए आश्रम-समूहों में आकर रहने लगे हैं और वहां उन्होंने नई कुटियों का निर्माण आरंभ कर दिया है।

२३. यह वही स्थान है जहां तुम्हें ढूंढ़ते हुए मैंने तुम्हारे द्वारा फेंके हुए और तुम्हारे चरण-कमल से अलग होने के दुःख से मानों चुपचाप पृथ्वी पर पड़े हुए एक नूपुर को पाया था।

२४. हे भयभीत होनेवाली सीते ! इन लताओं ने बोलने में असमर्थ होने के कारण झुके हुए पल्लवोंवाली अपनी डालियों से मुझे कृपापूर्वक यह मार्ग बताया, जिस ओर से तुम्हें राक्षस रावण ले गया था।

मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम् ।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि ।।२५।।

एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ।।२६।।

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमर्धोद्गतकेसरं च ।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनांबभूवुर्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे ।।२७।।

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम् ।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्घनगर्जितानि ।।२८।।

आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः ।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ।।२९।।

उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ।।३०।।

अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि ।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ।।३१।।

इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम् ।
त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः ।।३२।।

२५. कुश के अंकुरों की ओर से उदासीन हिरनियों ने अपनी उठी हुई बरौनियों वाली आंखों को दक्षिण दिशा में घुमाकर मुझ अनजान को तुम्हारी गति के विषय में बताया था।

२६. माल्यवान् नामक पर्वत का यह गगनचुम्बी शिखर सामने प्रगट हो रहा है जहां बादलों ने नया पानी और मैंने तुम्हारे वियोग में अपने आंसू एकसाथ ही गिराये थे।

२७. जहां वर्षा की धारा से आहत तालाबों की गन्ध, आधे खिले हुए कदम्ब के फूलों का केसर और मयूरों की सुन्दर बोली तुम्हारे बिना मुझे असह्य हो गई थी।

२८. हे भयभीत होनेवाली सीते ! जहां पहिले भी अनुभव किया गया तुम्हारा अत्यधिक कांपते हुए छिपना स्मरण करके मैंने गुफाओं में गूंजने वाले बादलों के गर्जन को जैसे-तैसे कठिनाई से सहन किया।

२९. जहां वर्षा की धारा से सिंचने पर धरती से निकली हुई और भाप के लगने से खिले हुए कोषवाले नये-नये कन्दली के फूलों ने जो विवाह के समय धुएं से लाल तुम्हारी आंखों की शोभा का अनुकरण कर रहे थे, मुझे दुख-मग्न कर दिया था।

३०. पार्श्ववर्ती बेत के वनों से आच्छादित और कुछ-कुछ दिखाई देनेवाले चंचल सारसों से युक्त पम्पा सरोवर के जल को दूर से उतरी हुई दृष्टि कठिनाई से पी पाती है।

३१. तुमसे दूर पड़ा हुआ मैं इस पंपा सरोवर में चकवों के ऐसे जोड़ों को बड़ी चाह भरी दृष्टि से देखा करता था जो आपस में विलग नहीं होते थे और एक-दूसरे को कमल का पराग चुगाया करते थे।

३२. इसके तट पर विद्यमान पतली अशोकलता को, जो स्तनों के समान सुन्दर फूलों के गुच्छों से झुकी हुई थी, मैंने यह सोच कर कि तुम मिल गई हो, जब आलिंगन करना चाहा, तो आंखों में आंसू भरकर लक्ष्मण ने मुझे रोक लिया।

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं कांचनकिङ्किणीनाम् ।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम् ।।३३।।

एषा त्वया पेशलमध्ययाऽपि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता ।
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पंचवटी मनो मे ।।३४।।

अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरङ्गवातेन विनीतखेदः ।
रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः ।।३५।।

भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार ।
तस्याविलाम्भः परिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ।।३६।।

त्रेताऽग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा ।।३७।।

एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णेः पंचाप्सरो नाम विहारवारि ।
आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम् ।।३८।।

पुरा स दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मघोनाः ।
समाधिभीतेन किलोपनीतः पंचाप्सरोयौवनकूटबन्धम् ।।३९।।

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति।।४०।।

३३. विमान के बीच-बीच में लटकती हुई सोने की घंटियों के शब्द को सुनकर आकाश में उड़नेवाली गोदावरी नदी के सारसों की ये पंक्तियां मानो तुम्हारी ओर ऊपर चली आ रही हैं।

३४. देर के बाद दिखाई पड़नेवाली यह पंचवटी, जिसमें पतली कमर वाली होने पर भी तुमने घड़े से जल भर-भर कर आम के पौधों को सींचा है और जिसके कृष्णसार मृग हमारी ओर मुंह उठाकर देख रहे हैं, मेरे मन को आनन्दित कर रही है।

३५. मुझे स्मरण आ रहा है, जब यहां गोदावरी नदी के समीप आखेट से लौटकर लहरों को स्पर्श करके आनेवाली हवा से अपनी थकान मिटाता हुआ मैं एकांत में तुम्हारी गोद में सिर रखकर वेत के मंडपों में सो जाता था।

३६. यह पृथ्वी पर निवास करनेवाले उन अगस्त्य मुनि का आश्रम है, जिनके उदय होने पर मटियाला पानी साफ हो जाता है और जिन्होंने अपने भौंहों के संचालन मात्र से राजा नहुष को इन्द्र के पद से भ्रष्ट कर दिया था।

३७. उन यशस्वी ऋषि की हवन सामग्री की सुगन्ध से युक्त तीन प्रकार की अग्नि के धुएं की शिखा ने इस विमान के मार्ग को व्याप्त कर लिया है और इसे सूंघने से मेरा रजोगुण दूर हो गया है- तथा मेरी आत्मा का भार हल्का हो गया है।

३८. हे मानिनी सीते! यह शातकर्णी ऋषि का पञ्चाप्सर नाम का क्रीड़ा-सरोवर है। अपने चारों ओर के वनों से यह इस प्रकार शोभित हो रहा है मानो मेघों के बीच में से दिखाई देनेवाली चन्द्रमा की आकृति हो।

३९. पहले ये ऋषि मृगों के साथ चरते हुए केवल कुश के अंकुरों पर निर्वाह करते थे। इनकी तपस्या से डरकर इन्द्र ने इन्हें पांच अप्सराओं के यौवन के कपट-यंत्र में फंसा लिया।

४०. जल के भीतर बने हुए भवन में रहनेवाले उन्हीं शातकर्णी ऋषि के निरन्तर चलनेवाले संगीत के मृदंग का शब्द आकाश में पहुंचकर क्षणभर के लिये अपनी प्रतिध्वनि से पुष्पक विमान की चन्द्रशाला को गुंजा रहा है।

हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः । प्र.
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः ।।४१।।

अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि ।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि ।।४२।।

एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम् ।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते ।।४३।।

वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष कम्पेन किंचित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः ।
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्रार्चिषि सन्निधत्ते ।।४४।।

अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः ।
चिराय सन्तर्प्य समिद्भिरग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत् ।।४५।।

छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसम्भाव्यफलेष्वमीषु ।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ।।४६।।

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः ।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ।।४७।।

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी ।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः ।।४८।।

४१. जलती हुई चार धूनियों क बीच में ऊपर मस्तक पर तपते हुए सूर्य से युक्त ये दूसरे तपस्वी हैं जिनका नाम तो सुतीक्ष्ण है पर जीवन सौम्य।

४२. हंसकर दृष्टिपात करने और वहाने से करधनी का आधा भाग दिखाने के रूप में की गई अप्सराओं की विलास की चेष्टाएं इन्द्र के मन में शंका उत्पन्न करने वाल सुतीक्ष्ण ऋषि के मन में विकार उत्पन्न करने में समर्थ न हुई।

४३. हाथ ऊपर उठाकर तपस्या करनेवाले ये ऋषि रुद्राक्ष के कंकण से युक्त, मृगों को खुजानेवाली और कुश के कांटों को काटनेवाली अपनी दाहिनी भुजा को मेरे सम्मान में प्रेमपूर्वक इधर ही लक्ष्य करके हिला रहे हैं।

४४. इन्होंने मौन व्रत धारण कर रखा है, अत: मेरे इस नमस्कार को इन्होंने कुछ सिर हिलाकर ग्रहण किया और विमान के व्यवधान से छूटते ही फिर अपनी दृष्टि सूर्य पर लगा दी।

४५. यह शरण देनेवाला पवित्र तपोवन नियमपूर्वक अग्निहोत्र करनेवाले शरभंग नामक ऋषि का है, जिन्होंने लम्बे समय तक समिधा से अग्नि को तृप्त करने के बाद अपने शरीर को भी होम दिया था।

४६. अपनी छाया से मार्ग की थकावट को दूर करनेवाले, बड़ी मात्रा में अच्छे प्रकार के फलवाले इन वृक्षों पर, उनके अतिथियों के सत्कार का भार ऐसे ही स्थित है, मानो वे उनके सुपुत्र हों।

४७. हे सुडौल शरीरवाली सीते, मस्त सांड के समान इस चित्रकूट पर्वत पर मेरी टकटकी लग गई है। झरनों के शब्द को प्रकट करने वाली गुफा ही इसका मुख है और शिखर पर लगा बादल सींग मारने से लगी हुई मिट्टी के समान है।

४८. निर्मल और मन्द प्रवाहवाली यह मन्दाकिनी नदी अधिक दूरी के कारण पतली दिखाई दे रही है। पर्वत के समीप यह ऐसी शोभित हो रही है, मानो पृथ्वी के गले में मोतियों की माला पड़ी हो।

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य ।
यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयाऽवतंसः परिकल्पितस्ते ।।४६।।

अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वमपुष्पलिङ्गात्फलबन्धिवृक्षम् ।
वनं तपः साधनमेतदत्रेराविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् ।।५०।।

अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम् ।
प्रवर्तयामास किलानुसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम् ।।५१।।

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणाममी समध्यासितवेदिमध्याः ।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ।।५२।।

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति ।।५३।।

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ।।५४।।

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ।।५५।।

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा ।।५६।।

४९. पर्वत के समीप अच्छी जाति का यह तमाल का वृक्ष है जिसके सुगन्धित पल्लव को लेकर मैंने तुम्हारे जौ के अंकुर के समान पीले रंग के गालों पर शोभित होने वाला सुन्दर आभूषण बना दिया था।

५०. दंड और भय के बिना ही यहां के जंगली जीव विनयशील हो गये हैं, फूल लगने के बिना ही यहां के वृक्ष फल देते हैं और इस प्रकार यहां अत्रि मुनि की उग्रतर तपस्या का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। यह वन उनकी ही तपस्या का साधन है।

५१. अत्रिऋषि की पत्नी अनसूया ने ऋषियों के स्नान के लिये उस त्रिपथगामिनी गंगा को यहीं प्रवाहित किया था जिसके सुनहले कमलों को सप्तर्षि अपने हाथों से तोड़ते हैं और जो शिवजी के मस्तक की माला है।

५२. वे वृक्ष जिनकी वेदियों पर ध्यान में निमग्न ऋषि वीरासन लगाकर बैठे हुए हैं हवा के न चलने से स्थिर होने के कारण ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो वे योग साधन में मग्न हों।

५३. श्याम रंग का दिखाई देने वाला यही वह बड़ का पेड़ है जिसकी तुमने पूजा की थी। फलों के लगने से यह इस प्रकार शोभित हो रहा है मानो पद्मराग से युक्त मरकत मणि का ढेर हो।

५४—५८. हे अनिंद्य सुन्दरी, यमुना की लहरों से स्पष्ट अलग अपनी धारा वाली गंगा कहीं पर कान्ति बिखेरने वाली इन्द्रनील मणियों से जड़ी गयी मोती की छड़ी के समान, तो कहीं बीच-बीच में नील कमलों से युक्त श्वेत कमलों की माला के समान, कहीं नीले हंसों से युक्त राजहंसों की पंक्ति के समान, तो कहीं काले अगर की पत्रावली में चन्दन से बनी हुई पृष्ठभूमि के समान, कहीं छाया में विलीन अंधकार के द्वारा चितकबरी बनाई गई चांदनी के समान तो कहीं बीच-बीच में दिखाई देने वाले नीले आकाश से युक्त शरद् ऋतु के सफेद

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ।।५७।।

समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।
तत्त्वावबोधेन विनाऽपि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ।।५८।

पुरं निषादाधिपतेरिदं तद्यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय ।
जटासु बद्धास्वरुदत्सुमन्त्रः कैकेयि कामाः फलितास्तवेति ।।५९।।

पयोधरैः पुण्यजलाङ्गनानां निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः ।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ।।६०।।

जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम् ।
तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णारिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि ।।६१।।

यां सैकतोत्सङ्गसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् ।
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे सम्भावयत्युत्तरकोसलानाम् ।।६२।।

सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता ।
दूरे वसन्तंशिशिरानिलैर्मां तरङ्गहस्तैरुपगूहतीव ।।६३।।

विरक्तसन्ध्याकपिशं पुरस्ताद्यतो रजः पार्थिवमुज्जिहीते ।
शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः ।।६४।।

बादल की पंक्ति के समान अथवा काले सांपों से सुशोभित, विभूति रमाये हुए शंकरजी के शरीर के समान, शोभित हो रही है। गंगा जमुना के संगम में स्नान करके पवित्र आत्मा वाले शरीरधारी बिना तत्वज्ञान के ही जन्म और मृत्यु के बन्धन से छूट जाते हैं।

५९. यह निषादराज गुह का नगर है जहां मेरे मुकुटमणि को छोड़कर जटा बांधने पर सुमन्त यह कह कर रो पड़े थे कि, हे कैकेयी, तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हुए।

६०. जिस प्रकार ऋषियों ने अव्यक्त को बुद्धि का कारण बतलाया है उसी प्रकार यह मानसरोवर भी जिसके स्वर्णकमलों का पराग यक्षों की स्त्रियां अपने स्तनों पर मलती हैं, इस सरयू का उद्गम स्थान है।

६१. वह सरयू नदी जिसके किनारे यज्ञ स्तम्भ गड़े हुए हैं, राजधानी अयोध्या के पास से उस जल को लेकर बहती है जिसे इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर किये गये स्नानों से और भी पवित्र कर दिया है।

६२. जिसकी रेत भरी गोद में उत्तर कोसल वाले सुख पाते हैं और जिसका विपुल जल पीकर वे बड़े होते हैं उस सरयू नदी को मेरा मन उन उत्तर कोसल वालों की धाय मां मानता है।

६३. मेरे पिता उन मान्य राजा दशरथ से वियुक्त यह सरयू दूर होने पर भी मुझे मां के समान ठंडी हवा के झोंकों वाली तरंग रूपी हाथों से बुला रही है।

६४. सामने विशेष रूप से रंगभरी संध्या के कारण पीले रंग की पृथ्वी की धूल ऊपर उठ रही है इससे मैं अनुमान करता हूं कि हनुमान से समाचार प्राप्त करके भरत सेना सहित मेरी ओर आ रहे हैं।

श्रद्धा श्रियं पालितसङ्गराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः ।
हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन्संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे ॥६५॥

असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः ।
वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासा मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति ॥६६॥

पित्राविसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता ।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रमभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम् ॥६७॥

एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीयामिच्छां विमानमधिदेवतया विदित्वा ।
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयाभिरुद्वीक्षितप्रकृतिभिर्भरतानुगामिः
॥६८॥

तस्मात्पुरःसरविभीषणदर्शितेन सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः ।
यानादवातरददूरमहीतलेन मार्गेण भङ्गिरचितस्फटिकेन रामः ॥६९॥

इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य सभ्रातरं भरतमर्घ्यपरिग्रहान्ते ।
पर्यश्रुरस्वजत मूर्धनि चोपजघ्रौ तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके
॥७०॥

श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियांश्च प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मंत्रिवृद्धान् ।
अन्वग्रहीत्प्रणमतःशुभदृष्टिपातैर्वार्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा
॥७१॥

दुर्जातबन्धुरयमृक्षहरीश्वरो मे पौलस्त्य एष समरेषु पुरः प्रहर्ता ।
इत्यादृतेनकथितौ रघुनन्दनेन व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे
॥७२॥

६५. युद्ध में खर आदि राक्षसों को मारकर लौटने पर मुझे जैसे लक्ष्मण ने सुरक्षित रूप में तुम्हें लौटा दिया था उसी प्रकार यह साधु भरत भी प्रतिज्ञा के पूर्ण करने पर मुझको निश्चय ही दोषरहित राज्यलक्ष्मी लौटा देगा।

६६. पैदल चलते हुए गुरु वसिष्ठ को आगे और सेना को पीछे करके वयोवृद्ध मंत्रियों के साथ चीर पहने और हाथ में पूजा की सामग्री लिये वह भरत मेरी ओर आ रहे हैं।

६७. पिता द्वारा दी गई और अपनी गोद में आई हुई राज्यलक्ष्मी को युवा होते हुए भी मेरा ध्यान करके जिसने इतने वर्षों तक नहीं भोगा, उसके साथ मानो वह कठिन असिधारा व्रत का अभ्यास कर रहा है।

६८. राम के इतना कहने पर उनकी इच्छा को जान अधिष्ठाता देवता ने विस्मय से पूर्ण भरत के पीछे-पीछे आने वाली प्रजा के देखते ही देखते विमान को आकाश से नीचे उतारा।

६९. भूमि की सतह से थोड़ी ऊंचाई वाली और स्फटिक मणि की पच्चीकारी वाली सीढ़ी से, जिसे आगे होकर विभीषण दिखा रहे थे, राम सेवा में कुशल सुग्रीव के द्वारा बढ़ाया गया हाथ पकड़कर विमान से उतरे।

७०. इक्ष्वाकुवंश के गुरु वसिष्ठ को पूर्ण रूप से झुककर प्रणाम करके अर्घ्य ग्रहण करने के अनन्तर उन्होंने भाई भरत को, जिसने उनकी भक्ति के कारण पिता के राज्य का महान् अभिषेक भी अस्वीकार कर दिया था, आंखों में आंसू भरकर हृदय से लगा लिया और उनके सिर को सूंघा।

७१. प्रणाम करते हुए उनके बूढ़े मंत्रियों को जिनका मुख दाढ़ी-मूंछों के बढ़ने से विकृत हो रहा था और जो बढ़ी हुई जटाओं वाले बड़ के वृक्षों के समान दिखाई दे रहे थे उन्होंने अपनी शुभ दृष्टि डालकर और कुशल प्रश्न के मधुर अक्षरों से युक्त वाणी से अनुगृहीत किया।

७२. ये मेरे विपत्ति के समय के मित्र भालुओं और वन्दरों के राजा सुग्रीव हैं और ये युद्ध में आगे बढ़कर आक्रमण करने वाले पुलस्त्य की संतान विभीषण हैं। रघुनन्दन राम के द्वारा यह कहने पर भरत ने लक्ष्मण को छोड़कर उन दोनों को प्रणाम किया।

सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैनमुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग।
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन क्लिश्यन्निवास्य भुजमध्यमुरः स्थलेन
।।७३।।

रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान्।
तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरे ते
।।७४।।

सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां भेजे रथान्दशरथप्रभवानुशिष्टः।
मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयैर्न स्यन्दनैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः
।।७५।।

भूयस्ततो रघुपतिर्विलसत्पताक-
मध्यास्त कामगति सावरजो विमानम् ।
दोषातनं बुधबृहस्पतियोगदृश्य-
स्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम् ।।७६।।

तत्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वीं वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः।
रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रात्प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं भरतो ववन्दे
।।७७।।

लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं तद्वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधोरन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य
।।७८।।

क्रोशार्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण।
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः साकेतोपवनमुदारमध्युवास ।।७९।।

७३. इसके अनन्तर वे लक्ष्मण से मिले और सिर झुकाये हुए उन्हें उठाकर हृदय से इस प्रकार चिपका लिया मानों वे मेघनाद के प्रहार से हुए घाव के भर जाने से कठोर वक्षःस्थल से अपनी भुजाओं को पीड़ा पहुंचा रहे हों।

७४. राम की आज्ञा से वानरों के सेनापति मनुष्य का शरीर धारण करके हाथियों पर बैठे और उन्होंने बड़ी मात्रा में मदजल की धारा बहाने वाले उन हाथियों पर बैठकर पर्वत पर चढ़ने का सुख प्राप्त किया।

७५. दशरथ की संतान राम के आदेश से राक्षसों के स्वामी विभीषण भी अपन साथियों के साथ रथ पर जा बैठे। माया द्वारा विशेष संकल्प से बने हुए उनके रथ मनुष्यों द्वारा बनाये गये इन रथों की शोभा की समता न कर सके।

७६. इसके अनन्तर रघुपति राम पताकाओं से सुशोभित और इच्छा के अनुसार चलने वाले विमान पर अपने छोटे भाइयों के साथ फिर बैठे, मानों सायंकालीन चंचल बिजली वाले बादलों के समूह पर बुध और बृहस्पति के साथ दिखाई देने वाला चन्द्रमा बैठा हुआ हो।

७७. जिस प्रकार आदिवराह ने प्रलय से पृथ्वी का उद्धार किया था और जैसे वर्षा का आधिक्य घने बादल से चन्द्रमा की कान्ति का उद्धार करता है उसी प्रकार दश मस्तकों वाले रावण रूपी संकट से राम द्वारा बचाई गई धैर्यशीला मैथिल राजकुमारी सीता को भरत ने प्रणाम किया।

७८. जनक की राजकुमारी सीता का वह चरण-युगल, जिसने लंका के स्वामी रावण की प्रार्थना को ठुकरा कर दृढ़ व्रत का पालन किया था और बड़े भाई का अनुकरण करते हुए जटा से युक्त उस साधु पुरुष भरत का सिर, दोनों ही आपस में मिलकर एक दूसरे से पवित्र हो गये।

७९. मन्द चाल से चलने वाले पुष्पक विमान से प्रजा के आगे-आगे आध कोस तक जाकर आर्य काकुत्स्थ रामचन्द्र अयोध्या के उस विशाल उपवन में ठहर गये जहां शत्रुघ्न ने राजसी तम्बू लगवा दिये थे।

चतुर्दशः सर्गः

भर्तुः प्रणाशादथ शोचनीयं दशान्तरं तत्र समं प्रपन्ने ।
अपश्यतां दाशरथी जनन्यौ छेदादिवोपघ्नतरोर्व्रतत्यौ ।।१।।

उभावुभाभ्यां प्रणतौ हतारी यथाक्रमं विक्रमशोभिनौ तौ ।
विस्पष्टमस्त्रान्धतया न दृष्टौ ज्ञातौ सुतस्पर्शसुखोपलम्भात् ।।२।।

आनन्दजः शोकजमश्रु बाष्पस्तयोरशीतं शिशिरो बिभेद ।
गङ्गासरय्वोर्जलमुष्णतप्तं हिमाद्रिनिस्यन्द इवावतीर्णः।।३।।

ते पुत्रयोर्नैऋतशस्त्रमार्गानार्द्रानिवाङ्गे सदयं स्पृशन्त्यौ ।
अपीप्सितं क्षत्रकुलाङ्गनानां न वीरसूशब्दमकामयेताम् ।।४।।

क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाऽहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती ।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे ।।५।।

उत्तिष्ठ वत्से ननु सानुजोऽसौ वृत्तेन भर्ता शुचिना तवैव ।
कृच्छ्रं महत्तीर्ण इति प्रियार्हां तामूचतुस्ते प्रियमप्यमिथ्या ।।६।।

अथाभिषेकं रघुवंशकेतोः प्रारब्धमानन्दजलैर्जनन्योः ।
निर्वर्तयामासुरमात्यवृद्धास्तीर्थाहृतैः काञ्चनकुम्भतोयैः ।।७।।

सरित्समुद्रान्सरसीश्च गत्वा रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितानि ।
तस्यापतन्मूर्ध्नि जलानि जिष्णोर्विन्ध्यस्य मेघप्रभवा इवापः ।।८।।

चौदहवां सर्ग

तब दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण ने एक साथ ही ऐसी शोचनीय स्थिति को प्राप्त अपनी दोनों माताओं को देखा जैसी स्थिति आश्रय के वृक्ष के कट जाने पर लताओं की हो जाती है।

२. अपने शत्रुओं को मारनेवाले और अपने पराक्रम से शोभायमान उन दोनों ने जब क्रमशः अपनी-अपनी माताओं को प्रणाम किया तो वे आंखों में आंसू भरे होने के कारण भली-भांति न देख पायीं; पुत्रस्पर्श का अनुभव करके ही उन्हें पहचान सकीं।

३. उनके आनन्द से निकले हुए ठंडे आंसुओं ने उनके शोक के गरम आंसुओं को वैसे ही दूर कर दिया जैसे हिमालय से उतरी हुई जल की धारा गंगा और सरयू के गरमी से गरम जल को हटा देती है।

४. राक्षसों के शस्त्रों से लगे हुए घावों को इस प्रकार करुणा से भरकर सहलाते हुए, जैसे कि वे अभी गीले ही हों, क्षत्रिय स्त्रियों का प्रिय वीरप्रसविनी शब्द भी रुचिकर न लगा।

५. "मेरा नाम सीता है, अशुभ लक्षणों वाली मैं स्वामी के लिये कष्ट का सृजन करने वाली हूं। यह कहती हुई उनकी बहू सीता ने अपने स्वर्गवासी श्वसुर की राजरानियों को पूर्ण भक्ति के साथ प्रणाम किया।"

६. हे वत्से, उठो, छोटे भाई समेत तुम्हारे इस पति ने तुम्हारे पवित्र चरित से ही महान् दुःख को पार किया है, यह कहते हुए उन दोनों ने अपने प्रिय पति की योग्य पत्नी सीता के प्रिय होते हुए भी सच्ची बात कही।

७. तब वयोवृद्ध मंत्रियों ने तीर्थों से लाये हुए सोने के कलशों के जल से रघुवंश की पताका के समान रामचन्द्र का अभिषेक किया जिसका आरंभ दोनों माताओं के आनन्द के आंसुओं से हो चुका था।

८. नदियों, समुद्रों और झीलों से राक्षसों और वानरों के मुखियों द्वारा जाकर लाया गया जल विजयी रामचन्द्र के सिर पर इस प्रकार गिर रहा था, जैसे मेघ का जल विन्ध्याचल के शिखर पर बरसता है।

तपस्विवेषक्रिययाऽपि तावद्यः प्रेक्षणीयः सुतरां बभूव ।
राजेन्द्रनेपथ्यविधानशोभा तस्योदिताऽसीत्पुनरुक्तदोषा ॥९॥

स मौलरक्षोहरिभिः ससैन्यस्तूर्यस्वनानन्दितपौरवर्गः ।
विवेश सौधोद्गतलाजवर्षामुत्तोरणामन्वयराजधानीम् ॥१०॥

सौमित्रिणा सावरजेन मन्दमाधूतबालव्यजनो रथस्थः ।
धृतातपत्रो भरतेन साक्षादुपायसङ्घात इव प्रवृद्धः ॥११॥

प्रासादकालागुरुधूमराजिस्तस्याः पुरो वायुवशेन भिन्ना ।
वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन मुक्ता स्वयं वेणिरिवाबभासे ॥१२॥

श्वश्रूजनानुष्ठितचारुवेषां कर्णीरथस्थां रघवीरपत्नीम् ।
प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः साकेतनार्योऽञ्जलिभिः प्रणेमुः ॥१३॥

स्फुरत्प्रभामण्डलमानसूयं सा बिभ्रती शाश्वतमङ्गरागम् ।
रराज शुद्धेति पुनः स्वपुर्यै सन्दर्शिता वह्निगतेव भर्त्रा ॥१४॥

वेश्मानि रामः परिबर्हवन्ति विश्राण्य सौहार्दनिधिः सुहृद्भ्यः ।
बाष्पायमाणो बलिमन्निकेतमालेख्यशेषस्य पितुर्विवेश ॥१५॥

कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब सत्यान्नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद् गुरुर्नः ।
तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तवेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः ॥१६॥

९. तपस्वियों का वेष धारण करके भी रामचन्द्र बहुत ही सुन्दर दिखाई देते थे। सम्राटों का परिधान पहिनने पर तो उनकी शोभा मानों दोहरी हो गयी।

१०. उन्होंने वृद्ध मंत्रियों, राक्षसों और वानरों को साथ ले सेना सहित तुरही के स्वर से नागरिकों को आनंदित करते हुए अपनी वंशानुगत राजधानी अयोध्या में प्रवेश किया जहां प्रासादों से धान की खीलों की वर्षा हो रही थी और जो तोरणों से सजी हुई थी।

११. अपने छोटे भाई शत्रुघ्न सहित लक्ष्मण उन पर धीरे-धीरे चंवर डुला रहे थे और भरत ने उनका छत्र पकड़ रखा था। इस प्रकार रथ पर बैठे समृद्ध राम, साम आदि उपायों के साक्षात् समूह जान पड़ते थे।

१२. भवनों से निकलने वाली हवा से बिखरी कालागुरु की धुंएं की पंक्ति ऐसी शोभित हुई मानों उस पुरी की वेणी हो जिसे वन से लौटकर राम ने स्वयं खोल दिया हो।

१३. अयोध्या की नारियों ने भवनों की खिड़कियों से दिखाई देने वाले जुड़े हुए हाथों से रघुवीर राम की पत्नी सीता को प्रणाम किया जिन्हें उनकी सासों ने सुन्दर वेष में सजाया था और जो स्त्रियों के लिये विशेष रूप से बने हुए कर्णी नामक रथ में बैठी हुई थी।

१४. अनसूया द्वारा दिये गये चमकती हुई प्रभा को फैलाने वाले और सदा रहने वाले अंगराग को लगाये हुए वे ऐसी शोभित हुईं मानों स्वामी द्वारा यह बताने के लिये कि वे शुद्ध हैं उन्हें फिर अग्नि में प्रवेश कराके दिखाया गया हो।

१५. सज्जनता के निधि राम ने सुग्रीव आदि अपने मित्रों को सुख के साधनों से युक्त भवन दे आंखों में आंसू भरकर पिता के पूजावाले उस गृह में प्रवेश किया जिसमें केवल उनके चित्र ही शेष थे।

१६. हाथ जोड़कर यह कहते हुए कि हे माता, स्वर्ग को प्राप्ति कराने वाले सत्य से हमार पिता नहीं गिरे इसका श्रेय तुम्हें ही है, यह विचार करने की वाल है; उन्होंने भरत की माता की लज्जा को दूर कर दिया।

तथैव सुग्रीवविभीषणादीनुपाचरत्कृत्रिमसंविधाभिः ।
सङ्कल्पमात्रोदितसिद्धयस्ते क्रान्ता यथा चेतसि विस्मयेन ॥१७॥

सभाजनायोपगतान्स दिव्यान्मुनीन्पुरस्कृत्य हतस्य शत्रोः ।
शुश्राव तेभ्यः प्रभवादि वृत्तं स्वविक्रमे गौरवमादधानम् ॥१८॥

प्रतिप्रयातेषु तपोधनेषु सुखादविज्ञातगतार्धमासान् ।
सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान्रक्षःकपीन्द्रान् विससर्ज रामः ॥१९॥

तच्चात्मचिन्तासुलभं विमानं हृतं सुरारेः सह जीवितेन ।
कैलासनाथोद्वहनाय भूयः पुष्पं दिवः पुष्पकमन्वमंस्त ॥२०॥

पितुर्नियोगाद्वनवासमेवं निस्तीर्य रामः प्रतिपन्नराज्यः ।
धर्मार्थकामेषु समां प्रपेदे यथा तथैवावरजेषु वृत्तिम् ॥२१॥

सर्वासु मातृष्वपि वत्सलत्वात्स निर्विशेषप्रतिपत्तिरासीत् ।
षडाननापीतपयोधरासु नेता चमूनामिव कृत्तिकासु ॥२२॥

तेनार्थवाँल्लोभपराङ्मुखेन तेन घ्नता विघ्नभयं क्रियावान् ।
तेनास लोकः पितृमान्विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेव पुत्री ॥२३॥

स पौरकार्याणि समीक्ष्य काले रेमे विदेहाधिपतेर्दुहित्रा ।
उपस्थितश्चारु वपुस्तदीयं कृत्वोपभोगोत्सुकयेव लक्ष्म्या ॥२४॥

१७. उन्होंने विशेष रूप से तैयार की गई सुविधा की सामग्री से सुग्रीव, विभीषण आदि की ऐसी सेवा की कि इच्छा-मात्र से ही उसकी पूर्ति होनेके कारण उनका मन विस्मय से भर गया।

१८. राम ने अपना सम्मान प्रकट करने के लिये आये हुए दिव्य मुनियों का सत्कार करके अपने पराक्रम में गौरव को बढ़ाने वाले मारे गये शत्रु रावण के जन्म आदि का हाल सुना।

१९. तपोधन मुनियों के वापस चले जाने पर सीता ने राक्षसों और वानरों के मुखियों की अपने हाथ से उच्च कोटि की पूजा की और राम ने उन्हें विदा किया। सुखपूर्वक रहते हुए उन्हें यह पता ही नहीं चला कि छः मास का समय बीत गया है।

२०. अपने मन में इच्छा करने से ही उपस्थित होने वाले स्वर्गीय कुसुम के समान सुन्दर विमान को, जिसे उन्होंने देवताओं के शत्रु रावण क प्राणों के साथ ही हरण कर लिया था, फिर से कैलास के स्वामी कुबेर की सवारी में रहने की आज्ञा दी।

२१. पिता के आदेश से इस प्रकार वनवास की अवधि पूरी करके राज्य प्राप्त करने के उपरान्त राम ने जिस प्रकार धर्म, अर्थ और काम में समान व्यवहार रखा उसी प्रकार छोटे भाइयों के प्रति भी।

२२. सबमें स्नह क कारण सभी माताओं का व समान रूप से सत्कार करत थे जिस प्रकार देवताओं के सेनापति उन कृत्तिकाओं का, जिनका स्तन-पान उन्होंने छः मुखों से किया था।

२३. जनता अपने को राम के लोभ से विमुख रहने से धनी, विघ्न के भय को दूर करने से कर्मठ, नियंत्रण रखने से पितायुक्त और शोक को दूर करने से पुत्रवाली मानती थी।

२४. राम ने नागरिकों से संबंध रखने वाले राजकाज को देखकर अवसर उपस्थित होने पर विदहराज जनक की कन्या सीता के साथ विहार किया जिनका सुन्दर शरीर धारण करके उपभोग के लिये उत्सुक राज्यलक्ष्मी मानो स्वयं उपस्थित हो गई थी।

तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु।
प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु सञ्चिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन्।।२५।।

अथाधिकस्निग्धविलोचनेन मुखेन सीता शरपाण्डुरेण
आनन्दयित्री परिणेतुरासीदनक्षरव्यञ्जितदोहदेन ।।२६।।

तामङ्कमारोप्य कृशाङ्गयष्टिं वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम् ।
विलज्जमानां रहसि प्रतीतः पप्रच्छ रामां रमणोऽभिलाषम्।।२७।।

सा दष्टनीवारबलीनि हिंस्रैः सम्बद्धवैखानसकन्यकानि ।
इयेष भूयः कुशवन्ति गन्तुं भागीरथीतीरतपोवनानि ।।२८।।

तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्रवीरस्तदीप्सितं पार्श्वचरानुयातः
आलोकयिष्यन्मुदितामयोध्यां प्रासादम भ्रंलिहमारुरोह ।।२९।।

ऋद्धापणं राजपथं स पश्यन्विगाह्यमानां सरयूं च नौभिः ।
विलासिभिश्चाध्युषितानि पौरैः पुरोपकण्ठोपवनानि रेमे ।।३०।।

स किंवदन्तीं वदतां पुरोगः स्ववृत्तमुद्दिश्य विशुद्धवृत्तः ।
सर्पाधिराजोरुभुजोऽपसर्पं पप्रच्छ भद्रं विजितारिभद्रः ।।३१।।

निर्बन्धपृष्टः स जगाद सर्वं स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम् ।
अन्यत्र रक्षोभवनोषितायाः परिग्रहान्मानवदेव देव्याः ।।३२।।

२५. चित्रों से सजे हुए घरों में इच्छानुसार इन्द्रियों के सुखों को प्राप्त करने वाले उन दोनों के लिये दण्डक वन में भोगे हुए दुःख भी सोचने पर सुख वन जाते थे।

२६. तब सीता ने बिना शब्दों के ही गर्भ की बात बताने वाले सरकंडे के समान अपने पीले रंग के और स्नेहभरे नेत्रों वाल मुख से अपने पति को आनन्दित किया।

२७. गर्भ की बात जानकर सीता के रमण रामचन्द्र ने दुबले शरीर वाली सीता को जिनके स्तनों के अगले हिस्से का रंग बदल गया था और जो विशेष रूप से लज्जा का अनुभव कर रही थीं, एकान्त में गोद में बिठाकर उनकी इच्छा पूछी।

२८. उन्होंने गंगा के तट पर स्थित कुश से भरे उन तपोवनों में जाने की फिर से इच्छा प्रकट की जहां हिंसक पशु बलि में दिये गये नीवार को खाते हैं और जहां तपस्वियों की कन्याओं से उन्होंने सखी का संबंध जोड़ रखा था।

२९. सीता को उनकी अभिलाषा पूर्ण करने का वचन देकर अपने पास रहने वाले सेवकों को साथ ले रघुवंशियों में विशेष वीर राम प्रसन्नता से पूर्ण अयोध्या नगरी को प्रकाशयुक्त बनाते हुए गगनचुम्बी भवन पर चढ़े।

३०. उन्होंने समृद्ध बाजारों वाले राजपथ, इधर-उधर आने-जाने वाली नावों वाली सरयु और नगर के समीपवर्ती उन उपवनों को जिनमें विलासप्रेमी नगर निवासी विद्यमान थे, देखते हुए आनन्द का अनुभव किया।

३१. वक्ताओं में श्रेष्ठ, विशुद्ध यश वाले, शेषनाग के समान विशाल भुजाओं वाले और श्रेष्ठ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले राम ने भद्र नामक गुप्तचर से पूछा चरित्र के सम्बन्ध में लोग क्या कहते हैं?

३२. आग्रहपूर्वक पूछने पर वह बोला, हे मनुष्य रूप में देवता, राक्षस के घर में रही हुई सीता को ग्रहण करने की बात को छोड़कर नगर निवासी आपके समस्त चरित्र की स्तुति करते हैं।

कलत्रनिन्दागुरुणा किलैवमभ्याहतं कीर्तिविपर्ययेण ।
अयोघनेनाय इवाभितप्तं वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे ।।३३।।

किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत सन्त्यजामि ।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तवृत्तिः ।।३४।।

निश्चित्य चानन्यनिवृत्ति वाच्यं त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टुमैच्छत् ।
अपि स्वदेहात्किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः ।।३५।।

स सन्निपात्यावरजान्हतौजास्तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान् ।
कौलीनमात्माश्रयमाचचक्षे तेभ्यः पुनश्चेदमुवाच वाक्यम् ।।३६।।

राजर्षिवंशस्य रविप्रसूतेरुपस्थितः पश्यत कीदृशोऽयम् ।
मत्तः सदाचारशुचेः कलङ्कः पयोदवातादिव दर्पणस्य ।।३७।।

पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरङ्गेष्विव तैलबिन्दुम् ।
सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिकं स्थाणुमिव द्विपेन्द्रः ।।३८।।

तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तावुपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षः ।
त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव ।।३९।।

अवैमि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान्मतो मे ।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ।।४०।।

३३. स्त्री की इतनी बड़ी निन्दा रूपी अपयश से चोट खाकर वैदेही के प्रिय राम का हृदय घन से पीटे गये गरम लोहे के समान विदीर्ण हो गया।

३४. यह सोचकर कि अपनी निन्दा की बात की उपेक्षा करूं अथवा निर्दोष पत्नी को सदा के लिये छोड़ दूं; किसी भी एक पक्ष का आश्रय लेने में घबराहटका अनुभव करने के कारण उनक मन की स्थिति झूले में झूलने जैसी हो गई।

३५. दूसरे किसी उपाय से यह अपवाद शांत होने वाला नहीं है, ऐसा निश्चय करके उन्होंन पत्नी का त्याग करके उसका परिमार्जन करना चाहा। क्योंकि जिनका यश ही धन है उनके लिये इन्द्रियों के विषयों के सुख की तो बात क्या अपने शरीर से भी यश का स्थान बड़ा होता है।

३६. तेज से रहित हो राम ने अपने उन छोटे भाइयों को एकत्र करके, जिनका हर्ष उनके परिवर्तन को देखकर लुप्त हो गया था, अपने से संबंधित इस निन्दा की बात बताई और फिर बोले —

३७. देखो तो, सूर्यवंश में उत्पन्न, राजर्षियों का कुल वाला और सदाचार से पवित्र होत हुए भी मेरे सामने यह कैसा कलंक आकर इस प्रकार खड़ा हो गया है जैसे बादल वाली हवा से दर्पण में धुंधलापन आ जाता है।

३८. पानी की लहरों में तेल की बूंद के समान नागरिकों में तेजी से फैलते हुए इस पुराने अपवाद को सहन करने में मैं उसी प्रकार असमर्थ हूं जिस प्रकार श्रेष्ठ हाथी हथसाल के खंभे को नहीं सह पाता।

३९. उस अपवाद को दूर करने के लिये पुत्र की उत्पत्ति का समय निकट हो जाने पर भी सीता की उपेक्षा करके मैं उसे उसी प्रकार छोड़ दूंगा जिस प्रकार पिता की आज्ञा से समुद्र की सीमा रेखा वाली पृथ्वी को छोड़ दिया था।

४०. मैं जानता हूं कि वह निष्पाप है किंतु मेरा यह मत है कि जनता ने ही भूमि की छाया को स्वच्छ चन्द्रमा के कलंक के रूप में आरोपित किया है।

रक्षोवधान्तो न च मे प्रयासो व्यर्थः स वैरप्रतिमोचनाय।
अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः।।४१।।

तदेष सर्गः करुणार्द्रचित्तैर्न मे भवद्भिः प्रतिषेधनीयः।
यद्यर्थिता निर्हृतवाच्यशल्यान्प्राणान्मया धारयितुं चिरं वः।।४२।।

इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशम्।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धुमासीदनुमोदितुं वा।।४३।।

स लक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्वजन्मा विलोक्य लोकत्रयगीतकीर्तिः।
सौम्येति चाभाष्य यथार्थभाषी स्थितं निदेशे पृथगादिदेश।।४४।।

प्रजावती दोहदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव।
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजैनाम्।।४५।।

स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण पितुर्नियोगात्प्रहृतं द्विषद्वत्।
प्रत्यग्रहीदग्रजशासनं तदाज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।।४६।।

अथानुकूलश्रवणप्रतीतामत्रस्नुभिर्युक्तधुरं तुरङ्गैः ।
रथं सुमन्त्रप्रतिपन्नरश्मिमारोप्य वैदेहसुतां प्रतस्थे।।४७।।

सा नीयमाना रुचिरान्प्रदेशान्प्रियङ्करो मे प्रिय इत्यनन्दत्।
नाबुद्ध कल्पद्रुमतां विहाय जातं तमात्मन्यसिपत्रवृक्षम्।।४८।।

४१. राक्षसों के वध तक का मेरा प्रयत्न व्यर्थ ही गया हो ऐसी बात नहीं है; वह तो वैर का बदला लेने के लिये था। बदला लेने वाला सांप अपने को पैर से छूने वाले को क्या रक्त की इच्छा से काटता है?

४२. यदि आप लोग यह चाहते हों कि मेरे प्राणों से अपवाद का कांटा निकल जाय और मैं दीर्घकाल तक जीवित रहूं तो आप अपने मन को दया से द्रवित करके मेरे निश्चय का विरोध न करें।

४३. राजा जनक की राजकुमारी सीता के प्रति नितान्त रूखा व्यवहार वाले और इस प्रकार कहते हुए स्वामी को भाइयों में से कोई भी न तो रोकने में समर्थ था और न उनका समर्थन करने में।

४४. यथार्थ बात कहने वाले लक्ष्मण के बड़े भाई राम ने, जिनके यश का गान तीनों लोकों में होता है, आज्ञा-पालन में तत्पर लक्ष्मण को 'हे सौम्य!' कहकर सम्बोधित किया और अलग से आदेश दिया।

४५. गर्भकालीन मनोरथ को पूरा करने के लिये उत्सुक तुम्हारी भाभी तपोवनों में जाना चाहती हैं। रथ पर बैठाकर इसी बहाने तुम उन्हें वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुंचा दो।

४६. पिता के आदेश से भार्गव परशुराम ने माता पर शत्रु के समान प्रहार किया था इस बात को जानने वाले लक्ष्मण ने अपने बड़े भाई का वह आदेश ग्रहण किया, क्योंकि बड़ों की आज्ञा विचार करने के लिये नहीं होती।

४७. मन के अनुकूल बात को सुनकर विश्वासयुक्त विदेह राजकुमारी को उस रथ पर बैठाकर, जिसके जुए में सधे हुए घोड़े जुते थे और सुमंत्र ने जिनकी रास पकड़ रखी थी, लक्ष्मण ने प्रस्थान किया।

४८. सुन्दर प्रदेशों में होकर जानेवाली सीता यह समझकर, कि मेरे प्रिय मेरे लिये प्रिय कार्य करते हैं, प्रसन्न हुईं। उन्होंने यह नहीं जाना कि उनके प्रति वे कल्पवृक्ष का गुण छोड़कर तलवार की धार वाले वृक्ष बन गये हैं।
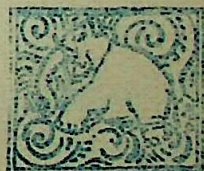
अगूह तस्याः पथि लक्ष्मणो यत्सव्येतरेण स्फुरता तदक्ष्णा ।
आख्यातमस्यै गुरु भावि दुःखमत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन ।।४९।।

सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा ।
राज्ञः शिवं सावरजस्य भूयादित्याशशंसे करणैरबाह्यैः ।।५०।।

गुरोर्नियोगाद्वनितां वनान्ते साध्वीं सुमित्रातनयो विहास्यन् ।
अवार्यतेवोत्थितवीचिहस्तैर्जह्नोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात् ।।५१।।

रथात्स यन्त्रा निगृहीतवाहात्तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य ।
गङ्गां निषादाहृतनौविशेषस्ततार सन्धामिव सत्यसन्धः ।।५२।।

अथ व्यवस्थापितवाक्कथञ्चित्सौमित्रिरन्तर्गतबाष्पकण्ठः ।
औत्पातिकं मेघ इवाश्मवर्षं महीपतेः शासनमुज्जगार ।।५३।।

ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना ।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम ।।५४।।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात्पतिरार्यवृत्तः ।
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै ददौ प्रवेशं जननी न तावत् ।।५५।।

सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः ।
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः ।।५६।।

४९. प्रिय के दर्शन के नितान्त अभाव के कारण होने वाले उनके भारी दुःख को, जिसे मार्ग में लक्ष्मण ने छिपा रखा था, उनकी फड़कती हुई दाहिनी आंख ने उनसे कह दिया ।

५०. अपशकुन से विषादयुक्त होने के कारण उनका मुख-कमल मुरझा गया और उन्होंने मन ही मन यह बारंबार मनाया कि भाइयों समेत राजा राम का कल्याण हो ।

५१. अपने बड़े भाई की आज्ञा से पतिव्रता स्त्री को वन की सीमा पर छोड़ते हुए सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण को सामने स्थित जह्नुऋषि की कन्या गंगा ने उठती हुई लहरों के रूप में अपने हाथों से मानों रोका ।

५२. सारथी द्वारा पकड़े गये घोड़ों वाले रथ से अपनी उन भाभी को रेती पर उतारकर सत्य-प्रतिज्ञ लक्ष्मण ने निषाद द्वारा लायी गयी विशेष नाव में बैठाकर अपनी प्रतिज्ञा के समान गंगा को पार किया ।

५३. लक्ष्मण का गला आंसुओं से भर आया था। उन्होंने जैसे-तैसे अपनी वाणी को साधकर पत्थर बरसाने वाले उत्पातकारी मेघ के समान राजा की आज्ञा कह सुनाई ।

५४. इसके बाद इस पराभव रूपी वायु से प्रताड़ित, आभूषण रूपी फूलों को गिराती हुई सीता अपनी जन्मदात्री पृथ्वी पर लता के समान सहसा गिर पड़ीं ।

५५. इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न होने वाले और उत्तम चरित वाले तुम्हारे पति ने तुम्हें अकस्मात् कैसे छोड़ दिया, मानों यही पूछती हुई माता पृथ्वी ने उन्हें अपने भीतर प्रवेश होने का मार्ग नहीं दिया ।

५६. मूर्च्छित हो जाने के कारण सीता ने दुःख का अनुभव नहीं किया, किन्तु जब प्राणों का संचार हुआ तो उनका अन्तःकरण तक जल उठा । सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण के प्रयत्नों से बेहोशी दूर होने पर सीता के लिये होश में आना और भी कष्टदायक हो गया ।

न चावदद्भर्तुरवर्णमार्या निराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि ।
आत्मानमेव स्थिरदुःखभाजं पुनः पुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द ।।५७।।

आश्वास्य रामावरजः सतीं तामाख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः ।
निघ्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्यं देवि क्षमस्वेति बभूव नम्रः ।।५८।।

सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं प्रीताऽस्मि ते सौम्य चिराय जीव ।
बिडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थं परवानसि त्वम् ।।५९।।

श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापितमत्प्रणामः ।
प्रजानिषेकं मयि वर्तमानं सूनोरनुध्यायत चेतसेति ।।६०।।

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ।।६१।।

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ।।६२।।

उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः ।
तदास्पदं प्राप्य तयातिरोषात्सोढाऽस्मि न त्वद्भवने वसन्ती ।।६३।।

निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात् ।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने ।।६४।।

५७. आर्या सीता ने निष्पाप होने पर भी अपने को निकालने वाले पति की निन्दा में कुछ न कहा, अपितु स्थायी दुःख का भाजन होने के कारण अपने आपको ही पाप का भागी मान बारम्बार अपने को ही कोसा ।

५८. राम के छोटे भाई लक्ष्मण ने उन सती सीता को आश्वासन देकर बाल्मीकि के आश्रम का मार्ग बताया और यह कहकर कि हे देवी, भाई की आज्ञा से मुझ पराधीन द्वारा की गई रुखाई को क्षमा कीजिये, प्रणाम करने को झुक गये ।

५९. सीता, लक्ष्मण को उठाकर बोलीं, हे सौम्य, मैं तुमसे प्रसन्न हूं, तुम चिरायु बनो, क्योंकि तुम अपने भाई के वैसे ही अधीन हो जैसे इन्द्र के अधीन विष्णु ।

६०. मेरी सासों से यथाक्रम मेरा प्रणाम निवेदन करके यह कहना कि वे अपने मन में मुझमें वर्तमान अपने पुत्र के गर्भ के कल्याण की कामना करें।

६१. उस राजा से तुम जाकर मेरा यह वचन कहना कि मैं उनके सामने अग्नि में शुद्ध हुई थी फिर भी लोकनिन्दा सुनकर उन्होंने मुझे त्याग दिया क्या यह उनके इस प्रसिद्ध कुल के लिये उचित है ?

६२. यदि ऐसा नहीं है तो आपकी बुद्धि कल्याण करनेवाली है मेरे प्रति किये गये आपके मनमाने व्यवहार में मुझे शंका नहीं करनी चाहिये। दूसरे जन्मों में किये गये मेरे पापों के देर से निकले हुए परिणाम का यह वज्र निर्घोष है ।

६३. पहले प्राप्त हुई राज्यलक्ष्मी को त्याग कर तुम मेरे साथ वन गये थे। इसीलिये, अत्यन्त क्रोध में भर जाने के कारण तुम्हारे भवन में मेरा रहना उसे असह्य हो गया ।

६४. राक्षसों द्वारा पीड़ित पतियों वाली तपस्विनियों के लिये मैं आपकी कृपा से शरण देने वाली बनी थी । आपके प्रकाशमान होते हुए भी किसी दूसरे के पास शरण के लिये मैं कैसे जाऊंगी ?

किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ।।६५।।

साऽहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ।।६६।।

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।
निर्वासिताऽप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ।।६७।।

तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते ।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः ।।६८।।

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः ।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि ।।६९।।

तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।।७०।।

तमश्रु नेत्रावरणं प्रमृज्य सीता विलापाद्विरता ववन्दे ।
तस्यै मुनिर्दोहदलिङ्गदर्शी दाश्वान्सुपुत्राशिषमित्युवाच ।।७१।।

जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्याऽपवादक्षुभितेन भर्त्रा ।
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्ताऽसि वैदेहि पितुर्निकेतम् ।।७२।।

६५. यदि मेरे गर्भ में विद्यमान तुम्हारा तेज, जिसकी रक्षा करना उचित है, मेरे लिये विघ्न न बन जाता तो तुम्हारे अत्यन्त वियोग से निष्फल अपने इस तुच्छ जीवन की ही मैं उपेक्षा कर लेती।

६६. सन्तान का प्रसव होने के अनन्तर मैं सूर्य में दृष्टि लगाकर तपस्या करने की चेष्टा करूंगी जिससे फिर दूसरे जन्म में तुम्हीं मेरे स्वामी तो होओ पर तुमसे मेरा वियोग न हो।

६७. मनु ने राजा का यही धर्म बताया है कि वह वर्ण और आश्रम का पालन करे। यद्यपि आपने मुझे निर्वासित कर दिया है फिर भी साधारण तपस्वी के रूप में आपको मेरी देखभाल करनी ही चाहिये।

६८. ऐसा ही होगा कहकर सीता के वचन को ग्रहण करके राम के छोटे भाई लक्ष्मण के आखों से ओझल हो जाने पर सीता दु:ख के अत्यधिक भार के कारण भयभीत कुररी पक्षी की नाईं फिर फूट-फूट कर रोने लगी।

६९. मयूरों ने नृत्य, वृक्षों ने फूल और हरिनियों ने सामने पड़े हुए कुश को छोड़ दिया। सीता के साथ दु:ख में सहानुभूति हो जाने के कारण वन में भी अत्यधिक रोना मच गया।

७०. निषाद के द्वारा बांधे गये पक्षी को देखकर उठे हुए जिसके शोक ने श्लोक का रूप धारण कर लिया था, कुश और ईंधन लेने के लिये गये हुए वही कवि, रोने के शब्द का पीछा करते हुए सीता के पास जा पहुंचे।

७१. सीता ने विलाप करना छोड़कर आंखों को बन्द करने वाले अपने आंसुओं को पोंछा और उन्हें प्रणाम किया। गर्भ के चिन्ह देखकर मुनि ने उन्हें सुपुत्र होने का आशीर्वाद दिया और इस प्रकार बोले—

७२. झूठी निन्दा से क्षुब्ध होकर स्वामी ने तुम्हें त्याग दिया है यह मैंने समाधि की दृष्टि से जान लिया है। हे वैदेही, तुम वस्तुत: दूसरे स्थान में स्थित अपने पिता के घर में ही आ गईं इसलिये दु:खी न होओ।

उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि ।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे ।।७३।।

तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे सतां भवोच्छेदकरः पिता ते।
धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां किं तन्न येनासि ममानुकम्प्या ।।७४।।

तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे तपोवने वीतभया वसास्मिन्।
इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेरपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते ।।७५।।

अशून्यतीरां मुनिसन्निवेशैस्तमोपहन्त्रीं तमसां वगाह्य ।
तत्सैकतोत्सङ्गबलिक्रियाभिः सम्पत्स्यते ते मनसः प्रसादः ।।७६।।

पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यो बीजं च बालेयमकृष्टरोहि ।
विनोदयिष्यन्ति नवाभिषङ्गामुदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वाम् ।।७७।।

पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्संवर्धयन्ती स्वबलानुरूपैः ।
असंशयं प्राक् तनयोपपत्तेः स्तनन्धयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम् ।।७८।।

अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं तां वाल्मीकिरादाय दयाऽर्द्रचेताः।
सायं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वं स्वमाश्रमं शान्तमृगं निनाय ।।७९।।

तामर्पयामास च शोकदीनां तदागमप्रीतिषु तापसीषु ।
निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु ।।८०।।
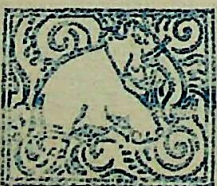
७३. तीनों लोकों के कांटे रावण को निकाल फेंकने वाले, अपनी प्रतिज्ञा के पक्के और आत्म-प्रशंसा से दूर रहने वाले भरत के बड़े भाई राम पर तुम्हारे प्रति बिना किसी कारण के अनुचित व्यवहार करने के कारण मुझे रोष है ही।

७४. महान् यशस्वी तुम्हारे श्वसुर मेरे मित्र थे, तुम्हारे पिता सज्जनों को जीवन-मरण के बन्धन से छुड़ाने वाले हैं और पति को देवता मानने वाली स्त्रियों में तुम्हारा सबसे ऊंचा स्थान है, तुममें ऐसी क्या बात नहीं है जिससे तुम पर मेरी कृपा न हो ?

७५. इस तपोवन में तुम निर्भय होकर रहो जहां तपस्वियों के सम्पर्क में आकर जंगली पशु भी विनयशील हो जाते हैं। तुम बिना क्लेश के सन्तान को जन्म दोगी और तुम्हारी सन्तान के संस्कार की विधियां यहीं सम्पन्न होंगी।

७६. मुनियों की कुटियों से भरे हुए तटवाली तथा शोक और पाप को दूर करने वाली तमसा नदी में स्नान करके उसकी रेती भरी गोद में पूजा-अर्चा करने से तुम्हारे मन में प्रसन्नता का उदय होगा।

७७. अलग अलग ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फूलों और फलों तथा बिना जोते पैदा होने वाले और पूजा के काम आने वाले बीजों को इकट्ठा करती हुई उदार वाणी वाली मुनियों की कन्यायें तुम्हें इस नये दुःख से दुखी पाकर तुम्हारा मन बहलायेंगी।

७८. अपने बल के अनुसार पानी के घड़ों से आश्रम के छोटे-छोटे वृक्षों को बढ़ाती हुई तुम पुत्र प्राप्ति से पूर्व ही निश्चय ही स्तन-पान करने वाले शिशुओं का प्रेम प्राप्त करोगी।

७९. सीता ने दया से द्रवित हृदय वाल्मीकि ऋषि के अनुग्रह को धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया और सायंकाल वे उन्हें शान्त मृगों वाले अपने आश्रम में लिवा लाये जहां यज्ञ की वेदी के आसपास मृग बैठे हुए थे।

८०. शोक से दुखी सीता को उन्होंने, उन तपस्विनियों को, जिनके हृदय में उनके आने से प्रेम उमड़ आया था, उसी प्रकार सौंप दिया, जैसे पितरों द्वारा सार ग्रहण कर चुकने के बाद अमावस्या का समय चन्द्रमा की अन्तिम कला को औषधियों को सौंप देता है।

ता इङ्गुदीस्नेहकृतप्रदीपमास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः ।
तस्यै सपर्यानुपदं दिनान्ते निवासहेतोरुटजं वितेरुः ॥८१॥

तत्राभिषेकप्रयता वसन्ती प्रयुक्तपूजा विधिनाऽतिथिभ्यः ।
वन्येन सा वल्कलिनी शरीरं पत्युः प्रजासन्ततये बभार ॥८२॥

अपि प्रभुः सानुशयोऽधुना स्यात्किमुत्सुकः शक्रजितोऽपि हन्ता ।
शशंस सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय ॥८३॥

बभूव रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः ।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्तः ॥८४॥

निगृह्य शोकं स्वयमेव धीमान्वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः ।
सभ्रातृसाधारणभोगमृद्धं राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास ॥८५॥

तामेक भार्यां परिवादभीरोः साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य ।
वक्षस्यसङ्घट्टसुखं वसन्ती रेजे सपत्नीरहितेव लक्ष्मीः ॥८६॥

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार ।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्तुः
सादुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे ॥८७॥

---

८१. उन तपस्विनियों ने पूजा के वाद सायंकाल सीता को निवास के लिये ऐसी कुटी दी जिसमें इंगुदी के तेल का दीपक जल रहा था और जिसके भीतर पवित्र मृगचर्म की शय्या बिछी हुई थी।

८२. सीता उस आश्रम में स्नान के नियम का पालन करती हुई और अतिथियों की विधिपूर्वक पूजा करती हुई निवास करने लगीं। वल्कल का वस्त्र पहनकर अपने पति की संतान के लिये उन्होंने वन में उत्पन्न होने वाले कन्द-मूल आदि ग्रहण करके अपने शरीर को धारण किया।

८३. क्या राजा अब भी अनुतापयुक्त होंगे यह जानने की उत्सुकता सहित इन्द्रजयी मेघनाद के मारने वाले लक्ष्मण ने सीता के विलाप पर्यन्त किये गये आदेश पालन का वृतान्त बड़े भाई को कह सुनाया?

८४. आंसू से भरे राम की स्थिति सहसा पाला बरसाने वाले पौष मास के चन्द्रमा के समान हो गयी। अपवाद के भय से उन्होंने जनक की पुत्री को घर से निकाला था न कि मन से।

८५. बुद्धिमान् और वर्णों तथा आश्रमों की देखभाल में जागरूक रजोगुण से मुक्त मन वाले राम ने स्वयं ही शोक को दबाकर भाइयों के साथ साधारण रूप से शरीर चलाने भर के लिये सुविधाओं का भोग करते हुए उस समृद्ध राज्य पर शासन किया।

८६. निन्दा से भयभीत होने के कारण एकमात्र पतिव्रता पत्नी को छोड़ने वाले राजा की छाती पर बिना किसी संघर्ष के अकेले सुख से निवास करती हुई राज्यलक्ष्मी मानों पत्नी रहित होकर शोभित हुई।

८७. दशमुख रावण के शत्रु राम ने सीता का त्याग करके दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया और उनकी प्रतिमूर्ति के साथ ही उन्होंने यज्ञ किये। स्वामी के इस वृतान्त को सुनकर सीता ने किसी प्रकार अपने परित्याग किये जाने के दुःख को सहन किया।

पंचदशः सर्गः

कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम् ।
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम् ॥१॥

लवणेन विलुप्तेज्यास्तामिस्रेण तमभ्ययुः ।
मुनयो यमुनाभाजः शरण्यं शरणार्थिनः ॥२॥

अवेक्ष्य रामं ते तस्मिन्नप्रजह्रुः स्वतेजसा ।
त्राणाभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम् ॥३॥

प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम् ।
धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः ॥४॥

ते रामाय वधोपायमाचख्युर्विबुधद्विषः ।
दुर्जयो लवणः शूली विशूलः प्रार्थ्यतामिति ॥५॥

आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः ।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात् ॥६॥

यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परन्तपः ।
अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः ॥७॥

अग्रजेन प्रयुक्ताशीस्ततो दाशरथी रथी ।
ययौ वनस्थलीः पश्यन्पुष्पिताः सुरभीरभीः ॥८॥

पन्द्रहवां सर्ग

१. सीता का परित्याग करके पृथ्वी का पालन करने वाले राजा राम ने रत्नों की खान और समुद्र की मेखलावाली केवल पृथ्वी का ही भोग किया।

२. यमुना तट पर निवास करने वाले मुनि, जिनके यज्ञों का विनाश लवण नामक राक्षस ने किया था, शरण के लिये शरण देने में समर्थ राम के पास आये।

३. उन्होंने राम को देखकर अपने तेज से उस राक्षस को नहीं मारा क्योंकि रक्षा के अभाव में ही वे लोग शाप को अपना अस्त्र बनाकर अपनी तपस्या का व्यय करते हैं।

४. काकुत्स्थ राम ने उन मुनियों से विघ्न का प्रतिकार करने की प्रतिज्ञा की। पृथ्वी पर शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले विष्णु का अवतार धर्म के संरक्षण के लिये ही हुआ था।

५. उन ऋषियों ने राम से देवताओं के शत्रु राक्षस लवण के मारने का उपाय बताते हुए कहा कि बरछी धारण करने वाला वह लवण कठिनाई से जीता जा सकता है। उस पर तभी आक्रमण कीजिये जब उसके हाथ में बरछी न हो।

६. इसके बाद राम ने उनके कल्याण के लिये शत्रुघ्न को आदेश दिया; मानों शत्रु के वध से वे उनके नाम को सार्थक करना चाहते हों।

७. जैसे अपवाद सामान्य नियम को पलट देने में समर्थ होता है उसी प्रकार शत्रु को कष्ट देने वाला रघुवंशियों में कोई भी व्यक्ति शत्रु को पराजित कर सकता था।

८. इसके बाद अपने बड़े भाई राम से आशीर्वाद प्राप्त करके दशरथ के निर्भीक पुत्र शत्रुघ्न ने रथ पर सवार हो फूलों से भरे सुगंधयुक्त उपवनों को देखते हुए प्रस्थान किया।

रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थसिद्धये ।
पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत् ॥९॥

आदिष्टवर्त्मा मुनिभिः स गच्छंस्तपतां वरः ।
विरराज रथप्रष्ठैर्बालखिल्यैरिवांशुमान् ॥१०॥

तस्य मार्गवशादेका बभूव वसतिर्यतः ।
रथस्वनोत्कण्ठमृगे वाल्मीकीये तपोवने ॥११॥

तमृषिः पूजयामास कुमारं क्लान्तवाहनम् ।
तपप्रभावसिद्धाभिर्विशेषप्रतिपत्तिभिः ॥१२॥

तस्यामेवास्य यामिन्यामन्तर्वत्नी प्रजावती ।
सुतावसूत सम्पन्नौ कोशदण्डाविव क्षितिः ॥१३॥

सन्तानश्रवणाद् भ्रातुः सौमित्रिः सौमनस्यवान् ।
प्रांजलिर्मुनिमामन्त्र्य प्रातर्युक्तरथो ययौ ॥१४॥

स च प्राप मधूपघ्नं कुम्भीनस्याश्च कुक्षिजः ।
वनात्करमिवादाय सत्वराशिमुपस्थितः ॥१५ ॥

धूमधूम्रो वसागन्धी ज्वालाबभ्रु शिरोरुहः ।
क्रव्याद्गणपरीवारश्चिताऽग्निरिव जङ्गमः ॥१६॥

९. राम के आदेश से उनके अर्थ की सिद्धि के लिये सेना उनके पीछे पीछे गई जैसे अध्ययन के लिये प्रयोग की जाने वाली इङ धातु के पीछे अधि उपसर्ग लगा रहता है ।

१०. रथ के आगे-आगे चलने वाले ऋषि उनका मार्ग बता रहे थे। प्रकाशमान लोगों में श्रेष्ठ शत्रुघ्न इस प्रकार चलते हुए ऐसे शोभायमान हुए जैसे बालखिल्य ऋषियों से स्वयं सूर्य ।

११. शत्रुघ्न ने जाते हुए मार्ग में पड़ने के कारण वाल्मीकि के उस आश्रम में जहां रथ का शब्द सुन मृग अपना सिर उठाकर देख रहे थे, एक रात के लिये निवास किया ।

१२. ऋषि वाल्मीकि ने अपनी तपस्या के प्रभाव से प्राप्त विशेष सामग्री से थके हुए घोड़ों वाले उन राजकुमार शत्रुघ्न का सत्कार किया ।

१३. उसी रात को उन की गर्भवती भाभी ने दो पुत्रों को जन्म दिया; मानों पृथ्वी ने सम्पन्न कोष और दण्ड को जन्म दिया हो ।

१४. बड़े भाई को सन्तान हुई यह सुनकर प्रेममय हृदयवाले सुमित्रा के पुत्र शत्रुघ्न ने हाथ जोड़कर मुनि से आज्ञा मांगी और प्रातःकाल रथ तैयार करके प्रस्थान किया ।

१५. जब वे मधूपघ्न नामक लवण राक्षस की राजधानी में पहुंचे तो उसी समय कुम्भीनसी के गर्भ से उत्पन्न वह राक्षस कर के समान वन से प्राप्त जंगली जानवरों का समूह लेकर आ पहुंचा ।

१६. धुएं के समान लाल और काले रंग का, चरबी के समान गन्ध वाला, आग की लपट के समान पीले-पीले बालों वाला और राक्षसों से घिरा हुआ वह चलती-फिरती चिता के समान जान पड़ता था ।

अपशूलं तमासाद्य लवणं लक्ष्मणानुज : ।
रुरोध सम्मुखीनो हि जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् ।। १७ ।।

नातिपर्याप्तमालक्ष्य मत्कुक्षेरद्य भोजनम् ।
दिष्ट्या त्वमसि मे धात्रा भीतेनेवोपपादितः ।। १८ ।।

इति सन्तर्ज्य शत्रुघ्नं राक्षसस्तज्जिघांसया ।
प्रांशुमुत्पाटयामास मुस्तास्तम्बमिव द्रुमम् ।। १९ ।।

सौमित्रेर्निशितैर्बाणैरन्तरा शकलीकृतः ।
गात्रं पुष्परजः प्राप न शाखी नैरृतेरितः ।। २० ।।

विनाशात्तस्य वृक्षस्य रक्षस्तस्मै महोपलम् ।
प्रजिघाय कृतान्तस्य मुष्टिं पृथगिव स्थितम् ।।२१ ।।

ऐन्द्रमस्त्रमुपादाय शत्रुघ्नेन स ताडितः ।
सिकतात्वादपि परां प्रपेदे परमाणुताम् ।। २२ ।।

तमुपाद्रवदुद्यम्य दक्षिणं दोर्निशाचर : ।
एकताल इवोत्पातपवनप्रेरितो गिरि : ।। २३ ।।

कार्ष्णेन पत्रिणा शत्रु : स भिन्नहृदय : पतन् ।
आनिनाय भुवः कम्पं जहाराश्रमवासिनाम् ।। २४ ।।

१७. लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न ने उसे बिना बरछी का पाकर रोक लिया। दुर्बलता को देखकर आक्रमण करने वालों के लिये तो विजय सामने रहती ही है।

१८-१९. मेरे पेट के लिये आज के भोजन को बहुत पर्याप्त न देखकर विधाता ने मानों डरकर भाग्य से तुम्हें भेज दिया। इस प्रकार शत्रुघ्न को धमकाते हुए उस राक्षस ने उन्हें मारने की इच्छा से ऊंचे वृक्ष को मोथे के डंठल की तरह उखाड़ लिया।

२०. शत्रुघ्न के तीखे बाणों से बीच में ही खंड-खंड किया गया और राक्षस द्वारा फेंका हुआ वह वृक्ष उनके अंग पर तो न गिरा पर उसके फूलों का पराग उनपर अवश्य गिरा।

२१. उस वृक्ष के नष्ट होने पर उस राक्षस ने उन पर बड़ा-सा पत्थर फेंका जो ऐसा लगता था मानों काल की अलग की गई मुट्ठी हो।

२२. शत्रुघ्न ने जब उस अस्त्र को लेकर उसे मारा जिसका अधिष्ठातृ देवता इन्द्र है तो उसके रेत से भी छोटे-छोटे टुकड़े हो गये।

२३. भयंकर तूफान की वायु से प्रेरित एक ही तालवृक्ष वाले पर्वत के समान वह राक्षस अपनी दाहिनी भुजा उठाकर उन पर दौड़ा।

२४. वैष्णव बाण से उस शत्रु लवण का हृदय खंड-खंड हो गया और गिरते हुए यद्यपि उसने पृथ्वी को हिला दिया पर उसके साथ ही वह आश्रम-वासियों का कम्पन भी हर ले गया।

वयसां पङ्क्तयः पेतुर्हतस्योपरि विद्विषः ।
तत्प्रतिद्वन्दिनो मूर्ध्नि दिव्याः कुसुमवृष्टयः ।। २५ ।।

स हत्वा लवणं वीरस्तदा मेने महौजसः ।
भ्रातुः सोदर्यमात्मानमिन्द्रजिद्वधशोभिनः ।। २६ ।।

तस्य संस्तूयमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः ।
शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीडयाऽवनतं शिरः ।। २७ ।।

उपकूलं स कालिन्द्याः पुरीं पौरुषभूषणः ।
निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मथुरां मधुराकृतिः ।। २८ ।।

या सौराज्यप्रकाशाभिर्बभौ पौरविभूतिभिः ।
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशिता ।। २९ ।।

तत्र सौधगतः पश्यन्यमुनां चक्रवाकिनीम् ।
हैमभक्तिमतीं भूमेः प्रवेणीमिव पिप्रिये ।। ३० ।।

सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत् ।
संचस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि ।। ३१।।

स तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तदाख्यया ।
कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः ।। ३२ ।।

२५. मारे गये उस शत्रु के ऊपर मांसभक्षी पक्षियों के दल टूट पड़े और उसके प्रदिद्वन्द्वी शत्रुघ्न के सिर पर स्वर्गीय फूलों की वृष्टि हुई।

२६. लवण को मारकर उस समय महान् तेजस्वी वीर शत्रुघ्न ने अपने आपको इन्द्र को जीतने वाले मेघनाद के वध से शोभा पाने वाले भाई लक्ष्मण का सहोदर होना सार्थक माना।

२७. जिनके मनोरथ पूर्ण हो गये थे उन तपस्वियों द्वारा स्तुति किये जाने वाले शत्रुघ्न का पराक्रम से उन्नत और लज्जा से अवनत सिर शोभायमान हुआ।

२८. सुन्दर आकृति वाले शत्रुघ्न ने, जिनके लिये अपना पौरुष ही भूषण था और विषयों में जिनकी रुचि नहीं थी, यमुना के तट पर मथुरा नगरी का निर्माण किया।

२९. अच्छे शासन के कारण प्रकाशमान नागरिकों के ऐश्वर्य से वह ऐसी शोभायमान हुई मानों स्वर्ग में निवास करने वालों की संख्या में वृद्धि होने से बाहर निकले हुए लोगों का वहां उपनिवेश बना दिया गया हो।

३०. वहां अपने प्रासाद पर चढ़कर चकवों से युक्त यमुना को सोने के आभूषणों से सजी पृथ्वी की वेणी के रूप में देखकर शत्रुघ्न प्रसन्न हुए।

३१. दशरथ और जनक दोनों के मित्र ऋषि वाल्मीकि ने दोनों के प्रति प्रेम होने के कारण सीता के पुत्रों का विधिपूर्वक संस्कार किया।

३२. कवि वाल्मीकि ने कुश और गाय की पूंछ के बाल से गर्भ के समय का कष्ट दूर होने के कारण सीता के पुत्रों का नाम कुश और लव रखा।

साङ्गं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्तशैशवौ ।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम् ।। ३३ ।।

रामस्य मधुरं वृत्तं गायन्तौ मातुरग्रतः ।
तद्वियोगव्यथां किंचिच्छिथिलीचक्रतुः सुतौ ।। ३४ ।।

इतरेऽपि रघोर्वंश्यास्त्रयस्त्रेताऽग्नितेजसः ।
तद्योगात्पतिवत्नीषु पत्नीष्वासन्द्विसूनव : ।। ३५ ।।

शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः सुबाहौ च बहुश्रुते ।
मधुराविदिशे सून्वोर्निदधे पूर्वजोत्सुक : ।। ३६ ।।

भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात् ।
मैथिलीतलयोद्गीतनिःस्पन्दमृगमाश्रमम् ।। ३७ ।।

वशी विवेश चायोध्यां रथ्यासंस्कारशोभिनीम् ।
लवणस्य वधात्पौरैरीक्षितोऽत्यन्तगौरवम् ।। ३८ ।।

स ददर्श सभामध्ये सभासद्भिरुपस्थितम् ।
रामं सीतापरित्यागादसामान्यपतिं भुवः ।। ३९ ।।

तमभ्यनन्दत्प्रणतं लवणान्तकमग्रजः ।
कालनेमिवधात्प्रीतस्तुराषाडिव शार्ङ्गिणम् ।। ४० ।।

३३. वचपन के कुछ-कुछ बीतते ही उन्हें अंगों सहित वेद पढ़ाकर कवियों के लिये पहले सोपान के रूप में उनसे अपनी कृति रामायण गवाई।

३४. राम के मधुर चरित्र को माता के सामने गाते हुए पुत्रों ने उनकी वियोग की व्यथा को कुछ हल्का किया।

३५. रघु के वंश में उत्पन्न तीनों प्रकार की अग्नियों के समान तेज वाले अन्य तीनों भाइयों को भी अपनी सौभाग्यवती पत्नियों से दो-दो और पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए।

३६. अपने बड़े भाई के प्रेमी शत्रुघ्न ने अपने विद्वान् पुत्रों शत्रुघाती और सुबाहु पर क्रमशः मथुरा और विदिशा नगरियों का भार डाल दिया।

३७. फिर ऋषि वाल्मीकि की तपस्या की हानि न हो, यह सोचकर शत्रुघ्न जानकी के पुत्रों के गान से निश्चल बने हुए हिरनों वाले आश्रम का अपना मार्ग छोड़कर निकल गये।

३८. लवण राक्षस को मारने के कारण नगर निवासियों द्वारा अत्यन्त गौरवपूर्ण दृष्टि से देखे गये शत्रुघ्न ने अयोध्या में प्रवेश किया जो अपनी गलियों की सजावट से शोभायमान हो रही थी।

३९. शत्रुघ्न ने सभा के बीच में सभा के सदस्यों द्वारा सेवित राम को देखा जो सीता का परित्याग करके पृथ्वी के असाधारण स्वामी हो गये थे।

४०. बड़े भाई राम ने प्रणाम करने के लिये झुके हुए लवण का वध करने वाले शत्रुघ्न का उसी प्रकार अभिनन्दन किया जैसे कालनेमि का वध करने से प्रसन्न होकर इन्द्र ने विष्णु का अभिनन्दन किया था।

स पृष्टः सर्वतो वार्तमाख्यद्राज्ञे न सन्ततिम् ।
प्रत्यर्पयिष्यतः काले कवेराद्यस्य शासनात् ।। ४१ ।।

अथ जानपदो विप्रः शिशुमप्राप्तयौवनम् ।
अवतार्याङ्कशय्यास्थं द्वारि चक्रन्द भूपतेः ।। ४२ ।।

शोचनीयाऽसि वसुधे या त्वं दशरथाच्च्युता ।
रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात् कष्टतरं गता ।। ४३ ।।

श्रुत्वा तस्य शुचोर्हेतुं गोप्ता जिह्राय राघवः ।
न ह्यकालभवो मृत्युरिक्ष्वाकुपदमस्पृशत् ।। ४४ ।।

स मुहूर्तं क्षमस्वेति द्विजमाश्वास्य दुःखितम् ।
यानं सस्मार कौबेरं वैवस्वतजिगीषया ।। ४५ ।।

आत्तशस्त्रस्तदध्यास्य प्रस्थितः स रघूद्वहः ।
उच्चचार पुरस्तस्य गूढरूपा सरस्वती ।। ४६ ।।

राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते ।
तमन्विष्य प्रशमयेर्भवितासि ततः कृती ।। ४७ ।।

इत्याप्तवचनाद्रामो विनेष्यन्वर्णविक्रियाम् ।
दिशः पपात पत्रेण वेगनिष्कम्पकेतुना ।। ४८ ।।

४१. शत्रुघ्न ने राजा रामचन्द्र के पूछने पर सब ओर का हाल कह सुनाया किन्तु समय आने पर सन्तान को सौंपने की इच्छा वाले आदि कवि की आज्ञा से उन्होंने संतान की बात नहीं बताई।

४२. तब जनपद निवासी कोई ब्राह्मण अपने उस बालक को जो युवावस्था तक नहीं पहुंच सका था और जो उसकी गोद में लेटा हुआ था राजा के द्वार पर उसे उतारकर रोने लगा।

४३. हे ऐश्वर्य को धारण करने वाली धरती, तुझ पर दया आती है जो तू दशरथ के हाथ से निकलकर राम के हाथ में पड़ गई और तेरी दशा दिनों दिन कष्टमय होती जा रही है।

४४. उसके शोक के कारण को सुनकर रघुवंशी राजा राम लज्जित हो गये क्योंकि अकाल मृत्यु ने इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के राज्य को कभी स्पर्श भी नहीं किया था।

४५. दुःखी ब्राह्मण को उन्होंने क्षणभर के लिये क्षमा कीजिये कहकर धैर्य बंधाया और यमराज को जीतने की इच्छा से कुबेर के विमान का स्मरण किया।

४६. शस्त्रों से सज्जित हो विमान पर बैठ रघुवंश को आगे ले जाने वाले राम ने प्रस्थान किया। उसी समय छद्मरूप में उपस्थित होकर सरस्वती बोली—

४७. हे राजा, तुम्हारी प्रजा में कोई अनुचित आचरण हो रहा है। उसे ढूंढ़कर उसको शान्त करो। तुम उसमें सफल होओगे।

४८. इस प्रामाणिक वचन को सुनकर वर्ण सम्बन्धी अनुचित आचार को दूर करने के लिये तेज गति से चलने के कारण स्थिर पताका वाले विमान से वे दिशाओं में दौड़ने लगे।

अथ धूमाभिताम्राक्षं वृक्षशाखाऽवलम्बिनम् ।
ददर्श कञ्चिदैक्ष्वाकस्तपस्यन्तमधोमुखम् ।। ४९ ।।

पृष्टनामान्वयो राज्ञा स किलाचष्ट धूमपः ।
आत्मानं शम्बुकं नाम शूद्रं सुरपदार्थिनम् ।। ५० ।।

तपस्यनधिकारित्वात्प्रजानां तमघावहम् ।
शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य नियन्ता शस्त्रमाददे ।। ५१ ।।

स तद्वक्त्रं हिमक्लिष्टकिंजल्कमिव पंकजम् ।
ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु कण्ठनालादपातयत् ।। ५२ ।।

कृतदण्डः स्वयं राज्ञा लेभे शूद्रः सतां गतिम् ।
तपसा दुश्चरेणापि न स्वमार्गविलङ्घिना ।। ५३ ।।

रघुनाथोऽप्यगस्त्येन मार्गसन्दर्शितात्मना ।
महौजसा संयुयुजे शरत्काल इवेन्दुना ।। ५४ ।।

कुम्भयोनिरलंकारं तस्मै दिव्यपरिग्रहम् ।
ददौ दत्तंसमुद्रेण पीतेनेवात्मनिष्क्रयम् ।। ५५ ।।

तंदधन्मैथिलीकण्ठनिर्व्यापारेण बाहुना ।
पश्चान्निववृते रामः प्राक्परासुर्द्विजात्मजः ।। ५६ ।।

४९. तब इक्ष्वाकुवंशीय राम ने पेड़ की शाखा से लटके हुए और धुएं से लाल-लाल आंखों वाले किसी व्यक्ति को सिर नीचा करके तपस्या करते हुए देखा ।

५०. राजा द्वारा नाम और वंश पूछने पर उस धुआं पीने वाले ने बताया कि मैं स्वर्ग प्राप्त करने का अभिलाषी शम्बुक नामक शूद्र हूं ।

५१. तपस्या का अधिकारी न होने से प्रजा के लिये संकट उपस्थित करने वाले का सिर काटने का निश्चय करके नियन्त्रण रखने वाले राम ने शस्त्र उठाया ।

५२. चिनगारियों से जलकर साफ दाढ़ी-मूंछों वाले उसके मुख को जो पाले से मारे गये क्षीण कलेवर वाले कमल के समान हो रहा था उन्होंने कंठ, रूपी नाल से काटकर गिरा दिया ।

५३. राजा द्वारा स्वयं दंडित होकर उस शूद्र को सज्जनों की वह गति प्राप्त हुई जो अपने रास्ते को छोड़कर की जाने वाली कठिन तपस्या से प्राप्त नहीं हो सकती थी ।

५४. रास्ते में स्वयं ही दिखाई देने वाले महान् तेजस्वी अगस्त्य से रघुवंशियों के स्वामी रामचन्द्र वैसे ही मिले जैसे शरत्काल चन्द्रमा से मिलता है ।

५५. कुंभयोनि ऋषि अगस्त्य ने पिये हुए समुद्र द्वारा मानों अपने छुटकारे के मूल्य के रूप में दिये गये और देवताओं द्वारा धारण करने योग्य आभूषण उन्हें दिये ।

५६. सीता के गले में लगने से वंचित अपनी भुजा में उस आभूषण को धारण करके राम जब तक लौटे तब तक ब्राह्मण का मरा हुआ पुत्र वापस जा चुका था।

तस्य पूर्वोदितां निन्दां द्विजः पुत्रसमागतः ।
स्तुत्या निवर्तयामास त्रातुर्वैवस्वतादपि ।। ५७ ।।

तमध्वराय मुक्ताश्वं रक्षःकपिनरेश्वराः ।
मेघाः सस्यमिवाम्भोभिरभ्यवर्षन्नुपायनैः ।। ५८ ।।

दिग्भ्यो निमन्त्रिताश्चैनमभिजग्मुर्महर्षयः ।
न भौमान्येव धिष्ण्यानि हित्वा ज्योतिर्मयान्यपि ।। ५९ ।।

उपशल्यनिविष्टैस्तैश्चतुर्द्वारमुखी बभौ ।
अयोध्या सृष्टलोकेव सद्यः पैतामही तनुः ।। ६० ।।

श्लाघ्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्युः प्राग्वंशवासिनः ।
अनन्यजानेः सैवासीद्यस्माज्जाया हिरण्मयी ।। ६१ ।।

विधेरधिकसम्भारस्ततः प्रववृते मखः ।
आसन्यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः ।। ६२ ।।

अथ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमितस्ततः ।
मैथिलेयौ कुशलवौ जगतुर्गुरुचोदितौ ।। ६३ ।।

वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम् ।। ६४ ।।

५७. ब्राह्मण ने अपने पुत्र को पाकर यमराज से भी उसे बचाने वाले राम की पहले की गई निन्दा को स्तुति में बदल दिया।

५८. अश्वमेध यज्ञ के लिये घोड़ा छोड़ने पर राक्षस, वानर और मनुष्यों के राजाओं ने उन पर उसी प्रकार भेंट और उपहारों की वर्षा की जिस प्रकार मेघ फसल पर जल बरसाते हैं।

५९. निमन्त्रण पाकर बड़े-बड़े ऋषि अपने पृथ्वी लोक के ही नहीं, अपितु नक्षत्र लोक के निवास को छोड़-छोड़कर विभिन्न दिशाओं से राम के पास आये।

६०. नगर के बाहरी भाग में ठहरे हुए उन महर्षियों से चार दरवाजों के रूप में विद्यमान अपने चार मुखों से अयोध्या ऐसी शोभित हुई मानों वह तत्काल ही सृष्टि की रचना समाप्त करने वाली ब्रह्मा की मूर्ति हो।

६१. जानकी का त्याग भी प्रशंसा के योग्य था क्योंकि यज्ञशाला विशेष में रहने वाले तथा किसी और से विवाह न करने वाले उनके पति रामचन्द्र के लिये सोने की प्रतिमा के रूप में वही एकमात्र पत्नी रहीं।

६२. तब शास्त्र में बतायी गयी सामग्री से भी अधिक सामग्री वाला यज्ञ आरंभ हुआ जिसकी रक्षा उसे करने में बाधा उत्पन्न करने वाले राक्षस ही कर रहे थे।

६३. जानकी के पुत्र लव और कुश ने गुरु की प्रेरणा से वाल्मीकि द्वारा पहले से ज्ञात रामायण का घूम-घूम कर वहां गान किया।

६४. राम का चरित्र जिसका विषय, वाल्मीकि जिसके रचयिता और किन्नरों जैसे कण्ठ वाले लव-कुश जिसके गाने वाले हों उसे सुनने वालों के मन को हरने के लिये और क्या चाहिये था?

रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम् ।
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली ।। ६५ ।।

तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली ।। ६६ ।।

वयोवेषविसंवादि रामस्य च तयोस्तदा ।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठत ।। ६७ ।।

उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये ।
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा ।। ६८।।

गेये को नु विनेता वां कस्य चेयं कृतिः कवेः ।
इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिमशंसताम् ।। ६९ ।।

अथ सावरजो रामः प्राचेतसमुपेयिवान् ।
ऊरीकृत्यात्मनो देहं राज्यमस्मै न्यवेदयत् ।। ७० ।।

स तावाख्याय रामाय मैथिलेयौ तदात्मजौ ।
कविः कारुणिको वव्रे सीतायाः सम्परिग्रहम् ।। ७१ ।।

तात शुद्धा समक्षं नः स्नुषा ते जातवेदसि ।
दौरात्म्याद्रक्षसस्तां तु नात्रत्याः श्रद्दधुः प्रजाः ।।७२ ।।

६५. उस विषय को जानने वालों के निवेदन करने पर भाइयों सहित राम ने कुतूहलपूर्वक उन दोनों के रूप और गीत की मधुरता को देखा और सुना ।

६६. उन दोनों के गीत सुनने में तल्लीन सभा आनन्द के आंसू बहाने लगी और उसकी शोभा उस वनस्थली के समान हो गई जो प्रातःकाल हवा न चलने से शान्त होती है तथा जिसमें ओस झर रहे होते हैं ।

६७. उस समय जनता ने राम के साथ उन दोनों की वह समानता देख जिसमें केवल अवस्था और वेष का ही अंतर था, अपनी पलकें भी न गिराई ।

६८. लोगों को दोनों कुमारों की दक्षता से उतना आश्चर्य नहीं हुआ जितना राजा के प्रीतिपूर्वक दिये गये दान में उनकी उदासीनता से हुआ ।

६९. राजा के स्वयं पूछने पर कि तुम दोनों को किसने यह गीत सिखाया और किस कवि की यह कृति है, उन्होंने वाल्मीकि का नाम बताया ।

७०. तब भाइयों सहित राम वाल्मीकि के पास गये और अपने शरीर को छोड़ समस्त राज्य उन्हें अर्पित कर दिया ।

७१. दयालु कवि वाल्मीकि ने राम को बताया कि जानकी की वे दोनों सन्तानें उनके ही पुत्र हैं और यह प्रार्थना की कि वे सीता को स्वीकार कर लें ।

७२. हे तात ! आपकी पुत्रवधू सीता हमारे सामने ही अग्नि में प्रवेश करके शुद्ध हो चुकी हैं किन्तु रावण की दुष्टता से यहां की प्रजा ने उसमें अपनी श्रद्धा नहीं जमाई ।

ताः स्वचारित्रमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली ।
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया ।। ७३ ।।

इति प्रतिश्रुते राज्ञा जानकीमाश्रमान्मुनिः ।
शिष्यैरानाययामास स्वसिद्धिं नियमैरिव ।। ७४ ।।

अन्येद्युरथ काकुत्स्थ : सन्निपात्य पुरौकसः ।
कविमाह्वाययामास प्रस्तुतप्रतिपत्तये ।। ७५ ।।

स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्राभ्यामथ सीतया ।
ऋचेवोदर्चिषं सूर्यं रामं मुनिरुपस्थितः ।। ७६ ।।

काषायपरिवीतेन स्वपदार्पितचक्षुषा ।
अन्वमीयत शुद्धेति शान्तेन वपुषैव सा ।।७७।।

जनास्तदालोकपथात्प्रतिसंहृतचक्षुषः ।
तस्थुस्तेऽवाङमुखा सर्वे फलिता इव शालयः ।। ७८ ।।

तां दृष्टिविषये भर्तुर्मुनिरास्थितविष्टरः ।
कुरु निःसंशयं वत्से स्ववृत्ते लोकमित्यशात् ।। ७९ ।।

अथ वाल्मीकिशिष्येण पुण्यमावर्जितं पयः ।
आचम्योदीरयामास सीता सत्यां सरस्वतीम् ।। ८० ।।

७३. जानकी अपने चरित्र के सम्बन्ध में उन्हें फिर विश्वास दिला दें। तब मैं इन पुत्रवती सीता को आपकी आज्ञा से स्वीकार कर लूंगा।

७४. राजा राम के द्वारा यह प्रतिज्ञा करने पर मुनि वाल्मीकि ने अपने शिष्यों को भेजकर जानकी को आश्रम से बुलाया मानों उन्होंने अपन नियमों से अपनी सिद्धि को बुलवाया हो।

७५. दूसरे दिन काकुत्स्थ राजा राम ने नागरिकों को एकत्र करके प्रस्तावित विषय का निर्णय करने के लिये कवि वाल्मीकि को बुलवाया।

७६ सीता और दोनों पुत्रों के साथ ऋषि वाल्मीकि राम के सामन इस प्रकार आये मानों स्वर और शुद्ध उच्चारण वाली सावित्री के साथ वे प्रकाश फैलाते हुए सूर्य के पास गये हों।

७७. उनके काषाय रंग के वस्त्र पहने हुए शान्त शरीर से तथा अपने ही पैरों पर टिकी हुई आंखों से यह अनुमान होता था कि वे शुद्ध हैं।

७८. उनकी दृष्टि से अपनी आंखों को हटाकर मौन बैठे हुए लोग ऐसे लग रहे थे मानों बालों से लदे धान के पौधे हों।

७९. आसन पर बैठे हुए मुनि ने सीता को आदेश दिया कि हे वत्से, अपने स्वामी राम के सामने अपने चरित्र के सम्बन्ध में लोगों की शंका दूर करो।

८०. वाल्मीकि के शिष्य द्वारा दिये गये पवित्र जल का आचमन करके सीता ने सच्ची बात कही।

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे ।
तथा विश्वम्भरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि ।। ८१ ।।

एवमुक्ते तया साध्व्या रन्ध्रात्सद्योभवाद् भुवः ।
शातह्रदमिव ज्योतिः प्रभामण्डलमुद्ययौ ।। ८२ ।।

तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी ।
समुद्ररशना साक्षात्प्रादुरासीद्वसुन्धरा ।। ८३ ।।

सा सीतामङ्कमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम् ।
मा मेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात् ।। ८४ ।।

धरायां तस्य संरम्भं सीताप्रत्यर्पणैषिणः ।
गुरुर्विधिबलापेक्षी शमयामास धन्विनः ।। ८५ ।।

ऋषीन्विसृज्य यज्ञान्ते सुहृदश्च पुरस्कृतान् ।
रामः सीतागतं स्नेहं निदधे तदपत्ययोः ।। ८६ ।।

युधाजितश्च सन्देशात्स देशं सिन्धुनामकम् ।
ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः ।। ८७ ।।

भरतस्तत्र गन्धर्वान्युधि निर्जित्य केवलम् ।
आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम् ।। ८८ ।।

८१ पति के विषय में वाणी, मन और कर्म से यदि मैंने चूक न की हो तो हे सबका पालन करने वाली पृथ्वी, तुम मुझे अपने गर्भ में स्थान दो।

८२. उस पतिव्रता के यह कहते ही तत्काल पृथ्वी में हुई दरार से बिजली के प्रकाश के समान प्रकाश का मंडल ऊपर निकल आया।

८३. तब नाग के फण पर रखे हुए सिंहासन पर बैठी समुद्र की करधनी पहने साक्षात् पृथ्वी प्रकट हुई।

८४. वे सीता को, जिनकी आंखें अपने स्वामी राम पर लगी हुई थीं गोद में बिठाकर मानों उनके 'नहीं नहीं', कहते हुए भी पाताल को चली गई।

८५. सीता को वापिस लौटा लाने की इच्छा वाले धनुषधारी राम ने पृथ्वी पर जिस प्रकार रोष किया उसे गुरु ने यह कहकर कि विधि बलवान है, शान्त कर दिया।

८६. यज्ञ समाप्त होने पर राम ने ऋषियों और बन्धु-बान्धवों को पुरस्कृत करके उन्हें विदा किया और सीता के प्रति अपने स्नेह को अपने पुत्रों पर केन्द्रित कर दिया।

८७. भरत के मामा युधाजित का सन्देश पाकर प्रजा का पालन करने वाले राम ने भरत को अधिकार सम्पन्न बनाकर सिन्धु नामक देश दिया।

८८. भरत ने वहां युद्ध म गन्धर्वों को जीतकर उनके हथियार छुड़ा लिये और उन्हें केवल वीणा पकड़ा दी।

स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्योस्तदाख्ययोः ।
अभिषिच्याभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात्पुनः ॥ ८९ ॥

अङ्गदं चन्द्रकेतुं च लक्ष्मणोऽप्यात्मसम्भवौ ।
शासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ ॥ ९० ॥

इत्यारोपितपुत्रास्ते जननीनां जनेश्वराः ।
भर्तृलोकप्रपन्नानां निवापान्विदधुः क्रमात् ॥ ९१ ॥

उपेत्य मुनिवेषोऽथ कालः प्रोवाच राघवम् ।
रहःसंवादिनौ पश्येदावां यस्तं त्यजेरिति ॥ ९२ ॥

तथेति प्रतिपन्नाय विवृतात्मा नृपाय सः ।
आचख्यौ दिवमध्यास्व शासनात्परमेष्ठिनः ॥ ९३ ॥

विद्वानपि तयोर्द्वाःस्थः समयं लक्ष्मणोऽभिनत् ।
भीतो दुर्वाससः शापाद्रामसन्दर्शनार्थिनः ॥ ९४ ॥

स गत्वा सरयूतीरं देहत्यागेन योगवित् ।
चकारावितथां भ्रातुः प्रतिज्ञां पूर्वजन्मनः ॥ ९५ ॥

तस्मिन्नात्मचतुर्भागे प्राङ्नाकमधितस्थुषि ।
राघवः शिथिलं तस्थौ भुवि धर्मस्त्रिपादिव ॥ ९६ ॥

८९. तक्ष और पुष्कल नामक अभिषेक योग्य अपने पुत्रों का उन्हीं के नाम वाली दो राजधानियों तक्षशिला और पुष्कलावती में अभिषेक करके भरत राम के पास फिर वापस चले गये।

९०. रघुवंश के स्वामी राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने भी अंगद और चन्द्रकेतु नामक अपने पुत्रों को कारापथ देश का स्वामी बना दिया।

९१. इस प्रकार पुत्रों को उचित स्थानों में बिठाकर राम आदि चारों राजाओं ने स्वर्गवासिनी माताओं का क्रमशः श्राद्ध आदि किया।

९२. तब मुनि का वेष धारण करके काल राम के पास आया और बोला कि एकान्त में वार्तालाप करते हुए हमें जो देखे उसका आप त्याग कर दें।

९३. उस काल ने ऐसा ही होगा यह वचन देने वाले राजा राम के समक्ष अपना रूप प्रकट करके कहा—आप अब ब्रह्मा की आज्ञा से स्वर्ग लोक में निवास करें।

९४. उनके द्वार पर खड़े लक्ष्मण राम के दर्शनों के अभिलाषी दुर्वासा ऋषि के शाप से डरकर उनकी बातचीत में जानते हुए भी बाधक बने।

९५. सरयू के तट पर जाकर योग के जानने वाले लक्ष्मण ने अपना शरीर त्याग करके अपने बड़े भाई की प्रतिज्ञा सच कर दी।

९६. अपने चौथे हिस्से लक्ष्मण के पहले ही स्वर्ग में चले जाने पर रघुवंशी राम पृथ्वी पर उसी प्रकार शिथिल हो गये जैसे तीन पैरों पर धर्म।

स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागाङ्कुशं कुशम् ।
शरावत्यां सतां सूक्तैर्जनिताश्रुलवं लवम् ।।९७।।

उदक्प्रतस्थे स्थिरधीः सानुजोऽग्निपुरःसरः ।
अन्वितः पतिवात्सल्यात् गृहवर्जमयोध्यया ।।९८।।

जगृहुस्तस्य चित्तज्ञाः पदवीं हरिराक्षसाः ।
कदम्बमुकुलस्थूलैरभिवृष्टां प्रजाऽश्रुभि : ।।९९।।

उपस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना ।
चक्रे त्रिदिवनिश्रेणिः सरयूरनुयायिनाम् ।।१००।।

यद्गोप्रतरकल्पोऽभूत्सम्मर्दस्तत्र मज्जताम् ।
अतस्तदाख्यया तीर्थं पावनं भुवि पप्रथे ।।१०१।।

प्रभु सविभुर्विबुधांशेषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु ।
त्रिदशीभूतपौराणां स्वर्गान्तरमकल्पयत् ।। १०२।।

निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणां
विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत्सर्वलोकप्रतिष्ठाम् ।।
लंकानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा
कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च ।। १०३ ।।

९७-९८. शत्रु रूपी हाथियों के लिये अंकुश के समान कुश को कुशावती में और अपनी समुचित वीणा से सज्जनों की आंखों में प्रेम के आंसू उत्पन्न करने वाले लव को शरावती नगरी में स्थापित करके स्थिर बुद्धिवाले राम ने अपने भाइयों सहित आगे-आगे अग्नि को और पति प्रेम के कारण घर छोड़कर पीछे आने वाली सारी अयोध्या को लेकर सरयू तट के लिये प्रस्थान किया।

९९. उनके मन की बात जानने वाले वानरों और राक्षसों ने उनके उस मार्ग का अनुसरण किया जिस पर कदम की कली के समान प्रजा के आंसुओं की वर्षा हो रही थी।

१००. अपने भक्तों पर कृपा करने वाले राम के द्वारा, जिनका विमान उपस्थित हो चुका था, अपने पीछे आने वालों के लिये सरयू स्वर्ग की सीढ़ी बना दी गई।

१०१. सरयू में स्नान करने वालों की जो भीड़ हुई वह ऐसी लगी मानों एक साथ गायें तैर रही हों। इसलिये पृथ्वी पर उस स्थान में गोप्रतरण नामक तीर्थ की सृष्टि हो गई।

१०२. देवताओं के अंश सुग्रीव आदि के अपने रूप में लीन हो जाने पर देवलोक में गये हुए अयोध्या के नागरिकों से एक दूसरा स्वर्ग बन गया।

१०३. रावण के सिर काटने का देवताओं का काम इस प्रकार पूरा करके और विभीषण तथा हनुमान दोनों को दक्षिण और उत्तर पर्वतों पर दो कीर्ति स्तम्भों के समान स्थापित करके विष्णु ने सब लोगों के आश्रयभूत अपने शरीर में प्रवेश किया।

षोडशः सर्गः

अथेतरे सप्त रघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च ।
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि ।। १ ।।

ते सेतुवार्तागजबन्धमुख्यैरभ्युच्छ्रिताः कर्मभिरप्यबन्ध्यैः ।
अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां समुद्रा इव न व्यतीयुः ।। २ ।।

चतुर्भुजांशप्रभवः स तेषां दानप्रवृत्तेरनुपारतानाम् ।
सुरद्विपानामिव सामयोनिर्भिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंशः ।। ३ ।।

अथार्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे शय्यागृहे सुप्तजने प्रबुद्धः ।
कुशः प्रवासस्थकलत्रवेषामदृष्टपूर्वां वनितामपश्यत् ।। ४ ।।

सा साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः स्थित्वा पुरस्तात्पुरुहूतभासः ।
जेतुः परेषां जयशब्दपूर्वं तस्याञ्जलिं बन्धुमतो बबन्ध ।। ५ ।।

अथानपोढार्गलमप्यगारं छायामिवादर्शतलं प्रविष्टाम् ।
सविस्मयो दाशरथेस्तनूजः प्रोवाच पूर्वार्धविसृष्टतल्पः ।। ६ ।।

लब्धान्तरा सावरणेऽपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ।। ७ ।।

का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते ।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति ।। ८ ।।

सोलहवाँ सर्ग

१. रघुवंश के दूसरे सात श्रेष्ठ वीरों ने जन्म में और गुणों में बड़ा होने के कारण कुश को अच्छे अच्छे रत्नों का विशेष रूप से अधिकारी बनाया क्योंकि भाइयों में इस प्रकार का सद्भाव रखना उनके कुल की परम्परा थी।

२. पुल बनाने, कृषि और गोपालन तथा हाथी पकड़ना आदि जिनमें प्रमुख हैं ऐसे सफल कार्यों में अत्यन्त सफल होते हुए भी उन्होंने एक दूसरे के देश की विभाजन सीमा का उलंघन उसी प्रकार नहीं किया जैसे समुद्र अपने तट की सीमा का उल्लंघन नहीं करता।

३. विष्णु के अंश राम आदि से उत्पन्न उनका वंश सामवेद से उत्पन्न और निरन्तर मद बहानेवाले दिग्गजों के वंश के समान आठ भागों में बंट गया।

४. आधीरात को दीपक के शान्त हो जाने पर और परिचारकों के सो जाने पर कुश ने अपने शयन-कक्ष में एक ऐसी स्त्री को देखा जिसे उन्होंने पहले नहीं देखा था और जिसके वेश से ऐसा जान पड़ता था। मानों उसका पति प्रवास में गया हुआ है।

५. उसने सामान्य रूप से सज्जनों के लिये अपने राजकीय ऐश्वर्य का उपयोग करने वाले, इन्द्र के समान कान्ति वाले, शत्रुओं को जीतने वाले और हितैषी कुश के सामने 'तुम्हारी जय हो' कहकर अपने हाथ जोड़ लिये।

६. तब आश्चर्य में पड़ शरीर के ऊपरी आधे भाग से अपनी शय्या को छोड़ कर अर्गला को हटाये बिना ही शीशे में घुसी हुई छाया के समान कमरे में आई हुई स्त्री से कुश बोले—

७-८. तुमने बन्द कमरे में प्रवेश किया है पर तुम में कहीं योग का प्रभाव नहीं दिखाई देता, पाले के उपद्रव को सहने वाली कमलिनी के समान दुखियों का वेष धारण करने वाली हे कल्याणी, तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो, और मेरे पास आने का कारण क्या है?

तमब्रवीत्सा गुरुणानवद्या या नीतपौरा स्वपदोन्मुखेन ।
तस्याः पुरः सम्प्रति वीतनाथां जानीहि राजन्नधिदेवतां माम् ।।९।

वस्वौकसारामभिभूय साहं सौराज्यबद्धोत्सवया विभूत्या ।
समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति प्रपन्ना करुणामवस्थाम् ।।१० ।।

विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेशः पर्यस्तसालः प्रभुणा विना मे ।
विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूर्यं दिनान्तमुग्रानिलभिन्नमेघम् ।। ११ ।।

निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः सञ्चरोऽभूदभिसारिकाणाम् ।
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः स वाह्यते राजपथः शिवाभिः ।। १२ ।

आस्फालितं यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदङ्गधीरध्वनिमन्वगच्छत् ।
वन्यैरिदानीं महिषैस्तदम्भः शृङ्गाहतं क्रोशति दीर्घिकाणाम् ।। १३ ।।

वृक्षेशया यष्टिनिवासभंगान्मृदंगशब्दापगमादलास्याः ।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्ह्याः क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम् ।। १४ ।।

सोपानमार्गेषु च येषु रामा निक्षिप्तवत्यश्चरणान्सरागान् ।
सद्योहतन्यङ्कुभिरस्रदिग्धं व्याघ्रैः पदं तेषु निधीयते मे ।। १५ ।।

चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः करेणुभिर्दत्तमृणालभंगाः ।
नखाङ्कुशाघातविभिन्नकुम्भाः संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति ।। १६ ।।

९. उस स्त्री ने कुश से कहा हे राजा; मैं उसी अनाथ अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी हूं जिस निर्दोष नगरी के निवासियों को तुम्हारे पिता वैकुण्ठ लोक में जाते हुए अपने साथ ले गये।

१०. अच्छे राजाओं के शासन में निरन्तर उत्सवों से पूर्ण रहने वाले अपने ऐश्वर्य से युक्त होकर भी वही मैं अब तुम जैसे सूर्यवंशी राजा के पूर्ण शक्ति सम्पन्न होते हुए भी करुणाजनक स्थिति में पहुंच गई हूं।

११ स्वामी के बिना मेरा निवास जिसकी सैकड़ों अट्टालिकाएं खण्डहर बन गई हैं और जिसकी दीवारें गिर गई हैं उस सन्ध्या के समान मालूम हो रहा है जहां सूर्य अस्त हो चुका हो और तेज हवा के झोंके से जिसके मेघ खण्ड-खण्ड हो गये हों।

१२. वह राजपथ जहां रात में चमकदार और मधुर स्वर वाले नुपूरों वाली अभिसारिकाओं का आवागमन होता था वहां फें-फें करके मुख से लपटें छोड़ती हुई मांस ढूंढने वाली स्यारिनें फिरा करती हैं।

१३. स्त्रियों की उंगलियों से प्रताड़ित होकर जो मृदंग के समान गम्भीर ध्वनि उत्पन्न करता था बावड़ियों का वही जल अब जंगली भैंसों के सींगों से आहत होकर कानों को अखरने वाला शब्द उत्पन्न करता है।

१४. अपने बैठने की पटरियों के टूट जाने से पेड़ों पर विश्राम करने वाले और मृदंगों के शब्दों के अभाव में अपना नाच बन्द कर देने वाले पाले हुए मयूर वन की आग में अपने पंखों के झुलस जाने से वन के मोर बन गये हैं।

१५. मेरे सीढ़ियों वाले रास्तों में जहां स्त्रियां, अपने आलता से रंगे चरण रखती थीं वहां तत्काल ही मृगों को मारने वाले बाघ अपने पंजे रख रहे हैं।

१६. कमल वनों में उतरे हुए और हथिनियों द्वारा कमल की डंडियों के टुकड़े पकड़ाये जाते हुए चित्रों में दिखाये गये हाथियों के मस्तक नखरूपी अंकुशों से विदीर्ण हो गये हैं और वे क्रुद्ध सिंहों के प्रहार को वहन कर रहे हैं।

स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम् ।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति संगान्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्विमुक्ताः ।।१७।।

कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणाङ्कुरेषु ।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्रपादाः ।। १८ ।।

आवर्ज्य शाखाः सदयं च यासां पुष्पाण्युपात्तानि विलासिनीभि: ।
पु वन्यैः तुलिन्दैरिव वानरैस्ताः क्लिश्यन्त उद्यानलता मदीयाः ।।१९।।

रात्रावनाविष्कृतदीपभासः कान्तामुखश्रीवियुता दिवापि ।
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैर्विच्छिन्नधूमप्रसरा गवाक्षाः ।। २० ।।

बलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति ।
उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा शून्यानि दूये सरयूजलानि ।। २१ ।।

तदर्हसीमां वसतिं विसृज्य मामभ्युपेतुं कुलराजधानीम् ।
हित्वा तनुं कारणमानुषीं तां यथा गुरुस्ते परमात्ममूर्तिम् ।। २२ ।।

तथेति तस्याः प्रणयं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्प्राग्रहरो रघूणाम् ।
पूरप्यभिव्यक्तमुखप्रसादा शरीरबन्धेन तिरोबभूव ।। २३ ।।

तदद्भुतं संसदि रात्रिवृत्तं प्रातर्द्विजेभ्यो नृपतिः शशंस ।
श्रुत्वा त एनं कुलराजधान्या साक्षात्पतित्वे वृतमभ्यनन्दन् ।। २४ ।।
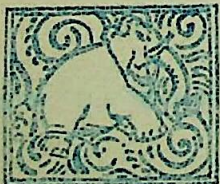
१७. फीके पड़े हुए रंगों के क्रम से धूमिल नारी मूर्तियों के लिये सांपों के छोड़े हुए केंचुल उनमें लगकर स्तन को ढंकने वाले दुपट्टे बन गये हैं ।

१८. समय बीत जाने के कारण काली पड़ी हुई कलई वाले और जहां तहां बढ़े हुए घास के अंकुरों वाले प्रासादों पर रात के समय मोती की लड़ियों के समान चमकीली चन्द्रमा की किरणें नहीं पड़तीं ।

१९. विलासिनी स्त्रियां सदय भाव से जिनकी डालों को झुकाकर फूल तोड़ा करती थीं, बगीचों की मेरी वे ही लताएं किरात आदि जंगली जातियों के समान ही बन्दरों द्वारा भी पीड़ित हो रही हैं ।

२०. रात में जहां दीपक की जगमगाहट नहीं होती और दिन में भी स्त्रियों के मुख की शोभा का सम्पर्क नहीं होता तथा जिनमें से धूप का धुंआ निकलना बन्द हो गया है वे झरोखे कीड़े-मकोड़ों के जालों से ढंक गये हैं ।

२१. पूजा-अर्चा से रहित रेती वाला, नहाने के प्रसाधनों के सम्पर्क से वंचित और खाली पड़े हुए बेत के मंडपों वाला सरयू का जल मेरे हृदय को दुखी करता है ।

२२. इसलिये इस बस्ती कुशावती को छोड़कर तुम अपने कुल की राजधानी मुझ अयोध्या में उसी प्रकार आओ, जैसे तुम्हारे पिता ने कारणवश अपने मनुष्य शरीर को छोड़कर परमात्मा रूप को अपना लिया है ।

२३. रघुवंशियों में श्रेष्ठ कुश ने प्रसन्न होकर उस नगरी की प्रणय प्रार्थना को, ऐसा ही हो, कहकर स्वीकार कर लिया । उस नगरी ने अपने मुख से अपनी प्रसन्नता व्यक्त की और अपने शरीर के बन्धन से अन्तर्धान हो गई ।

२४. राजा कुश ने रात का यह आश्चर्य भरा वृत्तान्त प्रातःकाल सभा में ब्राह्मणों को बताया । उसे सुनकर उन्होंने इस बात का स्वागत किया कि कुल की राजधानी ने स्वयं प्रकट होकर उसे अपना स्वामी वरण किया है ।

कुशावतीं श्रोत्रियसात्स कृत्वा यात्राऽनुकूलेऽहनि सावरोधः ।
अनुद्रुतो वायुरिवाभ्रवृन्दैः सैन्यैरयोध्याऽभिमुखः प्रतस्थे ।। २५ ।।

सा केतुमालोपवना बृहद्भिर्विहारशैलानुगतेव नागैः ।
सेना रथोदारगृहा प्रयाणे तस्याभवज्जंगमराजधानी ।। २६ ।।

तेनातपत्रामलमण्डलेन प्रस्थापितः पूर्वनिवासभूमिम्
बभौ बलौघः शशिनोदितेन वेलामुदन्वानिव नीयमानः ।। २७ ।।

तस्य प्रयातस्य वरूथिनीनां पीडामपर्याप्तवतीव सोढुम् ।
वसुन्धरा विष्णुपदं द्वितीयमध्यारुरोहेव रजश्छलेन ।। २८ ।।

उद्यच्छमाना गमनाय पश्चात्पुरो निवेशे पथि च व्रजन्ती ।
सा यत्र सेना ददृशे नृपस्य तत्रैव सामग्र्यमतिं चकार ।। २९ ।।

तस्य द्विपानां मदवारिसेकात्खुराभिघाताच्च तुरङ्गमाणाम् ।
रेणुः प्रपेदे पथि पंकभावं पंकोऽपि रेणुत्वमियाय नेतुः ।। ३० ।।

मार्गैषिणी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना ।
चकार रेवेव महाविरावा बद्धप्रतिश्रुन्ति गुहामुखानि ।। ३१ ।।

स धातुभेदारुणयाननेमिः प्रभुः प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्यः ।
व्यलङ्घयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि ।। ३२ ।।

२५. कुशावती नगरी को ब्राह्मणों को सौंप कर यात्रा के लिये सुविधाजनक दिन को अपने अन्त:पुर की रानियों सहित वे अयोध्या की ओर चल पड़े। उनके पीछे सेना इस प्रकार चल रही थी जैसे वायु के पीछे मेघ।

२६. वह सेना जिसकी पताकाओं की पंक्ति रूपी उपवन क्रीड़ापर्वतों के समान बड़े-बड़े हाथियों से युक्त थे और रथ ही जिसके सुन्दर गृह थे कुश की यात्रा में चलती-फिरती राजधानी बन गई।

२७. उसके छत्र के स्वच्छ मण्डल द्वारा पहले की निवास भूमि अयोध्या की ओर ले जाई जाने वाली सेना का समूह ऐसा लगा मानों उदित हुआ चन्द्रमा समुद्र को तट की ओर ले जा रहा हो।

२८. यात्रा पर निकले हुए कुश की सेनाओं की पीड़ा को सहन करने में असमर्थ सी पृथ्वी मानो धूल के बहाने विष्णु के दूसरे स्थान में उठकर चली गई।

२९. जाने के लिये तैयार होती हुई, फिर बाद में आगे ठहरने के स्थान में पहुंचने पर अथवा मार्ग में चलती हुई राजा की वह सेना जहां भी होती थी पूर्णता की सीमा को पार करती दिखाई देती थी।

३०. उस अग्रणी राजा कुश के हाथियों के मदजल से सिंचकर और घोड़ों के खुरों की चोट खाकर मार्ग की धूल कीचड़ में और कीचड़ धूल में परिणत हो गया।

३१. विन्ध्याचल की घाटियों में राह ढूंढते-ढूंढते अनेक मार्गों में विभक्त उस सेना ने महान घोष करने वाली नर्मदा के समान गुफाओं के मुंहों को प्रतिध्वनि से भर दिया।

३२. उस राजा कुश ने जिसके रथ के पहियों के सिरे गेरु को काटने से लाल हो रहे थे तथा चलने के समय के कोलाहल में तूर्य की ध्वनि मिल गई थी, पुलिन्द, किरात आदि जातियों द्वारा दिये गये भेंटों को देखते हुए विन्ध्याचल को पार किया।

तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात्प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गङ्गाम् ।
अयत्नबालव्यजनीबभूवुर्हंसा नभोलङ्घनलोलपक्षाः ।। ३३ ।।

स पूर्वजानां कपिलेन रोषाद्भस्मावशेषीकृतविग्रहाणाम् ।
सुरालयप्राप्तिनिमित्तमम्भस्त्रैस्रोतसं नौलुलितं ववन्दे ।।३४।।

इत्यध्वनः कैश्चिदहोभिरन्ते कूलं समासाद्य कुशः सरय्वाः ।
वेदिप्रतिष्ठान्विततताध्वराणां यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम् ।।३५।।

आधूय शाखाः कुसुमद्रुमाणां स्पृष्ट्वा च शीतान्सरयूतरङ्गान् ।
तं क्लांतसैन्यं कुलराजधान्याः प्रत्युज्जगामोपवनान्तवायुः ।।३६।।

अथोपशल्ये रिपुमग्नशल्यस्तस्याः पुरः पौरसखः स राजा ।
कुलध्वजस्तानि चलध्वजानि निवेशयामास बली बलानि ।। ३७ ।।

तां शिल्पिसङ्घाः प्रभुणा नियुक्तास्तथागतां सम्भृतसाधनत्वात् ।
पुरं नवीचक्रुरपां विसर्गान्मेघा निदाघग्लपितामिवोर्वीम् ।। ३८ ।।

ततः सपर्यां सपशूपहारां पुरः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः ।
उपोषितैर्वास्तुविधानविद्भिर्निर्वर्तयामास रघुप्रवीरः ।। ३९ ।।

तस्याः स राजोपपदं निशान्तं कामीव कान्ताहृदयं प्रविश्य ।
यथार्हमन्यैरनुजीविलोकं सम्भावयामास यथाप्रधानम् ।।४०।।

३३. विन्ध्याचल के उतार पर उल्टी बहने वाली गंगा को हाथियों का पुल बनाकर पार करते हुए राजा कुश के लिये आकाश में उड़ने वाले चंचल पंखों वाले हंस चमर बन गये।

३४. कुश ने कपिल ऋषि द्वारा क्रोध से भस्म किये गये शरीर वाले अपने पूर्वजों को स्वर्ग प्राप्त कराने वाली गंगा के उस जल को नमस्कार किया जो नावों के चलने से चंचल हो रहा था।

३५. इस प्रकार कई दिनों में रास्ता तय करके कुश ने सरयू तट पर पहुंचकर बड़े-बडे यज्ञ करने वाले रघुवंशी राजाओं के उन यज्ञ-स्तम्भों को देखा जो सैकड़ों की संख्या में चबूतरों पर गड़े हुए थे।

३६. कुल की राजधानी अयोध्या के उपवनों के समीप की वायु फूलों वाले वृक्षों की डालों को हिलाकर और सरयू की शीतल लहरों को छूकर थकी हुई सेना वाले कुश की ओर गई।

३७. शत्रुओं को अपने बाणों से बेधने वाले, नागरिकों के मित्र और अपने कुल के लिये पताका के समान उस बलशाली राजा कुश ने चंचल पताकाओं वाली अपनी सेनाओं को नगर के पास ठहराया।

३८. राजा द्वारा नियुक्त कारीगरों के समूह ने साधनों से सम्पन्न होने के कारण उस अवस्था को प्राप्त अयोध्या नगरी को उसी प्रकार नया बना दिया जैसे मेघ धूप से तपी हुई पृथ्वी को पानी से सींचकर नया बना देते हैं।

३९. इसके अनन्तर रघुवंशियों में श्रेष्ठ वीर कुश ने देवताओं के विशाल मन्दिरों से युक्त नगरी की उपवास किये हुए और वास्तु विद्या के जानने वालों से पशुबलि सहित पूजा कराई।

४०. कुश ने उस नगरी के राजभवन में पहले स्वयं उसी प्रकार प्रवेश किया जैसे कोई कामी किसी सुन्दर स्त्री के हृदय में प्रवेश करता है; और इसके बाद अपने अमात्य आदि सेवकों की प्रधानता का ध्यान रखते हुए उन्हें यथायोग्य भवन प्रदान किये।

सा मन्दुरासंश्रयिभिस्तुरङ्गैः शालाविधिस्तम्भगतैश्च नागैः।
पूराबभासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्धाभरणेव नारी ॥४१॥

वसन्स तस्यां वसतौ रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।
न मैथिलेयः स्पृहयाम्बभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय ॥४२

अथास्य रत्नग्रथितोत्तरीयमेकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम् ।
निःश्वासहार्यांशुकमाजगाम घर्मः प्रियोवेषमिवोपदेष्टुम् ॥४३॥

अगस्त्यचिह्नादयनात्समीपं दिगुत्तरा भास्वति सन्निवृत्ते ।
आनन्दशीतामिव बाष्पवृष्टिं हिमस्रुतिं हैमवतीं ससर्ज ॥४४॥

प्रवृद्धतापो दिवसोऽतिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी ।
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम्॥४५॥

दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात्सोपानपर्वाणि विमुञ्चदम्भः।
उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणां नारीनितम्बद्वयसं बभूव ॥४६॥

वनेषु सायन्तनमल्लिकानां विजृम्भणोग्दन्धिषु कुड्मलेषु ।
प्रत्येकनिक्षिप्तपदः सशब्दं संख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार ॥४७॥

स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षताङ्के भूयिष्ठसंदष्टशिखं कपोले ।
च्युतं न कर्णादपि कामिनीनां शिरीषपुष्पं सहसा पपात ॥४८॥

४१. बाजारों में रखे हुए बिक्री के सामान वाली वह नगरी घुड़सालों के घोड़ों और हथसालों के खम्भों से भलीभांति बंधे हुए हाथियों से उसी प्रकार शोभित हुई जैसे वह सभी अंगों को गहनों से सजाये कोई स्त्री हो।

४२. मैथिली के पुत्र कुश ने पहले की शोभा को प्राप्त होने वाली रघुकुल की उस नगरी में रहते हुए न तो देवताओं के स्वामी इन्द्र और न अलका के अधिपति कुवेर के पद के लिये अपने मन में अभिलाषा की।

४३. इसके बाद कुश को अपनी प्रिया के वेष के सम्बन्ध में मानों यह बताने के लिये गरमी की ऋतु आ गई कि उनके दुपट्टे रत्न टंके हों, बिल्कुल गौर वर्ण के स्तनों पर हार पड़ा हो और वे ऐसा वस्त्र धारण करें जो छोड़ी हुई सांस से उड़ जाय।

४४. अगस्त्य के चिह्न वाली दक्षिण दिशा से सूर्य के लौट आने पर उत्तर दिशा ने मानों आनन्द के आंसुओं की वर्षा के रूप में हिमालय के हिम शीतल झरनों की सृष्टि कर दी।

४५. अत्यधिक बढ़ी हुई गरमी वाला दिन और बहुत ही क्षीण रात दोनों ही विरोधी आचरण से आपस में एक-दूसरे से अलग होकर पश्चात्ताप से पीड़ित होने वाले पति-पत्नी के समान हो गये थे।

४६. दिनों-दिन घर की बावड़ियों का पानी शैवाल वाली सीढ़ियों के क्रम को नीचे छोड़ता गया जिससे उनमें उगे हुए कमलों की डंडी ऊपर निकल आई और उनका पानी स्त्रियों के नितम्बों तक ही रह गया।

४७. वनों में सायंकाल की चमेलियों के खिलने से सुगन्धित कलियों पर शब्द होने के साथ एक एक करके अपने पैर रखने वाले भ्रमर ने मानों उनकी गणना भी कर ली।

४८. पसीने के लगने से गीले नखक्षत के चिह्नों वाले स्त्रियों के गालों पर अपने केसरों के अत्यधिक चिपक जाने से स्त्रियों के कानों से गिरा हुआ शिरीष का फूल भी एकाएक नीचे न गिरा।

यन्त्रप्रवाहैः शिशिरैः परीतान्रसेन धौतान्मलयोद्भवस्य ।
शिलाविशेषानधिशय्य निन्युर्धारागृहेष्वातपमृद्धिमन्तः ।।४६।।

स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्तसायन्तनमल्लिकेषु ।
कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे बलमङ्गनानाम् ।।५०।।

आपिञ्जरा बद्धरजःकणत्वान्मञ्जर्युदारा शुशुभेऽर्जुनस्य ।
दग्ध्वापि देहं गिरिशेन रोषात्खण्डीकृता ज्येव मनोभवस्य ।।५१।।

मनोज्ञगन्धं सहकारभङ्गं पुराणशीधुं नवपाटलं च।
सम्बध्नता कामिजनेषु दोषाः सर्वे निदाघावधिना प्रमृष्टाः ।।५२।।

जनस्य तस्मिन्समये विगाढे बभूवतुर्द्वौ सविशेषकान्तौ।
तापापनोदक्षमपादसेवौ स चोदयस्थौ नृपतिः शशी च।।५३।।

अथोर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे सरय्वाः।
विहर्तुमिच्छा वनितासखस्य तस्याम्भसि ग्रीष्मसुखे बभूव ।।५४।।

स तीरभूमौ विहितोपकार्यामानायिभिस्तामपकृष्टनक्राम् ।
विगाहितुं श्रीमहिमानुरूपं प्रचक्रमे चक्रधरप्रभावः ।।५५।।

सा तीरसोपानपथावतारादन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः।
सनूपुरक्षोभपदाभिरासीदुद्विग्नहंसा सरिदङ्गनाभिः ।।५६।।

४९. धनियों ने यन्त्र से चलाये गये पानी की शीतल धारा से घिरे हुए धारागृहों में चन्दन के पानी से धुली हुई विशेष प्रकार की पत्थर की पटियों पर लेटकर गरमी काटी ।

५०. वसन्त के चले जाने से अत्यन्त दुर्बल काम ने स्नान से गीले और खुले हुए स्त्रियों के उन बालों से, जिन्हें धूप से सुवासित किये जाने के अनन्तर सायंकालीन चमेली से सजाया गया था, शक्ति प्राप्त की ।

५१ अर्जुन की बड़ी-बड़ी कुछ-कुछ पीली मंजरी पराग भरी होने के कारण ऐसी लगती थी मानों कामदेव की धनुष की वह डोरी हो जिसे कामदेव को भस्म करने के बाद भी शंकरजी ने क्रोध में भरकर खण्ड-खण्ड कर दिया हो ।

५२. सुरुचिपूर्ण सुगन्धवाली आम की मंजरी, पुरानी मदिरा और नये गुलाब को एकत्र करने वाले ग्रीष्मकाल ने विलासियों के प्रति अपने सभी दोषों को दूर कर दिया ।

५३. उस गरमी को दूर करने की क्षमतायुक्त किरणों वाला उदित हुआ चन्द्रमा और कष्ट को दूर करने की क्षमतायुक्त चरणों वाला उन्नतिशील राजा दोनों ही उस कठिन समय में जनता के लिये विशेष रूप से आकर्षक सिद्ध हुए ।

५४. राजा की इच्छा हुई कि वह स्त्रियों के साथ गरमी में सुख देने वाले सरयू के उस जल में विहार करे जो लहरों के कारण चंचल और मतवाले राजहंसों से युक्त था और जिसमें लोध्र की लता के फूल बहते थे ।

५५. विष्णु के समान तेज वाला वह कुश उस सरयू के तट की भूमि में जहां तम्बू तने थे, और जिसके मगरों को जालों में फंसाकर अलग कर दिया गया था अपने ऐश्वर्य तथा महत्व के अनुरूप विहार करने लगा ।

५६. सरयू नदी के हंस उन स्त्रियों से उद्विग्न हो उठे जिनके बजूबन्द तट की सीढ़ियों के मार्ग से उतरते हुए आपस में टकरा रहे थे और जिन के पैरहिलते हुए नूपुरों के साथ नीचे पड़ रहे थे ।

परस्पराभ्युक्षणतत्पराणां तासां नृपो मज्जनरागदर्शी ।
नौसंश्रयः पार्श्वगतां किरातीमुपात्तबालव्यजनां बभाषे ।।५७।।

पश्यावरोधैः शतशो मदीयैर्विगाह्यमानो गलिताङ्गरागैः ।
सन्ध्योदयः साभ्र इवैष वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाहः ।।५८।।

विलुप्तमन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं नौलुलिताभिरद्भिः ।
तद्बध्नतीभिर्मदरागशोभां विलोचनेषु प्रतिमुक्तमासाम् ।।५९।।

एता गुरुश्रोणिपयोधरत्वादात्मानमुद्वोढुमशक्नुवत्यः ।
गाढाङ्गदैर्बाहुभिरप्सु बालाः क्लेशोत्तरं रागवशात्प्लवन्ते ।।६०।।

अमी शिरीषप्रसवावतंसाः प्रभ्रंशिनो वारिविहारिणीनाम् ।
पारिप्लवाः स्रोतसि निम्नगायाः शैवाललोलांश्छलयन्ति मीनान् ।।६१।।

आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफलस्पर्धिषु शीकरेषु ।
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संलक्ष्यते न च्छिदुरोऽपि हारः ।।६२।।

आवर्तशोभा नतनाभिकान्तेर्भङ्गो भ्रुवां द्वन्द्वचराः स्तनानाम् ।
जातानि रूपावयवोपमानान्यदूरवर्तीनि विलासिनीनाम् ।।६३।।

तीरस्थलीबर्हिभिरुत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैरभिनन्द्यमानम् ।
श्रोत्रेषु सम्मूर्च्छति रक्तमासां गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम् ।।६४।।

५७. एक दूसरे पर पानी छिड़कने में संलग्न उन स्त्रियों की स्नान में रुचि देखकर नाव पर बैठे हुए राजा ने पास ही विद्यमान चमर धारण करने वाली किराती से कहा—

५८. देखो, छुटे हुए अंगराग वाली अन्तःपुर की मेरी सैकड़ों स्त्रियों द्वारा आलोड़ित यह सरयू का प्रवाह बादलों से युक्त सन्ध्या के उदय होने के समान अनेक रंग धारण कर रहा है।

५९. नावों से हिलोरें खाते हुए पानी से अन्तःपुर की सुन्दरियों का जो काजल धुल गया था वह आखों में मद के कारण छा जाने वाली लाली के रूप में मानों लौटा दिया गया।

६०. भारी नितम्ब और स्तनों के कारण अपने शरीर को ले चलने में असमर्थ ये स्त्रियां चिपके हुए बाजूबन्दों वाली भुजाओं से क्रीड़ा में प्रेम होने के कारण तैरती तो हैं पर बाद में उन्हें कष्ट होता है।

६१. पानी में विहार करने वाली इन स्त्रियों के नीचे गिरे हुए और नदी के प्रवाह में तैरते हुए ये शिरीष के फूल के आभूषण मछलियों के लिये सेवार का भ्रम उत्पन्न करते हैं।

६२. पानी छींटने में लगी हुई स्त्रियों के स्तनों पर पड़ने वाले मोती के दानों जैसे जलकणों में टूटा हुआ हार भी टूटता हुआ दिखाई नहीं देता।

६३. वहां विलासिनी स्त्रियों के रूप और अंग के उपमान जैसे गहरी नाभि की शोभा का उपमान भंवर की शोभा, भौंहों के उपमान तरंगें और स्तनों के उपमान चक्रवाक पास आ गये हैं।

६४. इन स्त्रियों के मधुर गीत के ताल पर बजने वाले जल रूपी मृदंग की ध्वनि, जिसका स्वागत अपने पंखों को ऊपर उठाये हुए तट के मयूरों द्वारा मधुर शब्द से किया जा रहा है, कानों में व्याप्त हो रही है।

सन्दष्टवस्त्रेष्वबलानितम्बेष्विन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्याः।
अमी जलापूरितसूत्रमार्गा मौनं भजन्ते रशनाकलापाः॥६५॥

एताः करोत्पीडितवारिधारा दर्पात्सखीभिर्वदनेषु सिक्ताः ।
वक्रेतराग्रैरलकैस्तरुण्यश्चूर्णारुणान्वारिलवान्वमन्ति ॥६६॥

उद्बन्धकेशश्च्युतपत्त्रलेखो विश्लेषिमुक्ताफलपत्त्रवेष्टः।
मनोज्ञ एव प्रमदामुखानामम्भोविहाराकुलितोऽपि वेषः ॥६७॥

स नौविमानादवतीर्य रेमे विलोलहारः सह ताभिरप्सु।
स्कन्धावलग्नोद्धृतपद्मिनीकः करेणुभिर्वन्य इव द्विपेन्द्रः ॥६८॥

ततो नृपेणानुगताः स्त्रियस्ता भ्राजिष्णुना सातिशयं विरेजुः ।
प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् ॥६९॥

वर्णोदकैः काञ्चनशृङ्गमुक्तैस्तमायताक्ष्यः प्रणयादसिञ्चन् ।
तथागतः सोऽतितरां बभासे सधातुनिष्यन्द इवाद्रिराजः॥७०॥

तेनावरोधप्रमदासखेन विगाहमानेन सरिद्वरां ताम् ।
आकाशगङ्गारतिरप्सरोभिर्वृतो मरुत्वाननुयातलीलः ॥७१॥

यत्कुम्भयोनेरधिगम्य रामः कुशाय राज्येन समं दिदेश ।
तदस्य जैत्राभरणं विहर्तुरज्ञातपातं सलिले ममज्ज ॥७२॥
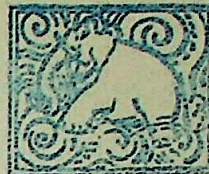
६५. चिपके हुए वस्त्रों वाली स्त्रियों के नितम्बों पर चन्द्रमा के प्रकाश से ढके हुए नक्षत्रों के समान वे करधनियां, जिनके गूंथने वाले सूत के छेद का रास्ता पानी से भर गया है मौन पड़ी हैं।

६६. तेजी में आकर सखियों पर अपने हाथों से पानी की धारा उलीचनेवाली स्त्रियों की कुटिल अलकों से, जिन्हें बदले में सखियों द्वारा पानी से भिगाय गया है, कुंकुम आदि के चूर्ण से लाल पानी की बूंदें टपक रही हैं।

६७. जल विहार से अस्त-व्यस्त स्त्रियों के मुखों की रचना, जिसमें उनके जूड़े खुल गये हैं, फूल-पत्तों की चित्रकारी धुल गई है और मोती के दानों के कुण्डल खिसक गये हैं, सुन्दर ही मालूम हो रही हैं।

६८. वह अपने नाव के विमान से पानी में उतर कर उनके साथ क्रीड़ा करने लगा। उस समय उसके गले का हार हिल रहा था, जिससे वह ऐसा लग रहा था मानों कमलिनी को उखाड़ कर अपने कन्धे पर डाले हुए कोई जंगली हाथी हथिनियों के साथ क्रीड़ा कर रहा है।

६९. तब कान्तिमान राजा के साथ वे स्त्रियां अत्यधिक शोभित हुईं। मोती तो पहले ही आंखों को अच्छे लगते हैं यदि वे प्रभा फैलाने वाले इन्द्रनील मणि से मिल जायं तो फिर क्या कहना?

७०. बड़ी-बड़ी आंखों वाली उन स्त्रियों ने उसे सोने के सींग में भरे रंगीन पानी से भिगोया। इस स्थिति में वह गेरु के झरनों वाले पर्वतराज के समान अत्यधिक शोभायमान हुआ।

७१. अन्त:पुर की स्त्रियों के साथ नदियों में श्रेष्ठ सरयू नदी में क्रीड़ारत होकर उसने आकाश गंगा में रति करने वाली अप्सराओं से घिरे हुए इन्द्र की क्रीड़ा का अनुकरण किया।

७२. जिस आभरण को राम ने कुम्भयोनि अगस्त्य ऋषि से प्राप्त करके कुश को राज्य के साथ दिया था वह उसका जैत्राभरण अनजाने ही गिरकर पानी में डूब गया।

स्नात्वा यथाकाममसौ सदारस्तीरोपकार्यां गतमात्र एव ।
दिव्येन शून्यं वलयेन बाहुमपोढनेपथ्यविधिर्ददर्श ।।७३।।

जयश्रियः संवननं यतस्तदामुक्तपूर्वं गुरुणा च यस्मात् ।
सेहेऽस्य न भ्रंशमतो न लोभात्स तुल्यपुष्पाभरणो हि धीरः ।।७४।।

ततः समाज्ञापयदाशु सर्वानानायिनस्तद्विचये नदीष्णान् ।
बन्ध्यश्रमास्ते सरयूं विगाह्य तमूचुरम्लानमुखप्रसादाः ।।७५।।

कृतः प्रयत्नो न च देव लब्धं मग्नं पयस्याभरणोत्तमं ते।
नागेन लौल्यात्कुमुदेन नूनमुपात्तमन्तर्ह्रदवासिना तत् ।।७६।।

ततः स कृत्वा धनुराततज्यं धनुर्धरः कोपविलोहिताक्षः।
गारुत्मतं तीरगतस्तरस्वी भुजङ्गनाशाय समाददेऽस्त्रम् ।।७७।।

तस्मिन्ह्रदः संहितमात्र एव क्षोभात्समाविद्धतरङ्गहस्तः ।
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः करीव वन्यः परुषं ररास ।।७८।।

तस्मात्समुद्रादिव मथ्यमानादुद्वृत्तनक्रात्सहसोन्ममज्ज ।
लक्ष्म्येव सार्धं सुरराजवृक्षः कन्यां पुरस्कृत्य भुजङ्गराजः।।७९।।

विभूषणप्रत्युपहारहस्तमुपस्थितं वीक्ष्य विशांपतिस्तम् ।
सौपर्णमस्त्रं प्रतिसञ्जहार प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः।।८०।।

७३. कुश ने पत्नियों के साथ इच्छानुसार स्नान करके तटवर्ती तम्बू में जाते ही प्रसाधन के पूर्व ही उस दिव्य कंकण से अपनी भुजा को सूना पाया।

७४. वह आभूषण विजयलक्ष्मी को वश में करने वाला था और उसे पहले उनके पिता धारण कर चुके थे इसलिये उसका गिरना उन्हें सहन नहीं हुआ। इसका कारण लोभ नहीं था क्योंकि वह धीर फूल और आभूषण को समान मानता था।

७५. तब नदी में अवगाहन करने में चतुर सभी जालवालों को उस आभरण को ढूंढने की शीघ्र ही आज्ञा दी। वे जालवाले सरयू का आलोड़न करके अपने प्रयास में विफल हो गये, फिर भी उसकी स्थिति समझकर अपने मुख की प्रसन्नता को मलिन न करते हुए उन्होंने कहा —

७६. हे देव, प्रयत्न करने पर भी पानी में डूबा हुआ आपका वह उत्तम आभरण नहीं मिला। निश्चय ही भीतर गहरे जल में रहने वाले कुमुद नामक नाग ने लोभ के वशीभूत हो उसे ले लिया है।

७७. क्रोध से लाल-लाल आंखों वाले धनुषधारी बलवान कुश ने धनुष की डोरी चढ़ा कर कुमुद सर्प के नाश के लिये गारुड़ास्त्र को हाथ में लिया।

७८. उस अस्त्र के लेते ही गहरे जल में खलबली मच गयी और उसके कारण उसके लहर रूपी हाथ आपस में मिल गये। किनारों को प्रताड़ित करते हुए उस ह्रद ने गड्ढे में गिरते हुए बनैले हाथी के समान बड़ा कठोर शब्द किया।

७९. मथे जाते हुए समुद्र के समान उस गहरे जल से जिसके मगर क्षुब्ध हो गये थे सांपों का राजा कुमुद लक्ष्मी सहित कल्पतरु के समान अपनी कन्या को आगे करके सहसा ऊपर आया।

८०. राजा कुश ने विशेष आभूषण को प्रत्युपहार के रूप में हाथ में लिये सामने खड़े उस कुमुद को देखकर गारुडास्त्र को वापस रख लिया क्योंकि सज्जन लोग नम्र लोगों के प्रति अपना क्रोध स्थिर बनाकर नहीं रखते।

त्रैलोक्यनाथप्रभवं प्रभावात्कुशं द्विषामंकुशमस्त्रविद्वान् ।
मानोन्नतेनाप्यभिवन्द्य मूर्ध्ना मूर्धाभिषिक्तं कुमुदो बभाषे ।।८१।।

अवैमि कार्यान्तरमानुषस्य विष्णोः सुताख्यामपरां तनुं त्वाम् ।
सोऽहं कथं नाम तवाचरेयमाराधनीयस्य धृतेर्विघातम् ।।८२।।

कराभिघातोत्थितकन्दुकेयमालोक्य बालातिकुतूहलेन ।
ह्रदात्पतज्ज्योतिरिवान्तरिक्षादादत्त जैत्राभरणं त्वदीयम् ।।८३।।

तदेतदाजानुविलम्बिना ते ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन ।
भुजेन रक्षापरिघेण भूमेरुपैतु योगं पुनरंसलेन ।।८४।।

इमां स्वसारं च यवीयसीं मे कुमद्वतीं नार्हसि नानुमन्तुम् ।
आत्मापराधं नुदतीं चिराय शुश्रूषया पार्थिव पादयोस्ते ।।८५।।

इत्यूचिवानुपहृताभरणःक्षितीशं श्लाघ्यो भवान्स्वजन इत्यनुभाषितारम्।
संयोजयां विधिवदास समेतबन्धुः कन्यामयेन कुमुदः कुलभूषणेन ।।८६।

तस्याः स्पृष्टे मनुजपतिना साहचर्याय हस्ते
माङ्गल्योर्णावलयिनि पुरः पावकस्योच्छिखस्य ।
दिव्यस्तूर्यध्वनिरुदचरद्व्यश्नुवानो दिगन्तान्
गन्धोदग्रं तदनु ववृषुः पुष्पमाश्चर्यमेघाः ।।८७।।

इत्थंनागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथिलेयं
लब्ध्वा बन्धुं तमपि च कुशः पञ्चमं तक्षकस्य ।
एकः शङ्कां पितृवधरिपोरत्यजद्वैनतेया
च्छान्तव्यालामवनिमपरः पौरकान्तः शशास ।।   ।।

———

८१. अस्त्रों की विद्या को जानने वाले कुमुद तीनों लोकों के स्वामी राम के पुत्र कुश को, जो अपने प्रभाव के कारण शत्रुओं के लिये अंकुश के समान थे और जो सिर से स्नान कर चुके थे अपने गौरव से ऊंचे सिर से प्रणाम करके बोले—

८२. कार्य विशेष के लिये मनुष्य रूपधारी विष्णु के पुत्र कहलाने वाले आप उनके ही दूसरे शरीर हैं यह बात मुझे मालूम है ऐसी स्थिति में, मैं आप जैसे पूज्य व्यक्ति की प्रीति को तोड़ने के लिये कोई प्रतिकूल आचरण कैसे करूंगा ?

८३. अपने हाथ से गेंद को ऊपर उछालती हुई इस लड़की ने अंतरिक्ष से गिरते हुए नक्षत्र के समान गहरे पानी से गिरते हुए आपके इस जैत्राभरण को उत्सुकतावश ले लिया ।

८४. अतः अपने घुटने को छूने वाली, विशाल, धनुष की डोरी के आघात से लम्बे-लम्बे निशानों से युक्त, और भूमि की रक्षा के लिये अर्गला के समान बलवान् भुजा में इस आभूषण को आप पुनः धारण करें ।

८५. हे राजा, आपके चरणों की दीर्घकालीन सेवा से अपने अपराध को दूर करने की अभिलाषिणी मेरी इस छोटी वहन कुमुद्वती को स्वीकार करने में आपको कोई आपत्ति न होनी चाहिये ।

८६. ऐसा कहकर आभूषण वापिस देने के उपरान्त उत्तर में आप प्रशंसनीय बन्धु हैं कहने वाले राजा को कुमुद ने अपने स्वजनों के साथ ही अपने कुल के भूषण स्वरूप उस कन्यारत्न से विधिपूर्वक युक्त कर दिया ।

८७. मनुष्यों के स्वामी राजा कुश के द्वारा सहधर्म का पालन करने के लिये मंगल के ऊनी कंगन वाले हाथ को उठती हुई लपट वाली अग्नि के सामने स्पर्श करने पर दिगन्तों को व्याप्त करने वाली दिव्य तुरही की ध्वनि फैल गई और उसके साथ ही अद्भुत मेघों ने बड़ी ही तेज सुगन्ध वाले फूलों की वर्षा की ।

८८. इस प्रकार नाग कुमुद ने तीनों लोकों के स्वामी राम के सीता से उत्पन्न सुपुत्र कुश को और कुश ने भी तक्षक के पांचवें पुत्र को अपने सम्बन्धी के रूप में पाया । उनमें से एक अपने पूर्वजों को मारने के कारण शत्रु के रूप में विद्यमान गरुड़ की ओर से शंकामुक्त हो गया और दूसरे राजा ने सांपों के उपद्रव से निश्चिन्त पृथ्वी पर शासन किया ।

सप्तदशः सर्गः

अतिथिं नाम काकुत्स्थात्पुत्रं प्राप कुमुद्वती ।
पश्चिमाद्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना ।।१।।

स पितुः पितृमान्वंशं मातृश्चानुपमद्युतिः ।
अपुनात्सवितेवोभौ मार्गावुत्तरदक्षिणौ ।।२।।

तमादौ कुशविद्यानामर्थमर्थविदां वरः ।
पश्चात्पार्थिवकन्यानां पाणिमग्राहयत्पिता ।।३।।

जात्यस्तेनाभिजातेन शूरः शौर्यवता कुशः ।
अमन्यतैकमात्मानमनेकं वशिनां वशी ।।४।।

स कुलोचितमिन्द्रस्य साहायकमुपेयिवान् ।
जघान समरे दैत्यं दुर्जयं तेन चावधि ।।५।।

तं स्वसा नागराजस्य कुमदस्य कुमुद्वती ।
अन्वगात्कुमुदानन्दं शशाङ्कमिव कौमुदी ।।६।।

तयोर्दिवस्पतेरासीदेकः सिंहासनार्धभाक् ।
द्वितीयाऽपि सखी शच्याः पारिजातांशभागिनी ।।७।।

तदात्मसम्भवं राज्ये मन्त्रिवृद्धाः समादधुः ।
स्मरन्तः पश्चिमामाज्ञां भर्तुः सङ्ग्रामयायिनः ।।८।।

सत्रहवाँ सर्ग

१. कुमुद्वती ने काकुत्स्थ कुश से अतिथि नामक पुत्र प्राप्त किया, जैसे बुद्धि ब्राह्ममुहूर्त से आनन्द प्राप्त करती है।

२. सुशिक्षित और अनुपम शोभा वाले अतिथि नामक राजा ने पिता और माता दोनों के वंशों को उसी प्रकार पवित्र किया, जैसे सूर्य उत्तम और दक्षिण दोनों मार्गों को पवित्र करता है।

३. अर्थ को जानने वालों में श्रेष्ठ उसके पिता ने पहले उसे कुल की विद्याओं का भलीभांति ज्ञान कराया और उसके बाद राजकुमारियों से उसका पाणिग्रहण।

४. स्वयं कुलीन, पराक्रमी और वशी कुश ने उस कुलीन, पराक्रमी और वशी पुत्र से अकेले भी अपने आपको अनेक माना।

५. कुश ने अपने कुल की मर्यादा के अनुसार इन्द्र के सहायक का काम किया। उसने युद्ध में दुर्जय राक्षस को मारा और उसके द्वारा स्वयं भी मारा गया।

६. नागराज कुमुद की बहन कुमुद्वती ने उसका उसी प्रकार अनुसरण किया, जैसे कुमुदों को आनन्द देनेवाले चन्द्रमा का चांदनी अनुसरण करती है।

७. उन दोनों में एक इन्द्र के सिंहासन के आधे भाग का अधिकारी हुआ और दूसरी शची के पारिजात में से अपना हिस्सा लेने वाली सखी बन गई।

८. युद्ध में जाते समय अपने स्वामी की अन्तिम आज्ञा को स्मरण करते हुए बूढ़े मंत्रियों ने राजा के उस पुत्र को राज सिंहासन पर बिठा दिया।

ते तस्य कल्पयामासुरभिषेकाय शिल्पिभिः ।
विमानं नवमुद्वेदि चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम् ॥९॥

तत्रैनं हेमकुम्भेषु सम्भृतैस्तीर्थवारिभिः
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम् ॥१०॥

नदद्भिः स्निग्धगम्भीरं तूर्यैराहतपुष्करैः।
अन्वमीयत कल्याणं तस्याविच्छिन्नसन्तति ॥११॥

दूर्वायवाङ्कुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान् ।
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स भेजे नीराजनाविधीन् ॥१२॥

पुरोहितपुरोगास्तं जिष्णुं जैत्रैरथर्वभिः ।
उपचक्रमिरे पूर्वमभिषेक्तुं द्विजातयः ॥१३॥

तस्यौघमहती मूर्ध्नि निपतन्ती व्यरोचत ।
सशब्दमभिषेकश्रीर्गङ्गेव त्रिपुरद्विषः ॥१४॥

स्तूयमानः क्षणे तस्मिन्नलक्ष्यत स बन्दिभिः ।
प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारङ्गैरभिनन्दितः ॥१५॥

तस्य सन्मन्त्रपूताभिः स्नानमद्भिः प्रतीच्छतः ।
ववृधे वैद्युतस्याग्नेर्वृष्टिसेकादिव द्युतिः ॥१६॥
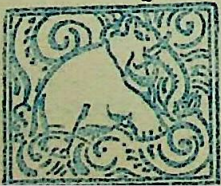
९. उन मन्त्रियों ने अतिथि के अभिषेक के लिये शिल्पियों से एक नया मण्डप बनवाया जिसमें चार खम्भे थे और जिसकी वेदी ऊंची थी।

१०. तब उस मण्डप में भद्रपीठ आसन पर बैठे हुए राजा अतिथि के पास सोने के घड़ों में भरे हुए तीर्थों का जल लेकर मन्त्री आदि आये।

११. मुहड़े पर थाप मारने के कारण स्निग्ध और गम्भीर शब्द करनेवाले तूर्य से उस राजा के निरन्तर होनेवाले कल्याण की परम्परा का अनुमान होता था।

१२. उस राजा अतिथि ने जाति के बड़े-बूढ़ों द्वारा की गई आरती, जो दूब, जौ के अंकुर, वड़ की छाल और कमल की कलियों से युक्त थी, स्वीकार की।

१३. उन ब्राह्मणों ने, जिनमें पुरोहितों का प्रमुख स्थान था, उस जयशील राजा अतिथि का अथर्ववेद के जैत्र मन्त्रों से पहले अभिषेक करना आरम्भ किया।

१४. उस अतिथि के सिर पर शब्द करते हुए तीव्र प्रवाह वाले अभिषेक के जल की शोभा ऐसी लगती थी मानों शिव के मस्तक पर गिरती हुई गंगा।

१५. उस समय बन्दीजनों द्वारा स्तुति किये जाते हुए राजा अतिथि ऐसे दिखाई दिये मानों चातक उमड़े हुए मेघों का स्वागत कर रहे हों।

१६. उत्कृष्ट मन्त्रों से पवित्र किये गये जल से स्नान करते हुए उसकी कान्ति ऐसी बढ़ी जैसे वृष्टि के पड़ने से बिजली की चमक बढ़ जाती है।

स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु ।
यावतैषां समाप्येरन्यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः ।।१७।।

ते प्रीतमनसस्तस्मै यामाशिषमुदैरयन् ।
सा तस्य कर्मनिर्वृत्तैर्दूरं पश्चात्कृता फलैः ।।१८।।

बन्धच्छेदं स बद्धानां वधार्हाणामवध्यताम् ।
धुर्याणां च धुरो मोक्षमदोहं चादिशद्गवाम् ।। १९।।

क्रीडापतत्त्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः ।
लब्धमोक्षास्तदादेशाद्यथेष्टगतयोऽभवन् ।।२०।।

ततः कक्ष्यान्तरन्यस्तं गजदन्तासनं शुचि ।
सोत्तरच्छदमध्यास्त नेपथ्यग्रहणाय सः ।।२१।।

तं धूपाश्यानकेशान्तं तोयनिर्णिक्तपाणयः ।
आकल्पसाधनैस्तैस्तैरुपसेदुः प्रसाधकाः ।।२२।।

तेऽस्य मुक्तागुणोन्नद्धं मौलिमन्तर्गतस्रजम् ।
प्रत्यूपुः पद्मरागेण प्रभामण्डलशोभिना ।।२३।।

चन्दनेनाङ्गरागं च मृगनाभिसुगन्धिना ।
समापय्य ततश्चक्रुः पत्रं विन्यस्तरोचनम् ।।२४।।

१७. उस राजा अतिथि ने अभिषेक के अन्त में स्नातकों को इतना धन दिया जिससे वे पर्याप्त दक्षिणावाले अपने यज्ञों को समाप्त कर सकें।

१८. प्रसन्न मनवाले स्नातकों ने उस अतिथि को जो आशीर्वाद दिये वे उसके पहले के कर्मों से प्राप्त फलों से बहुत दूर पीछे जा पड़े।

१९. उस राजा अतिथि ने बन्धन में पड़े हुए लोगों के बंधन काटने, वध के योग्य लोगों को प्राणदान देने, जुए में जुते हुए पशुओं आदि को भारमुक्त करने और गाय आदि दूध देने वाले पशुओं को न दुहने का आदेश दिया।

२०. पिंजरे में पड़ हुए तोता आदि उसके पालतू पक्षी भी उसके आदेश से छोड़ दिये गये और इच्छानुसार जहां-तहां उड़ने लगे।

२१. तब वह राजा अतिथि प्रसाधन के लिये दूसरे कक्ष में रखे हुए हाथीदांत के निर्मल आसन पर बैठे जिस पर कपड़ा बिछा हुआ था।

२२. पानी से हाथ धोकर अलंकार धारण कराने वालों ने धूप से उसके केशपाश को सुखाकर उसे सभी प्रकार के प्रसाधन के साधनों से सजाया।

२३. उन सजाने वालों ने मोती की लड़ियों से बंधे और बीच में फूल की मालाओं से सजे हुए राजा अतिथि के मस्तक को अपने बिखरते हुए प्रकाश के कारण शोभायमान पद्मराग मणि से सजाया।

२४. कस्तूरी से सुगन्धित चन्दन का अंगराग लगाकर उसके अनन्तर उन्होंने उस पर गोरोचन से पत्र रचना की।

आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान् ।
आसीदतिशयप्रेक्ष्यः स राज्यश्रीवधूवरः ।।२५।।

नेपथ्यदर्शिनश्छाया तस्यादर्शे हिरण्मये ।
विरराजोदिते सूर्ये मेरौ कल्पतरोरिव ।।२६।।

स राजककुदव्यग्रपाणिभिः पार्श्ववर्तिभिः ।
ययावुदीरितालोकः सुधर्मानवमां सभाम् ।।२७।।

वितानसहितं तत्र भेजे पैतृकमासनम् ।
चूडामणिभिरुद्घृष्टपादपीठं महीक्षिताम् ।।२८।।

शुशुभे तेन चाक्रान्तं मङ्गलायतनं महत् ।
श्रीवत्सलक्षणं वक्षः कौस्तुभेनेव केशवम् ।।२९।।

बभौ भूयः कुमारत्वादाधिराज्यमवाप्य सः ।
रेखाभावादुपारूढः सामग्र्यमिव चन्द्रमाः ।।३०।।

प्रसन्नमुखरागं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम् ।
मूर्तिमन्तममन्यन्त विश्वासमनुजीविनः ।।३१।।

स पुरं पुरहूतश्रीः कल्पद्रुमनिभध्वजाम् ।
क्रममाणश्चकार द्यां नागेनैरावतौजसा ।।३२।

२५. आभूषण, माला और हंसों के चिन्ह वाले दुपट्टे को धारण करके वह राज्यलक्ष्मी रूपी वधू का श्रेष्ठ वर बहुत अधिक दर्शनीय हो गया ।

२६. सोने के दर्पण में अपने वेष को देखते हुए राजा अतिथि की छाया ऐसी शोभायमान हुई, जैसे सूर्य के उदय होने पर मेरु पर्वत में कल्पवृक्ष शोभायमान होता है ।

२७. तब राजा अतिथि अपनी सभा में गये जो देवताओं की सभा सुधर्मा से किसी प्रकार कम नहीं थी । उस समय उनके पार्श्ववर्ती लोग जय-जयकार कर रहे थे और उनके हाथ चमर, छत्र आदि राज्यचिन्हों को ले चलने के कारण हिल रहे थे ।

२८. वहां वे चन्दोवे से युक्त, राजाओं के चूड़ामणि से घिसने वाली पैर रखने की चौकी सहित अपने पूर्वजों के आसन पर बैठे ।

२९. वह विशाल मंगलगृह राजा के विद्यमान होने से वैसे ही शोभायमान हुआ, जैसे विष्णु का श्रीवत्स से चिह्नित वक्षस्थल कौस्तुभ-मणि से शोभायमान होता है ।

३०. राजा अतिथि युवराज पद के बाद महाराज पद प्राप्त करके उसी प्रकार शोभित हुए, जैसे चन्द्रमा रेखा की स्थिति से पूर्णता की स्थिति को प्राप्त करता है ।

३१. मुख की प्रसन्नता से भरी शोभा वाले और मुस्कराकर बात करने वाले उस राजा को उसके आश्रितों ने मूर्तिमान विश्वास समझा ।

३२. इन्द्र के समान ऐश्वर्य वाले उस राजा अतिथि ने कल्पवृक्ष के समान ध्वजा वाली अयोध्या नगरी को ऐरावत के समान बलशाली हाथी पर बैठकर घूमते हुए स्वर्ग सा बना दिया ।

तस्यैकस्योच्छ्रितं छत्रं मूर्ध्नि तेनामलत्विषा ।
पूर्वराजवियोगौष्म्यं कृत्स्नस्य जगतो हृतम् ।।३३।।

धूमादग्नेः शिखाः पश्चादुदयादंशवो रवेः ।
सोऽतीत्य तेजसां वृत्तिं सममेवोत्थितो गुणैः ।।३४।।

तं प्रीतिविशदैर्नेत्रैरन्वयुः पौरयोषितः ।
शरत्प्रसन्नैर्ज्योतिर्भिर्विभावर्य इव ध्रुवम् ।।३५।।

अयोध्यादेवताश्चैनं प्रशस्तायतनार्चिताः ।
अनुदध्युरनुध्येयं सान्निध्यैः प्रतिमागतैः ।।३६।।

यावन्नाश्यायते वेदिरभिषेकजलाप्लुता ।
तावदेवास्य वेलान्तं प्रतापः प्राप दुःसहः ।।३७।।

वसिष्ठस्य गुरोर्मन्त्राः सायकास्तस्य धन्विनः ।
किं तत्साध्यं यदुभये साधयेयुर्न सङ्गताः ।।३[illegible]

स धर्मस्थसखः शश्वदर्थिप्रत्यर्थिनां स्वयम् ।
ददर्श संशयच्छेद्यान्व्यवहारानतंद्रितः ।।३९।।

ततः परमभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः।
युयोज पाकाभिमुखैर्भृत्यान्विज्ञापनाफलैः ।।४०।।

३३. उस समय एकमात्र राजा अतिथि के सिर पर ही छत्र लगा हुआ था। पहले राजा कुश के वियोग से सारे जगत् को जो दुःख हुआ था वह उस श्वेत प्रभा वाले छत्र से दूर हो गया।

३४. आग के धुएं के पश्चात् आग की लपट और सूर्य के उदय के पश्चात् उसकी किरणें ऊपर आती हैं। वह राजा अतिथि अग्नि आदि तेज वालों के स्वभाव का अतिक्रमण करके अपने गुणों के साथ ही उदित हुआ।

३५ नगर की स्त्रियां प्रेम के कारण प्रसन्न नेत्रों से राजा अतिथि को उसी प्रकार देखने लगीं जैसे शरद ऋतु में रातें प्रसन्न नक्षत्रों द्वारा ध्रुव को देखती हैं।

३६. विशाल मन्दिरों में पूजित अयोध्या के देवताओं ने प्रतिमा के पास आने के कारण अपनी निकटता से अनुग्रह के पात्र उस राजा अतिथि पर अपनी कृपा की।

३७. अभिषेक के जल से सिंची हुई अभिषेक की वेदी अभी सूख भी न पाई थी कि उसका दुःसह प्रताप समुद्र तट तक फैल गया।

३८. गुरु वसिष्ठ के मन्त्र और उस धनुषधारी के बाण--ये दोनों मिलकर ऐसा कौन सा कार्य था जिसे सिद्ध न कर लेते।

३९. अपने सभासदों के साथ आलस्यरहित होकर वह राजा अतिथि प्रतिदिन वादियों और प्रतिवादियों के संशयास्पद होने के कारण अवश्य ही निबटाने योग्य मामलों को स्वयं देखता था।

४०. इसके बाद अपने मुख आदि की चेष्टा से वह सेवकों के प्रति अपना सद्भाव प्रकट करता था और संकेतों से बताये गये तथा शीघ्र ही पूर्ण होने वाले उनके वे मनोरथ पूर्ण हो जाते थे।

प्रजास्तद्गुरुणा नद्यो नभसेव विवर्धिताः ।
तस्मिंस्तु भूयसीं वृद्धिं नभस्ये ता इवाययुः ।।४१।।

यदुवाच न तन्मिथ्या यद्ददौ न जहार तत् ।
सोऽभूद्भग्नव्रतः शत्रूनुद्धृत्य प्रतिरोपयन् ।।४२।।

वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम् ।
तानि तस्मिन्समस्तानि न तस्योत्सिषिचे मनः ।।४३।।

इत्थं जनितरागासु प्रकृतिष्वनुवासरम् ।
अक्षोभ्यः स नवोऽप्यासीद् दृढमूल इव द्रुमः ।।४४।।

अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः ।
अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान्षट् पूर्वमजयद्रिपून् ।।४५।।

प्रसादाभिमुखे तस्मिंश्चपलाऽपि स्वभावतः।
निकषे हेमरेखेव श्रीरासीदनपायिनी ।।४६।।

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम् ।
अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष सः ।।४७।।

न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः ।
अदृष्टमभवत्किञ्चिद्व्यभ्रस्येव विवस्वतः ।।४८।।

४१. उसके पिता द्वारा प्रजा की वृद्धि इस प्रकार हुई, जैसे सावन का महीना नदियों में जल की वृद्धि करता है किन्तु उसके समय में उनकी और भी अधिक उन्नति हुई, जैसे भादों में उन नदियों का जल बहुत अधिक बढ़ जाता है।

४२. उसने जो कहा वह झूठा नहीं हुआ और जो दिया वह फिर वापस नहीं लिया, किन्तु शत्रुओं को उखाड़ फेंकने के बाद फिर उन्हें स्थापित करने के सम्बन्ध में उसका व्रत खण्डित हो जाता था।

४३. अवस्था, रूप, ऐश्वर्य, इनमें प्रत्येक अभिमान का कारण होता हैं, किन्तु उसमें तीनों ने एक साथ रहकर भी उसके मन में गर्व पैदा नहीं किया।

४४. इस प्रकार अपनी प्रजा में दिनोंदिन प्रेम उत्पन्न करने के कारण नया होते हुए भी वह पक्की जड़ वाले वृक्ष के समान अविचलित था।

४५. बाहर के शत्रु सदा नहीं रहते और अपने से दूर भी रहतेहैं, इसलिये उसने सदा भीतर रहने वाले अपने काम आदि छः शत्रुओं को पहले ही जीत लिया।

४६. स्वभाव से चंचल होते हुए भी लक्ष्मी उस राजा के प्रसन्न मुख होने पर उसी प्रकार स्थिर हो गई, जैसे कसौटी पर सोने की रेखा।

४७. पराक्रमविहीन केवल नीति कायरता की सूचक है और नीति रहित केवल पराक्रम हिंस्रपशुओं की चेष्टा के समान। इसलिये उसने दोनों को मिलाकर उनसे सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा की।

४८. उसने किरणों के समान अपने गुप्तचरों को सर्वत्र फैला दिया था जिससे उसके राज्य में कुछ भी ऐसा नहीं था जिसका उसे पता न हो, जैसे स्वच्छ आकाश में सूर्य के लिये कुछ भी अदृष्ट नहीं होता।

रात्रिंदिवविभागेषु यदादिष्टं महीक्षिताम् ।
तत्सिषेवे नियोगेन स विकल्पपराङ्मुखः ॥४९॥

मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य बभूव सह मन्त्रिभिः ।
स जातु सेव्यमानोऽपि गुप्तद्वारो न सूच्यते ॥५०॥

परेषु स्वेषु च क्षिप्तैरविज्ञातपरस्परैः ।
सोऽपसर्पैर्जजागार यथाकालं स्वपन्नपि ॥५१॥

दुर्गाणि दुर्ग्रहाण्यासंस्तस्य रोद्धुरपि द्विषाम्।
न हि सिंहो गजास्कन्दी भयाद् गिरिगुहालयः ॥५२॥

भव्यमुख्याः समारम्भाः प्रत्यवेक्ष्या निरत्यया ।
गर्भशालिसधर्माणस्तस्य गूढं विपेचिरे ॥५३॥

अपथेन प्रववृते न जातूपचितोऽपि सः ।
वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानं लवणाम्भसः ॥५४॥

कामं प्रकृतिवैराग्यं सद्यः शमयितुं क्षमः ।
यस्य कार्यः प्रतीकारः स तन्नैवोदपादयत् ॥५५॥

शक्येष्वेवाभवद्यात्रा तस्य शक्तिमतः सतः ।
समीरणसहायोऽपि नाम्भःप्रार्थी दवानलः ॥५६॥

४९. रात और दिन में किसी भी प्रहर वह राजाओं को जो भी आदेश देता था उसमें किसी प्रकार की आनाकानी किये बिना ही वे उसका दृढ़ता से पालन करते थे ।

५०. वह अपने मन्त्रियों के साथ प्रतिदिन मन्त्रणा करता था किन्तु उनके गुप्त मार्ग से आने जाने से बारंबार मन्त्रणा होने पर भी उसका पता किसी को नहीं लगता था ।

५१. समयानुसार सोते हुए भी वह राजा अतिथि अपने शत्रुओं और मित्रों में भेजे गये और एक-दूसरे को न जानने वाले दूतों की सहायता से जागता ही रहता था ।

५२. शत्रुओं को रोकने वाले उस राजा अतिथि के दुर्ग बड़े ही दुर्धर्ष थे । हाथियों का मारने वाला सिंह गुफा में भय के मारे नहीं सोता ।

५३. उसकी कल्याणप्रधान योजनाएं करना चाहिये या नहीं इस कार के वितर्क के कारण बाधा की आशंका से मुक्त होती थीं और भीतर ही भीतर पकने वाले चावलों के समान गुप्त रूप से पूर्ण हो जाती थीं ।

५४. वह राजा अतिथि उन्नति करते हुए भी कभी कुमार्ग पर नहीं चला । जैसे समुद्र ज्वार आने पर नदी के मुहाने से ही आगे बढ़ता है ।

५५. प्रजा की उदासीनता को शीघ्र ही भलीभांत शान्त करने की क्षमतावाला वह राजा जिसका प्रतिकार करना चाहिये, उसे उत्पन्न ही नहीं होने देता था ।

५६. शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी वह राजा अपने से कम बलवाले राजाओं पर ही चढ़ाई करता था । वायु की सहायता प्राप्त होने पर भी वन की आग जल पर आक्रमण करना नहीं चाहती ।

न धर्ममर्थकामाभ्यां बबाधे न च तेन तौ ।
नार्थं कामेन कामं वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु ॥५७॥

हीनान्यनुपकर्तॄणि प्रवृद्धानि विकुर्वते ।
तेन मध्यमशक्तीनि मित्राणि स्थापितान्यतः ॥५८॥

परात्मनोः परिच्छिद्य शक्त्यादीनां बलाबलम् ।
ययावेभिर्बलिष्ठश्चेत्परस्मादास्त सोऽन्यथा ॥५९॥

कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसङ्ग्रहः ।
अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते ॥६०॥

परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ।
आवृणोदात्मनो रन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन् रिपून् ॥६१॥

पित्रा संवर्धितो नित्यं कृतास्त्रः साम्परायिकः ।
तस्य दण्डवतो दण्डः स्वदेहान्न व्यशिष्यत ॥६२॥

सर्पस्येव शिरोरत्नं नास्य शक्तित्रयं परः ।
स चकर्ष परस्मात्तदयस्कान्त इवायसम् ॥६३॥

वापीष्विव स्रवन्तीषु वनेषूपवनेष्विव ।
सार्थाः स्वैरं स्वकीयेषु चेरुर्वेश्मस्विवाद्रिषु ॥६४॥

५७. उस राजा ने अर्थ और काम से धर्म को हानि न पहुंचाई और न धर्म से ही उन दोनों की क्षति होने दी। उसने काम से अर्थ की और अर्थ से काम की भी क्षति न होने दी। तीनों पर ही उसका समान भाव था।

५८. अत्यन्त दुर्बल मित्र कोई उपकार नहीं कर सकते और बहुत ही समृद्ध मित्र विरुद्ध आचरण करते हैं इसलिये उसने मध्यम शक्ति वालों को अपना मित्र बनाया।

५९. वह राजा शत्रुओं की और अपनी शक्ति आदि की अधिकता और कमी को देखकर यदि यह पाता कि वह उनसे बलवान है तो उन पर आक्रमण करता अन्यथा चुप रहता।

६०. कोष संग्रह करना उचित है यह मानकर ही वह धन संग्रह करता था। चातक उसी मेघ का स्वागत करते हैं जिसमें पानी होता है।

६१. वह राजा अपने शत्रुओं की योजनाओं को तो बिगाड़ता था पर अपनी योजनाओं को पूर्ण करने के लिये तत्पर रहता था। अपने शत्रुओं की दुर्बलता पर प्रहार करते हुए वह अपनी दुर्बलताओं को ढककर रखता था।

६२. उस सेनावाले राजा की सेना जिसे उसके पिता ने अस्त्र-शस्त्र के उपयोग की शिक्षा देकर और युद्ध करने के योग्य बनाकर निरन्तर बढ़ाया था अपने को उससे अलग नहीं मानती थी।

६३. सर्प के सिर की मणि के समान उसकी तीन शक्तियों को शत्रु न ले सका किन्तु उसने स्वयं अपने शत्रुओं से उन तीनों शक्तियों को उसी प्रकार ले लिया जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को खींच लेता है।

६४. उसके राज्य में व्यापारी लोग निश्चिन्त होकर नदियों में बावड़ी के समान, वनों में उपवनों के समान और पर्वतों में अपने घर के समान विचरण करते थे।

तपो रक्षन्स विघ्नेभ्यस्तस्करेभ्यश्च सम्पदः ।
यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडंशभाक् ॥६५॥

खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः सस्यं वनैर्गजान् ।
दिदेश वेतनं तस्मै रक्षासदृशमेव भूः ॥६६॥

स गणानां बलानां च षण्णां षण्मुखविक्रमः ।
बभूव विनियोगज्ञः साधनीयेषु वस्तुषु ॥६७॥

इति क्रमात्प्रयुञ्जानो राजनीतिं चतुर्विधाम् ।
आतीर्थादप्रतीघातं स तस्याः फलमानशे ॥६८॥

कूटयुद्धविधिज्ञेऽपि तस्मिन्सन्मार्गयोधिनि ।
भेजेऽभिसारिकावृत्तिं जयश्रीर्वीरगामिनी ॥६९॥

प्रायः प्रतापभग्नत्वादरीणां तस्य दुर्लभः ।
रणो गन्धद्विपस्येव गन्धभिन्नान्यदन्तिनः ॥७०॥

प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः ।
स तु तत्समवृद्धिश्च न चाभूत्ताविव क्षयी ॥७१॥

सन्तस्तस्याभिगमनादत्यर्थं महतः कृशाः ।
उदधेरिव जीमूताः प्रापुर्दातृत्वमर्थिनः ॥७२॥

६५. विघ्नों से तपस्या की, और चोरी से सम्पत्ति की रक्षा करते हुए उसने आश्रमों और वर्णों से उनकी सम्पत्ति के अनुसार छठा भाग प्राप्त किया ।

६६. खानों से रत्न, खेतों से अन्न और वनों से हाथी देकर पृथ्वी ने अपनी रक्षा के अनुसार ही उसे वेतन दिया ।

६७. कार्तिकेय के समान पराक्रमी वह राजा संधि, विग्रह आदि छः गुणों और सेना के द्वारा कौन से काम किस प्रकार हो सकते हैं, इसे जानता था ।

६८. इस प्रकार मन्त्री आदि तक के मामले में साम आदि चार प्रकार की राजनीति का क्रमशः उपयोग करते हुए उस राजा ने उसका फल प्राप्त किया ।

६९. कपट-युद्ध की विधि को जानते हुए भी नीतिपूर्वक युद्ध करने वाले उस राजा के प्रति वीरों को वरण करने वाली विजय-श्री ने अभिसारिका के समान आचरण किया ।

७०. उसके सभी शत्रुओं का प्रताप नष्ट हो जाने से उसके लिये युद्ध प्रायः दुर्लभ हो गया, जैसे मतवाले हाथी का मद से रहित हाथियों के साथ युद्ध दुर्लभ हो जाता है ।

७१. विशेष रूप से बढ़ने पर चन्द्रमा का क्षय होता है और समुद्र भी उसी प्रकार कम होता है । उस राजा की वृद्धि तो उनके समान हुई पर उनके समान उसकी अवनति नहीं हुई ।

७२. अत्यन्त दरिद्र होने के कारण विद्वान् लोग याचक बनकर जब उस राजा के पास जाते थे तो उनकी मांग उसी प्रकार पूर्ण होती थी, जैसे समुद्र से मेघ की मांग पूरी होती है ।

स्तूयमानः स जिह्राय स्तुत्यमेव समाचरन् ।
तथाऽपि ववृधे तस्य तत्कारिद्वेषिणो यशः ।।७३।।

दुरितं दर्शनेन घ्नंस्तत्त्वार्थेन नुदंस्तमः ।
प्रजा स्वतन्त्रयांचक्रे शश्वत्सूर्य इवोदितः ।।७४।।

इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमदेंऽशवः ।
गुणास्तस्य विपक्षेऽपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम् ।।७५।।

पराभिसन्धानपरं यद्यप्यस्य विचेष्टितम् ।
जिगीषोरश्वमेधाय धर्म्यमेव बभूव तत् ।।७६।।

एवमुद्यन्प्रभावेण शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना ।
वृषेव देवो देवानां राज्ञां राजा बभूव सः ।।७७।।

पंचमं लोकपालानां तमूचुः साम्ययोगतः ।
भूतानां महतां षष्ठमष्टमं कुलभूभृताम् ।।७८।।

दूरापवर्जितच्छत्रैस्तस्याज्ञां शासनार्पिताम् ।
दधुः शिरोभिर्भूपाला देवाः पौरन्दरीमिव ।।७९।।

ऋत्विजः स तथानर्च दक्षिणाभिर्महाक्रतौ ।
यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च ।।८०।।

७३. स्तुति योग्य काम करते हुए स्तुति किये जाने पर वह राजा लज्जा का अनुभव करता था, फिर भी स्तुति करनेवालों से चिढ़ने वाले उस राजा का यश बढ़ता ही गया।

७४. उस राजा ने निरन्तर उदित रहने वाले सूर्य के समान अपने दर्शन से विघ्नों का नाश करते हुए और वास्तविक बात के समर्थन द्वारा अन्धकार को दूर करते हुए प्रजा को स्वाधीन रखा।

७५, चन्द्रमा की किरणें कमल में प्रवेश नहीं पातीं और सूर्य की कुमुद में, किन्तु उस गुणी के गुणों ने उसके शत्रुओं में भी स्थान प्राप्त कर लिया था।

७६. विजय की इच्छा वाले उस राजा की अश्वमेध यज्ञ के लिये दिग्विजयरूपी चेष्टा यद्यपि शत्रुओं के लिये वंचनापूर्ण थी परन्तु उसके लिये वह धर्मयुक्त ही रही।

७७. इस प्रकार शास्त्र-सम्मत मार्गवाले अपने बढ़ते हुए प्रभाव से वह राजा देवताओं के देवता इन्द्र के समान राजाओं का राजा बन गया।

७८. समानधर्मी होने के कारण लोगों ने उस राजा को लोकपालों में पांचवां, महाभूतों में छठवां और कुल पर्वतों में आठवां कहकर पुकारा।

७९. राजाओं ने शासन-पत्रों में उल्लिखित उस राजा अतिथि की आज्ञा को अपने छत्र को दूर कर शिरोधार्य किया, जैसे देवता इन्द्र की आज्ञा स्वीकार करते हैं।

८०. उस राजा ने अश्वमेध महायज्ञ में ऋत्विजों को दक्षिणा देकर इस प्रकार पुरस्कृत किया कि उसका और कुबेर का दोनों का नाम एकसा हो गया।

इन्द्राद्वृष्टिर्नियमितगदोद्रेकवृत्तिर्यमोऽभू-
द्यादोनाथः शिवजलपथः कर्मणे नौचराणाम् ।
पूर्वापेक्षी तदनु विदधे कोषवृद्धिं कुबेर-
स्तस्मिन्दण्डोपनतचरितं भेजिरे लोकपालाः ॥८१॥

---
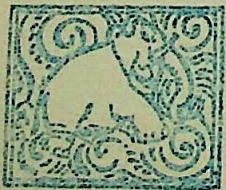
८१. इन्द्र वर्षा करने लगे, यम रोगों को फैलने से रोकने के काम में लग गये, वरुण नाविकों के आवागमन में जल मार्ग को सकुशल बनाने लगे और उसके पूर्ववर्ती राजाओं का ध्यान रखकर कुबेर कोष में वृद्धि करने लगे। सारे लोकपाल उस राजा के राज्य में इस प्रकार आचरण करने लगे मानों वे उसके प्रताप के सामने झुक गये हों।

अष्टादशः सर्गः

सनैषधस्यार्थपतेः सुतायामुत्पादयामास निषिद्धशत्रुः।
अनूनसारं निषधान्नगेन्द्रात्पुत्रं यमाहुर्निषधाख्यमेव ।।१।।

तेनोरुवीर्येण पिता प्रजायै कल्पिष्यमाणेन ननन्द यूना ।
सुवृष्टियोगादिव जीवलोकः सस्येन सम्पत्तिफलोन्मुखेन ।।२।।

शब्दादि निर्विश्य सुखं चिराय तस्मिन्प्रतिष्ठापितराजशब्दः।
कौमुद्वतेयः कुमुदावदातैर्द्यामर्जितां कर्मभिरारुरोह ।।३।।

पौत्रः कुशस्यापि कुशेशयाक्षः ससागरां सागरधीरचेताः।
एकातपत्रां भुवमेकवीरः पुरार्गलादीर्घभुजो बुभोज ।।४।।

तस्यानलौजास्तनयस्तदन्ते वंशश्रियं प्राप नलाभिधानः।
यो नड्वलानीव गजः परेषां बलान्यमृन्दान्नलिनाभवक्त्रः।।५।।

नभश्चरैर्गीतयशः स लेभे नभस्तलश्यामतनुं तनूजम् ।
ख्यातं नभःशब्दमयेन नाम्ना कान्तं नभोमासमिव प्रजानाम् ।।६।।

तस्मै विसृज्योत्तरकोसलानां धर्मोत्तरस्तत्प्रभवे प्रभुत्वम् ।
मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्ध ।।७।।

तेन द्विपानामिव पुण्डरीको राज्ञामजय्योऽजनि पुण्डरीकः ।
शान्ते पितर्याहृतपुण्डरीका यं पुण्डरीकाक्षमिव श्रिता श्रीः ।।८।।

अठारहवां सर्ग

१. शत्रुश्रों का निवारण करने वाले उस राजा अतिथि ने निषध देश के राजा अर्थपति की कन्या से निषध नामक पर्वत के समान बलशाली पुत्र उत्पन्न किया और लोगों ने उसे निषध नाम से पुकारा।

२. अति पराक्रमी और इसीलिये प्रजा की रक्षा के लिये कल्पित उस युवक निषध से पिता अतिथि उसी प्रकार प्रसन्न हुए जैसे अच्छी वर्षा होने पर सम्पत्ति रूपी फल लाने वाली खेती से लोग प्रसन्न होते हैं।

३. कुमुद्वती का पुत्र अतिथि दीर्घकाल तक शब्द, स्पर्श आदि इन्द्रियों के सुख में रत रहकर निषध नामक अपने पुत्र को राजपद देकर अपने पुण्यकर्मो से अर्जित स्वर्ग को चला गया।

४. शतदल कमल के समान नेत्रवाले कुश के पोते निषध ने भी, जिसकी भुजाएं नगर की अर्गला के समान लम्बी थीं, जो अद्वितीय वीर था तथा जिसका मन समुद्र के समान गम्भीर था, एकच्छत्र पृथ्वी का पालन किया।

५. निषध के नल नामक पुत्र ने, जो अग्नि के समान ओजस्वी था पिता की मृत्यु के अनन्तर वंशानुगत राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया। कमल के समान शोभायुक्त मुख वाले उस राजा ने शत्रुओं की सेनाओं को उसी प्रकार रौंद डाला जैसे हाथी सरकण्डों के मैदान को रोंद डालता है।

६. राजा नल ने, जिसके यश का गान गन्धर्व आदि गगनचारी करते थे, आकाश मंडल के समान नीले शरीर वाले पुत्र को प्राप्त किया जो नये नाम से विख्यात था और प्रजाजनों को नभनाम वाले श्रावण मास के समान प्रिय था।

७. धर्म प्रधान उस नल ने उस समर्थ नभ को उत्तर कोसल का वह राज्य देकर फिर से देह का बन्धन न हो, इस उद्देश्य से वृद्धावस्था में अपनाने योग्य और मृगों के साथवाले जीवन से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया।

८. राजा नभ ने हाथियों में पुण्डरीक नामक दिग्गज के समान राजाओं में अजेय पुण्डरीक नामक पुत्र उत्पन्न किया। पिता के स्वर्ग चले जाने पर श्वेत कमल धारण करने वाली लक्ष्मी ने पुण्डरीकाक्ष विष्णु के समान उसे अपना आश्रय बनाया।

स क्षेमधन्वानममोघधन्वा पुत्रं प्रजाक्षेमविधानदक्षम् ।
क्ष्मां लम्भयित्वा क्षमयोपपन्नं वने तपः क्षान्ततरश्चचार ॥९॥

अनीकिनीनां समरेऽग्रयायी तस्यापि देवप्रतिमः सुतोऽभूत् ।
व्यश्रूयतानीकपदावसानं देवादि नाम त्रिदिवेऽपि यस्य ॥१०॥

पिता समाराधनतत्परेण पुत्रेण पुत्री स यथैव तेन ।
पुत्रस्तथैवात्मजवत्सलेन स तेन पित्रा पितृमान्बभूव ॥११॥

पूर्वस्तयोरात्मसमे चिरोढामात्मोद्भवे वर्णचतुष्टयस्य ।
धुरं निधायैकनिधिर्गुणानां जगाम यज्वा यजमानलोकम् ॥१२॥

वशी सुतस्तस्य वशंवदत्वात्स्वेषामिवासीद् द्विषतामपीष्टः।
सकृद्विविग्नानपि हि प्रयुक्तं माधुर्यमीष्टे हरिणान्ग्रहीतुम् ॥१३॥

अहीनगुर्नाम स गां समग्रामहीनबाहुद्रविणः शशास ।
यो हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वाद् युवाप्यनर्थैर्व्यसनैर्विहीनः ॥१४॥

गुरोः स चानन्तरमन्तरज्ञः पुंसां पुमानाद्य इवावतीर्णः ।
उपक्रमैरस्खलितैश्चतुर्भिश्चतुर्दिगीशश्चतुरो बभूव ॥१५॥

तस्मिन्प्रयाते परलोकयात्रां जेतर्यरीणां तनयं तदीयम् ।
उच्चैः शिरस्त्वाज्जितपारियात्रं लक्ष्मीः सिषेवे किल पारियात्रम्॥१६॥

९. अचूक धनुष वाले पुण्डरीक प्रजा का कल्याण करने में चतुर और क्षमाशील क्षेमधन्वा नामक पुत्र को पृथ्वी के लिये सुलभ करवाकर और अत्यन्त सहिष्णु होकर वन में तपस्या करने चले गये।

१०. उस क्षेमधन्वा के भी युद्ध में सेना के आगे चलने वाला देवता के समान पुत्र उत्पन्न हुआ। देव से प्रारम्भ होने वाला और अनीक से समाप्त होने वाला उसका देवानीक नाम स्वर्ग में भी सुप्रसिद्ध है।

११. पिता क्षेमधन्वा अपने सेवापरायण उस पुत्र से जिस प्रकार पुत्रवान् हुआ उसी प्रकार वह पुत्र भी पुत्र पर वात्सल्य भाव रखने वाले अपने पिता से पितृमान् हुआ।

१२. गुणों के एक मात्र निधि और विधिपूर्वक यज्ञ करने वाले उन दोनों में प्रथम क्षेमधन्वा ने अपने जैसे अपने पुत्र देवानीक पर देर तक वहन किये गये चारों वर्णों की रक्षा का भार रखकर यजमानों के लोक स्वर्ग के लिये प्रस्थान किया।

१३. उस देवानीक का समर्थ पुत्र अपने वचन को वश में रखने के कारण अपने बन्धुओं के समान ही अपने शत्रुओं का भी प्रिय बन गया क्योंकि मधुर व्यवहार एक बार डरे हुए हरिणों को भी वश में करने में सफल होता है।

१४. नीचों के सम्पर्क से अलग रहने के कारण युवा होते हुए भी अनर्थकारी दुर्व्यसनों से मुक्त पूर्ण बाहुबल वाले अहीनगु नाम के उस राजा ने समस्त पृथ्वी पर शासन किया।

१५. पुरुषों के मन की बात को जानने वाला और चतुर वह अहीनगु पिता के बाद भूमि पर अवतरित आदि पुरुष विष्णु के समान साम आदि चारों उपायों से चारों दिशाओं का स्वामी बन गया।

१६. उसके परलोक चले जाने पर अपने उन्नत सिर के कारण पारियात्र नाम के कुल पर्वत को पराजित करने वाले और शत्रुओं के विजेता उसके पारियात्र नामक पुत्र की राज्य लक्ष्मी ने सेवा की।

तस्याभवत्सूनुरुदारशीलः शीलः शिलापट्टविशालवक्षाः ।
जितारिपक्षोऽपि शिलीमुखैर्यः शालीनतामव्रजदीड्यमानः ॥१७॥

तमात्मसम्पन्नमनिन्दितात्मा कृत्वा युवानं युवराजमेव ।
सुखानि सोऽभुङ्क्त सुखोपरोधि वृत्तं हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम् ॥१८॥

तं रागबन्धिष्ववितृप्तमेव भोगेषु सौभाग्यविशेषभोग्यम् ।
विलासिनीनामरतिक्षमाऽपि जरा वृथा मत्सरिणी जहार ॥१९॥

उन्नाभ इत्युद्गतनामधेयस्तस्यायथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः ।
सुतोऽभवत्पङ्कजनाभकल्पः कृत्स्नस्य नाभिर्नृपमण्डलस्य ॥२०॥

ततः परं वज्रधरप्रभावस्तदात्मजः संयति वज्रघोषः ।
बभूव वज्राकरभूषणायाः पतिः पृथिव्याः किल वज्रणाभः ॥२१॥

तस्मिन् गते द्यां सुकृतोपलब्धां तत्सम्भवं शङ्खणमर्णवान्ता ।
उत्खातशत्रुं वसुधोपतस्थे रत्नोपहारैरुदितैः खनिभ्यः ॥ २२ ॥

तस्यावसाने हरिदश्वधामा पित्र्यं प्रपेदे पदमश्विरूपः ।
वेलातटेषूषितसैनिकाश्वं पुराविदो यं व्युषिताश्वमाहुः ॥ २३ ॥

आराध्य विश्वेश्वरमीश्वरणेन तेन क्षितेर्विश्वसहो विजज्ञे ।
पातुं सहो विश्वसखः समग्रां विश्वम्भरामात्मजमूर्तिरात्मा ॥ २४ ॥

१७. उस पारियात्र के उदार चरित्रवाला और पत्थर के पटिये के समान विशाल वक्षस्थल वाला शिल नामक पुत्र हुआ जिसने अपने बाणों से शत्रु दल को जीतकर स्तुति प्राप्त करके शालीनता ही दिखाई।

१८. प्रशंसनीय स्वभाव वाले उस पारियात्र ने बुद्धि से सम्पन्न युवक शिल को युवराज पद देकर और अपने राज-काज को बंद करके सुख का भोग किया क्योंकि राज-काज सुख में बाधक ही होता है।

१९. आसक्ति उत्पन्न करने वाले विषयों से अतृप्त और सौन्दर्य विशेष के कारण विलासिनी स्त्रियों के भोग के लिये उपयुक्त उस पारियात्र को स्वयं संभोग में असमर्थ होते हुए भी विलासिनी स्त्रियों से ईर्ष्या करने वाली वृद्धावस्था ने व्यर्थ ही अपने वश में कर लिया।

२०. उसके उन्नाभ नाम से विख्यात उसके नाम के विपरीत गम्भीर नाभिरन्ध्र वाला पुत्र हुआ जो पंकजनाभ विष्णु के समान समस्त राजमण्डल का प्रधान था।

२१. उसके इन्द्र के समान प्रभावशाली, संग्राम में वज्र के समान गरजने वाला वज्रणाभ नामक पुत्र हुआ जो हीरे की खानों के भूषण धारण करनेवाली पृथ्वी का स्वामी बना।

२२. उस वज्रणाभ के अपने पुण्य से प्राप्त स्वर्ग में जाने पर खानोंसे निकले रत्नों का उपहार लेकर पृथ्वीने शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले शङ्खण नामक उसके पुत्र की सेवा की।

२३. उस राजा शङ्खण का अन्त होने पर सूर्य के समान तेजस्वी और अश्विनी कुमारों के समान सुन्दर रूप वाले उसके पुत्र ने जिसे इतिहास-वेत्ता व्युषिताश्व कहते हैं, पिता का पद प्राप्त किया।

२४. उस राजा व्युषिताश्व ने विश्वेश्वर महादेव की उपासना करके विश्वसह नामक पुत्र उत्पन्न किया जो उसका अपना ही स्वरूप था और जो समस्त विश्व का मित्र और विश्व भर का भरण-पोषण करने वाली समस्त पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ था।

अंशे हिरण्याक्षरिपोः स जाते हिरण्यनाभे तनये नयज्ञः ।
द्विषामसह्यः सुतरां तरूणां हिरण्यरेता इव सानिलोऽभूत् ॥ २५ ॥

पिता पितृणामनृणस्तमन्ते वयस्यनन्तानि सुखानि लिप्सुः ।
राजानुसाजानुविलम्बिबाहुं कृत्वा कृती वल्कलवान्बभूव ॥ २६ ॥

कौसल्य इत्युत्तरकोसलानां पत्युः पतङ्गान्वयभूषणस्य ।
तस्यौरसः सोमसुतः सुतोऽभून्नेत्रोत्सवः सोम इव द्वितीयः ॥ २७ ॥

यशोभिराब्रह्मसभं प्रकाशः स ब्रह्मभूयं गतिमाजगाम ।
ब्रह्मिष्ठमाधाय निजेऽधिकारे ब्रह्मिष्ठमेव स्वतनुप्रसूतम् ॥ २८ ॥

तस्मिन्कुलापीडनिभे विपीडं सम्यङ्महीं शासति शासनाङ्काम् ।
प्रजाश्चिरं सुप्रजसि प्रजेशे ननन्दुरानन्दजलाविलाक्ष्य : ॥ २९ ॥

पात्रीकृतात्मा गुरुसेवनेन स्पष्टाकृतिः पत्ररथेन्द्रकेतोः ।
तं पुत्रिणां पुष्करपत्रनेत्रः पुत्रः समारोपयदग्रसंख्याम् ॥३०॥

वंशस्थितिं वंशकरेण तेन सम्भाव्य भावी स सखा मघोनः ।
उपस्पृशन्स्पर्शनिवृत्तलौल्यस्त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप ॥ ३१ ॥ ॥

तस्य प्रभानिर्जितपुष्परागं पौष्यां तिथौ पुष्यमसूत पत्नी ।
तस्मिन्नपुष्यन्नुदिते समग्रां पुष्टिं जनाः पुष्य इव द्वितीये ॥ ३२ ॥

२५. वह नीतिज्ञ विश्वसह हिरण्याक्ष के शत्रु विष्णु के अंश हिरण्य-नाभ नामक पुत्र के उत्पन्न होने पर शत्रुओं के लिये अत्यन्त असह्य हो उठा जैसे वृक्षों के लिये हवायुक्त अग्नि ।

२६. पितरों का ऋण चुका देने के कारण सफलकृत्य पिता विश्व-सहने अन्तिम अवस्था में अनन्त सुख की प्राप्ति की इच्छा से जानुपर्यन्त लम्बी भुजा वाले हिरण्यनाभ को राजा बनाकर वन में जा वल्कल धारण किया ।

२७. उत्तर कोसल के राजा, सूर्यवंश के भूषण, यज्ञ करने वाले उस हिरण्यनाभ के दूसरे चन्द्रमा के समान कौसल्य नाम से प्रसिद्ध औरस पुत्र उत्पन्न हुआ ।

२८. ब्रह्मलोक तक अपने यश से प्रसिद्ध वह कौसल्य अपने ब्रह्मिष्ठ नामक औरस पुत्र को अपने राज्य का अधिकार देकर ब्रह्मत्व की गति को प्राप्त हुआ ।

२९. अपने कुल के शिरोमणि, अच्छी सन्तान वाले उस राजा ब्रह्मिष्ठ के पृथ्वी पर निर्बाध शासन में प्रजा आनन्द के आंसू बहा बहाकर दीर्घकाल तक आनन्द का अनुभव करती रही ।

३०. गुरुजनों की सेवा से अपने आपको योग्य बनाने वाले गरुडध्वज विष्णु के समान आकृति वाले और कमलपत्र के समान नेत्रवाले पुत्र ने राजा ब्रह्मिष्ठ को पुत्रवानों में अग्रणी बना दिया ।

३१. विषयों की ओर से तृष्णा रहित होने के कारण इन्द्र का मित्र बननेवाला वह ब्रह्मिष्ठ वंश को चलाने वाले उस पुत्र से कुल की प्रतिष्ठा की स्थापना करके त्रिपुष्कर नामक तीर्थ में स्नान आदि करते हुए देवत्व को प्राप्त हुआ ।

३२. उस पुत्र नामक राजा की पत्नी ने पौषी पूर्णिमा को अपने तेज से पुखराज की शोभा को जीतने वाले पुष्य नामक पुत्र को जन्म दिया । दूसरे पुष्य नक्षत्र के समान उसका उदय होने पर लोग सारी समृद्धियों से समृद्धिवान् हो गये ।

अंशे हिरण्याक्षरिपोः स जाते हिरण्यनाभे तनये नयज्ञः ।
द्विषामसह्यः सुतरां तरूणां हिरण्यरेता इव सानिलोऽभूत् ।। २५ ।।

पिता पितॄणामनृणस्तमन्ते वयस्यनन्तानि सुखानि लिप्सुः ।
राजानुमाजानुविलम्बिबाहुं कृत्वा कृती वल्कलवान्बभूव ।। २६ ।।

कौसल्य इत्युत्तरकोसलानां पत्युः पतङ्गान्वयभूषणस्य ।
तस्यौरसः सोमसुतः सुतोऽभून्नेत्रोत्सवः सोम इव द्वितीयः ।। २७ ।।

यशोभिराब्रह्मसभं प्रकाशः स ब्रह्मभूयं गतिमाजगाम ।
ब्रह्मिष्ठमाधाय निजेऽधिकारे ब्रह्मिष्ठमेव स्वतनुप्रसूतम् ।। २८ ।।

तस्मिन्कुलापीडनिभे विपीडं सम्यङ्महीं शासति शासनाङ्काम् ।
प्रजाश्चिरं सुप्रजसि प्रजेशे ननन्दुरानन्दजलाविलाक्ष्यः ।। २९ ।।

पात्रीकृतात्मा गुरुसेवनेन स्पष्टाकृतिः पत्ररथेन्द्रकेतोः ।
तं पुत्रिणां पुष्करपत्रनेत्रः पुत्रः समारोपयदग्रसंख्याम् ।।३०।।

वंशस्थितिं वंशकरेण तेन सम्भाव्य भावी स सखा मघोनः ।
उपस्पृशन्स्पर्शनिवृत्तलौल्यस्त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप ।। ३१ ।। ।।

तस्य प्रभानिर्जितपुष्परागं पौष्यां तिथौ पुष्यमसूत पत्नी ।
तस्मिन्नपुष्यन्नुदिते समग्रां पुष्टिं जनाः पुष्य इव द्वितीये ।। ३२ ।।

२५. वह नीतिज्ञ विश्वसह हिरण्याक्ष के शत्रु विष्णु के अंश हिरण्य-नाभ नामक पुत्र के उत्पन्न होने पर शत्रुओं के लिये अत्यन्त असह्य हो उठा जैसे वृक्षों के लिये हवायुक्त अग्नि ।

२६. पितरों का ऋण चुका देने के कारण सफलकृत्य पिता विश्व-सहने अन्तिम अवस्था में अनन्त सुख की प्राप्ति की इच्छा से जानुपर्यन्त लम्बी भुजा वाले हिरण्यनाभ को राजा बनाकर वन में जा वल्कल धारण किया ।

२७. उत्तर कोसल के राजा, सूर्यवंश के भूषण, यज्ञ करने वाले उस हिरण्यनाभ के दूसरे चन्द्रमा के समान कौसल्य नाम से प्रसिद्ध औरस पुत्र उत्पन्न हुआ ।

२८. ब्रह्मलोक तक अपने यश से प्रसिद्ध वह कौसल्य अपने ब्रह्मिष्ठ नामक औरस पुत्र को अपने राज्य का अधिकार देकर ब्रह्मत्व की गति को प्राप्त हुआ ।

२९. अपने कुल के शिरोमणि, अच्छी सन्तान वाले उस राजा ब्रह्मिष्ठ के पृथ्वी पर निर्बाध शासन में प्रजा आनन्द के आंसू बहा बहाकर दीर्घकाल तक आनन्द का अनुभव करती रही ।

३०. गुरुजनों की सेवा से अपने आपको योग्य बनाने वाले गरुडध्वज विष्णु के समान आकृति वाले और कमलपत्र के समान नेत्रवाले पुत्र ने राजा ब्रह्मिष्ठ को पुत्रवानों में अग्रणी बना दिया ।

३१. विषयों की ओर से तृष्णा रहित होने के कारण इन्द्र का मित्र बननेवाला वह ब्रह्मिष्ठ वंश को चलाने वाले उस पुत्र से कुल की प्रतिष्ठा की स्थापना करके त्रिपुष्कर नामक तीर्थ में स्नान आदि करते हुए देवत्व को प्राप्त हुआ ।

३२. उस पुत्र नामक राजा की पत्नी ने पौषी पूर्णिमा को अपने तेज से पुखराज की शोभा को जीतने वाले पुष्य नामक पुत्र को जन्म दिया । दूसरे पुष्य नक्षत्र के समान उसका उदय होने पर लोग सारी समृद्धियों से समृद्धिवान् हो गये ।

महीं महेच्छः परिकीर्य सूनौ मनीषिणे जैमिनयेऽर्पितात्मा ।
तस्मात्सयोगादधिगम्य योगमजन्मनेऽकल्पत जन्मभीरुः ।। ३३ ।।

ततः परं तत्प्रभवः प्रपेदे ध्रुवोपमेयो ध्रुवसन्धिरुर्वीम् ।
यस्मिन्नभूज्ज्यायसि सत्यसन्धे सन्धिर्ध्रुवः सन्नमतामरीणाम् ।। ३४ ।।

सुते शिशावेव सुदर्शनाख्ये दर्शात्ययेन्दुप्रियदर्शने सः ।
मृगायताक्षो मृगयाविहारी सिंहादवापद्विपदं नृसिंहः ।। ३५ ।।

स्वर्गामिनस्तस्य तमैकमत्यादमात्यवर्गः कुलतन्तुमेकम् ।
अनाथदीनाः प्रकृतीरवेक्ष्य साकेतनाथं विधिवच्चकार ।। ३६ ।।

नवेन्दुना तन्नभसोपमेयं शावैकसिंहेन च काननेन ।
रघोः कुलं कुड्मलपुष्करेण तोयेन चाप्रौढनरेन्द्रमासीत् ।। ३७ ।।

लोकेन भावी पितुरेव तुल्यः सम्भावितो मौलिपरिग्रहात्सः ।
दृष्टो हि वृण्वन्कलभप्रमाणोऽप्याशाः पुरोवातमवाप्य मेघः ।। ३८ ।।

तं राजवीथ्यामधिहस्ति यान्तमाधोरणालम्बितमग्र्यवेशम् ।
षड्वर्षदेशीयमपि प्रभुत्वात्प्रैक्षन्त पौराः पितृगौरवेण ।। ३९ ।।

कामं न सोऽकल्पत पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय ।
तेजोमहिम्ना पुनरावृतात्मा तद्व्याप चामीकरपिञ्जरेण ।। ४० ।।

३३. महान् अभिलाषा वाला संसार में बारंबार जन्म लेने के भय से भीरु वह राजा अपने पुत्र को पृथ्वी पर छोड़कर विद्वान ऋषि जैमिनी की शरण में चला गया। योग के ज्ञाता उन जैमिनी ऋषि से योग का ज्ञान प्राप्त करके वह जन्म के बन्धन से छूट गया।

३४. इसके अनन्तर उसके पुत्र ध्रुवसंधि ने पृथ्वी का भार ग्रहण किया। श्रेष्ठ और सत्यप्रतिज्ञ उस ध्रुवसंधि के साथ नम्र बने हुए शत्रुओं की पक्की संधि हुई।

३५. देखने में चन्द्रमा को भी तुच्छ बनाने वाले प्रियदर्शन सुदर्शन नामक अपने पुत्र के बचपन की अवस्था में ही मृगों के समान विशाल नेत्रवाला और पुरुषों में सिंह क समान राजा ध्रुवसंधि आखेट करते हुए सिंह के द्वारा मारा गया।

३६. स्वर्ग को जाने वाले उस ध्रुवसंधि के अमात्यों ने प्रजा को अनाथ और दीन देखकर कुल के एक मात्र अवलम्ब उस सुदर्शन को एक मत होकर अयोध्या का स्वामी बनाया।

३७. बालक राजा वाला रघु का कुल नये चन्द्रमा वाले आकाश एक मात्र सिंह के बच्चे वाले वन और कमल की कलियों वाले पानी से अपनी समता प्राप्त कर रहा था।

३८. उस बालक के मुकुट धारण करने पर लोगों ने सोचा कि अपने पिता के समान ही होगा क्योंकि यह देखा गया है कि हाथी के बच्चे के आकार का मेघ भी सामने की हवा को पाकर दिशाओं में फैल जाता है।

३९. राज मार्ग में हाथी पर बैठ कर जाते हुए महावत उसके लटकते हुए लम्बे वस्त्र को पकड़ लेता था। वह छः वर्ष का था फिर भी नगर निवासी उसके राजा होने के कारण उसे पिता के गौरव से ही देखते थे।

४०. वह राजा सुदर्शन अपने पैतृक सिंहासन को अपने आसन से भलीभांति भरने में समर्थ नहीं था परन्तु सोने के समान चमक वाले अपने तेज की महिमा से अपने आपको घेर कर उसने उसे भर दिया।

तस्मादधः किंचिदिवावतीर्णावसंस्पृशन्तौ तपनीयपीठम् ।
सालक्तकौ भूपतयः प्रसिद्धैर्ववन्दिरे मौलिभिरस्य पादौ ।। ४१ ।।

मणौ महानील इति प्रभावादल्पप्रमाणेऽपि यथा न मिथ्या ।
शब्दो महाराज इति प्रतीतस्तथैव तस्मिन्युयुजेऽर्भकेऽपि।। ४२ ।।

पर्यन्तसञ्चारितचामरस्य कपोललोलोभयकाकपक्षात् ।
तस्याननादुच्चरितो विवादश्चस्खाल वेलास्वपि नार्णवानाम् ।।४३।

निवृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे न्यस्तं ललाटे तिलकं दधानः ।
चेनैवशून्यान्यरिसुन्दरीणां मुखानि स स्मेरमुखश्चकार ।। ४४ ।। तेनै०

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः खेदं स यायादपि भूषणेन ।
नितान्तगुर्वीमपि सोऽनुभावाद् धुरं धरित्र्या बिभराम्बभूव ।। ४५ ।।

न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कार्त्स्न्येन गृह्णाति लिपिंन यावत् ।
सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात्फलान्युपायुङक्त स दण्डनीतेः ।। ४६।।

उरस्यपर्याप्तनिवेशभागा प्रौढीभविष्यन्तमुदीक्ष्यमाणा । क्ष
सञ्जातलज्जेव तमातपत्रच्छायाछलेनोपजुगूह लक्ष्मीः।। ४७ ।।

अनश्नुवानेन युगोपमानमबद्धमौर्वीकिणलाञ्छनेन
अस्पृष्टखड्गत्सरुणापि चासीद्रक्षावती तस्य भुजेन भूमिः ।। ४८ ।।

४१. उस सिंहासन से नीचे कुछ-कुछ लटकते हुए और सोने की पैर रखने की चौकी को न छू पाने वाले महावर से रंगे हुए राजा सुदर्शन के पैरों की राजाओं ने अपने उन्नत मुकुटों से वन्दना की ।

४२. छोटे आकार के मणि को उसके तेज के कारण महानील कहना जिस प्रकार व्यर्थ नहीं होता उसी प्रकार बालक होते हुए भी उस राजा सुदर्शन के लिये प्रसिद्ध महाराज शब्द अनुपयुक्त नहीं था ।

४३. जिसके दोनों और चंवर ढुल रहे थे उस सुदर्शन के गालों पर हिलते हुए दोनों लटों वाले मुख से निकली हुई बात समुद्रों के किनारों तक मान्य की गई ।

४४. अभिषेक के बाद सोने की पट्टी हटा देने के कारण शोभा युक्त ललाट पर तिलक धारण करने वाले और मुस्कुराहट भरे मुख वाले उस राजा ने शत्रुओं की स्त्रियों के मुखों को तिलक से शून्य कर दिया ।

४५. शिरीष के फूल से भी अधिक सुकुमार अंग वाला होने के कारण वह राजा भूषण धारण करने से भी थक जाता था किन्तु अपने प्रभाव से उसने नितान्त भारी होते हुए भी पृथ्वी के भार को धारण किया ।

४६. अक्षर पट्टिका पर लिखी गयी वर्णमाला को उसने भलीभांति सीखा भी नहीं था कि उसने विद्यावृद्ध लोगों के संसर्ग से समस्त दण्डशास्त्र के फलों का अनुभव कर लिया ।

४७. वह लक्ष्मी जिसके वक्षस्थल में पर्याप्त अवकाश नहीं था उस राजा को प्रौढ़ होते हुए देख कर मानों लज्जित हो गई और उसने छत्र की छाया के बहाने उसका आलिंगन कर लिया ।

४८. उसकी जिस भुजा ने जुए की समता प्राप्त नहीं की थी, जिसमें धनुष की डोरी के निशान कड़े नहीं हुए थे और जिसने तलवार की मूठ को छुआ नहीं था, भूमि की रक्षा की ।

नकेवलं गच्छति तस्य काले ययुः शरीरावयवा विवृद्धिम् ।
वंश्या गुणाः खल्वपि लोककान्ताः प्रारम्भसूक्ष्माः प्रथिमानमापुः ।।४९।।

स पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः स्मरन्निवाक्लेशकरो गुरूणाम् ।
तिस्रस्त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं जग्राह विद्याः प्रकृतीश्च पित्र्याः ।। ५० ।।

व्यूह्य स्थितः किञ्चिदिवोत्तरार्धमुन्नद्धचूडोऽञ्चितसव्यजानुः ।
आकर्णमाकृष्टसबाणधन्वा व्यरोचतास्त्रे स विनीयमानः ।। ५१ ।।

अथ मधु वनितानां नेत्रनिर्वेशनीयं
मनसिजतरुपुष्पं रागबन्धप्रवालम् ।
अकृतकविधि सर्वाङ्गीणमाकल्पजातं
विलसितपदमाद्यं यौवनं स प्रपेदे ।। ५२ ।।

प्रतिकृतिरचनाभ्यो दूतिसन्दर्शिताभ्यः
समधिकतररूपाः शुद्धसन्तानकामैः ।
अधिविविदुरमात्यैराहृतास्तस्य यूनः
प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवौ राजकन्याः ।। ५३ ।।

४९. समय बीतने पर केवल उसके शरीर के अंग ही नहीं बढ़े किन्तु उसके वंशानुगत, लोगों को प्रिय और आरम्भ में सूक्ष्म गुण भी निश्चय ही वृद्धि को प्राप्त हुए ।

५०. उस राजा सुदर्शन ने पहले जन्म में पारंगत की हुईं विद्या को मानो स्मरण करते हुए गुरुओं को किसी प्रकार का कष्ट न देते हुए धर्म, अर्थ और काम के त्रिवर्ग की प्राप्ति के साधन-स्वरूप त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन तीनों विद्याओं को अपने पिता के अमात्य, सुहृद और बल इन तीन प्रकृतियों के साथ ही अपने अधीन कर लिया ।

५१. वह अस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करते हुए अपने शरीर के ऊपरी भाग को कुछ फैला कर खड़े हुए, अपने बालों को उठा कर ऊपर बांधे, बाएं पैर के निचले भाग को सिकोड़े और कान तक खिंचे हुए बाण सहित धनुष के साथ शोभायमान हुआ ।

५२. तब सुदर्शन ने स्त्रियों के नेत्रों से ग्रहण करने योग्य मधु, अनुराग की शृंखला के कोपलों से युक्त कामदेव रूपी वृक्ष के फूल,पूर्णरूप से स्वाभाविक बने हुए आभूषणों के समूह और विलास के प्रथम चरण के समान युवावस्था में प्रवेश किया ।

५३. कन्याओं को देखने के लिये भेजी गई दूतियों द्वारा दिखाई गई राजकुमारियों के चित्रों की बनावट से भी अधिक सुन्दर रूपवाली राजकुमारियां जिन्हें अच्छी संतान की कामना से अमात्य लोग ले आये थे उस युवक के लक्ष्मी और पृथ्वी के साथ प्रथम परिणय हो जाने के बाद उनकी सपत्नी बनाई गई ।

एकोनविंशः सर्गः

अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः स्वे पदे तनयमग्नितेजसम्।
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी ।। १ ।।

तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकास्तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः ।
सौधवासमुटजेन विस्मृतः सञ्चिकाय फलनिस्पृहस्तपः ।। २ ।।

लब्धपालनविधौ न तत्सुतः खेदमाप गुरुणा हि मेदिनी ।
भोक्तुमेव भुजनिर्जितद्विषा न प्रसाधयितुमस्य कल्पिता ।। ३ ।।

सोऽधिकारमभिकः कुलोचितं काश्चन स्वयमवर्तयत्समाः ।
सन्निवेश्य सचिवेष्वतःपरं स्त्रीविधेयनवयौवनोऽभवत् ।। ४ ।।

कामिनीसहचरस्य कामिनस्तस्य वेश्मसु मृदङ्गनादिषु ।
ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिरुत्तरः पूर्वमुत्सवमपोहदुत्सवः ।। ५ ।।

इन्द्रियार्थपरिशून्यमक्षमः सोढुमेकमपि स क्षणान्तरम् ।
अन्तरेव विहरन्दिवानिशं न व्यपैक्षत समुत्सुकाः प्रजाः ।। ६ ।।

गौरवाद्यदपि जातु मन्त्रिणां दर्शनं प्रकृतिकाङ्क्षितं ददौ ।
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम् ।। ७ ।।

तं कृतप्रणतयोऽनुजीविनः कोमलात्मनखरागरूषितम् ।
भेजिरे नवदिवाकरातपस्पृष्टपङ्कजतुलाऽधिरोहणम् ।। ८ ।।

उन्नीसवां सर्ग

१. विद्वानों में अग्रणी और जितेन्द्रिय रघुवंशी सुदर्शन ने बुढ़ापे में अपने स्थान पर अग्नि के समान तेजस्वी अपने पुत्र अग्निवर्णका राज्याभिषेक करके नैमिषारण्य में अपना निवास बनाया।

२. उस नैमिषारण्य में तीर्थ के पानी से बावड़ियों, कुश बिछी हुई भूमि से शय्या तथा कुटियों से महल के निवास को भुलाकर और स्वर्ग आदि फल के प्रति इच्छारहित होकर उसने तप का संचय किया।

३. सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण ने प्राप्त राज्य के पालन में खेद का अनुभव नहीं किया क्योंकि अपनी भुजा से अपने शत्रुओं को जीतने वाले उसके पिता ने उसके द्वारा पृथ्वी को भोगने की कल्पना की थी, न कि उसको निष्कंटक बनाने की।

४. उस कामुक अग्नि वर्ण ने अपने कुल के लिये उचित प्रजापालन का कर्त्तव्य कुछ वर्षों तक स्वयं पूर्ण किया और उसके बाद उसका भार सचिवों पर डालकर उसने अपना नवयौवन स्त्रियों के अधीन कर दिया।

५. स्त्रियों के साथ रहने वाले उस विलासी के मृदंग की ध्वनि से पूर्ण महलों में अधिक समृद्धि वाले बाद के उत्सवों ने पहले के समृद्धियुक्त उत्सवों को पीछे हटा दिया।

६. वह अग्निवर्ण इन्द्रियों के विषय से रहित किसी भी एक क्षण को सहन करने में असमर्थ हो गया। दिन-रात भीतर ही विहार करने के कारण अपने दर्शन के लिये विशेष रूप से उत्सुक प्रजा की उसने चिंता न की।

७. कभी-कभी मन्त्रियों के कहने पर ध्यान देकर, यदि उसने प्रजा को अभिलषित दर्शन दिया भी, तो वह खिड़की के छिद्रों से लटकाये हुए पैर से ही होता था।

८. अपने कोमल नखों की लालिमा से प्रभायुक्त होने के कारण नवोदित सूर्य की धूप को स्पर्श करने वाले कमल से समता करने वाले उस चरण के उपासक उसे प्रणाम करके उसकी उपासना करते थे।

यौवनोन्नतविलासिनीस्तनक्षोभलोलकमलाश्च दीर्घिकाः ।
गूढमोहनगृहास्तदम्बुभिः स व्यगाहत विगाढमन्मथः ।। ९ ।।

तत्रसेकहृतलोचनाञ्जनैर्धौतरागपरिपाटलाधरैः ।
अङ्गनास्तमधिकं व्यलोभयन्नर्पितप्रकृतकान्तिभिर्मुखैः ।। १० ।।

घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः पानभूमिरचनाः प्रियासखः ।
अभ्यपद्यत स वासितासखः पुष्पिताः कमलिनीरिव द्विपः ।। ११ ।।

सातिरेकमदकारणं रहस्तेन दत्तमभिलेषुरङ्गनाः ।
ताभिरप्युपहृतं मुखासवं सोऽपिबद्बकुलतुल्यदोहदः ।। १२ ।।

अङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे ।
वल्लकी च हृदयङ्गमस्वना वल्गुवागपि च वामलोचना ।। १३ ।।

सस्वयं प्रहतपुष्करः कृती लोलमाल्यवलयो हरन्मनः ।
नर्तकीरभिनयातिलङ्घिनीः पार्श्ववर्तिषुगुरुष्वलज्जयत् ।। १४ ।।

चारु नृत्यविगमे च तन्मुखं स्वेदभिन्नतिलकं परिश्रमात् ।
प्रेमदत्तवदनानिलः पिबन्नत्यजीवदमरालकेश्वरौ ।। १५ ।।

तस्य सावरणदृष्टसन्धयः काम्यवस्तुषु नवेषु सङ्गिनः ।
वल्लभाभिरुपसृत्य चक्रिरे सामिभुक्तविषयाः समागमाः ।। १६ ।।

९. यौवन के कारण उभरे हुए विलासिनी स्त्रियों के स्तनों के आघात से चञ्चल कमलों वाली तथा अपने ही जल के नीचे छिपे हुए विलासगृहों वाली बावड़ियों में बढ़ी हुई कामवासना वाला वह अग्निवर्ण अवगाहन किया करता था।

१०. उन बावड़ियों में पानी के छींटे पड़ने से धुले हुए काजल वाले ऊपर से लगाये गये रंग के धुलने से बिना रंग के अधरों वाले और इस प्रकार स्वाभाविक शोभा को धारण करने वाले अपने मुखों से स्त्रियों ने उसे और भी अधिक लुभाया।

११. नाक को सुख देने वाली मदिरा की गन्ध से आकर्षक पानभूमि के मण्डपों में वह अपनी प्रिय स्त्रियों के साथ इस प्रकार गया जैसे हथनियों को साथ लेकर हाथी खिले हुए कमल वन में जाता है।

१२. मद की अधिकता के कारण एकान्त में स्त्रियों ने अग्निवर्ण द्वारा दी गई उसके मुंह में भरी मदिरा पीनी चाही और बकुल वृक्ष के समान उनके मुख में भरी मदिरा पीने की अभिलाषा से उसने भी उन स्त्रियों द्वारा दी गई मुंह में भरी मदिरा का पान किया।

१३. गोद में बारी-बारी से लेने योग्य हृदय को छूने वाली ध्वनि युक्त वीणा और मधुर कण्ठवाली स्त्री दोनों ने ही उसकी गोद के सूनेपन को दूर किया।

१४. उस कुशल अग्निवर्ण ने स्वयं ही मृदंग बजाकर अपनी चंचल फूल की मालाओं के कंकणों से उनका मन हरण करते हुए पास ही विद्यमान आचार्यों के सामने अभिनय में भूल करने वाली नर्तकियों को लज्जा में डाल दिया।

१५. सुन्दर नृत्य की समाप्ति पर परिश्रम से निकलने वाले पसीने से मिटे हुए तिलक वाले प्रेमपूर्वक प्रस्तुत किये गये उन स्त्रियों के मुख का पानकरते हुए वायु ने देवताओं के राजा इन्द्र और अलका नगरी के स्वामी कुबेर को भी अपने सौभाग्यपूर्ण जीवन से पराजित कर दिया।

१६. अपने विषय से हटकर नये विषयों में आसक्त होने वाले उस राजा के गुप्त और प्रकट रूप से सम्पन्न होने वाले मिलनों को उसकी प्रेमपात्र स्त्रियां पूर्ण रूप से तृप्तिदायक न होने देती थीं।

अङ्गुलीकिसलयाग्रतर्जनं भ्रूविभङ्गकुटिलं च वीक्षितम् ।
मेखलाभिरसकृच्च बन्धनं वञ्चयन्प्रणयिनीरवाप सः ।।१७।।

तेन दूतिविदितं निषेदुषा पृष्ठतः सुरतवाररात्रिषु ।
शुश्रुवे प्रियजनस्य कातरं विप्रलम्भपरिशङ्किनो वचः ।।१८।।

लौल्यमेत्य गृहिणीपरिग्रहान्नर्तकीष्वसुलभासु तद्वपुः ।
वर्तते स्म स कथञ्चिदालिखन्नङ्गुलीक्षरणसन्नवर्तिकः ।।१९।।

प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरादायताच्च मदनान्महीक्षितम् ।
निन्युरुत्सवविधिच्छलेन तं देव्य उज्झितरुषः कृतार्थताम् ।।२०।।

प्रातरेत्य परिभोगशोभिना दर्शनेन कृतखण्डनव्यथाः ।
प्राञ्जलिः प्रणयिनीः प्रसादयन्सोऽदुनोत्प्रणयमन्थरः पुनः ।।२१।।

स्वप्नकीर्तितविपक्षमङ्गनाः प्रत्यभैत्सुरवदन्त्य एव तम् ।
स्वच्छदान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधभिन्नवलयैर्विवर्तनैः ।।२२।।

क्लृप्तपुष्पशयनांल्लतागृहानेत्य दूतिकृतमार्गदर्शनः ।
अन्वभूत्परिजनाङ्गनारतं सोऽवरोधभयवेपथूत्तरम् ।।२३।।

नाम वल्लभजनस्य ते मया प्राप्य भाग्यमपि तस्य काङ्क्ष्यते ।
लोलुपं ननु मनो ममेति तं गोत्रविस्खलितमूचुरङ्गनाः ।।२४।।

१७. अपनी प्रेयसियों को धोखा देते हुए उस अग्निवर्ण ने उंगली रूपी कोपलों के अगले हिस्से की भर्त्सना, भौंहों को सिकोड़ने से तिरछी बनी हुई दृष्टि से देखने और करधनियों के बंधन का दंड भोगा ।

१८. मिलन के लिये निर्धारित तिथि की रात को दूतियों की जानकारी में पीछे छिपकर बैठे हुए वह अग्निवर्ण विरह की आशंका करने वाली अपनी प्रिया के कातर वचन सुना करता था ।

९. रानियों के बंधन के कारण नर्तकियों के सुलभ न होने पर वह सपतियों प्रति उत्सुकता से भर जाता था। उंगलियों में पसीना आ जाने से पेंसिल के छूट ज ाने के कारण वह कठिनाई से उनका चित्र बना पाता था ।

२०. अपने विषय में प्रेम के कारण गर्व का अनुभव करने वाली सपत्नियों के प्रति ईर्ष्या और बढ़ी हुई कामवासना के कारण रानियां अपना क्रोध छोड़कर उत्सव मनाने के बहाने उसे बुलाकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करती थीं ।

२१. वह अग्नि वर्ण प्रातःकाल लौटने पर पर-स्त्री-मिलन के लिये धारण किये गये अपने सुन्दर वेष के दर्शन से अपनी प्रणयिनी स्त्रियों के हृदय में खंडिता नायिका की व्यथा उत्पन्न करता था और हाथ जोड़कर प्रसन्न करके प्रेम निवेदन में अपनी शिथिलता से वह उन्हें फिर दुखी कर देता था ।

२२. स्वप्न में सपत्नी की चर्चा करते वाले उस अग्निवर्ण को स्त्रियां बिना कुछ कहे चादर के कोने पर अपने आंसू की बूंदें गिराकर, क्रोध से अपने कंगन तोड़कर और करवटें बदल-बदल कर बदले में भयभीत करती थीं।

२३. उस अग्निवर्ण ने, जिसे दूतियां मार्ग दिखाती थीं, फूल से सजी हुई शय्या वाले गृह में जाकर अन्तःपुर की स्त्रियों के भय से कांपते हुए परिचारिकाओं के साथ रतिसुख का अनुभव किया ।

२४. स्त्रियां भूल से दूसरी स्त्री का नाम लेने वाले राजा से कहतीं थीं कि मुझे तुम्हारे प्रियजन का नाम मिल गया। अब मैं उसके भाग्य की भी अभिलाषा करती हूं। मेरा मन बड़ा लालची है ।

चूर्णबभ्रु लुलितस्रगाकुलं छिन्नमेखलमलक्तकाङ्कितम् ।
उत्थितस्य शयनं विलासिनस्तस्य विभ्रमरतान्यपावृणोत् ॥२५॥

स स्वयं चरणरागमादधे योषितां न च तथा समाहितः ।
लोभ्यमाननयनः श्लथांशुकैर्मेखलागुणपदैर्नितम्बिभिः ॥२६॥

चुम्बने विपरिवर्तिताधरं हस्तरोधि रशनाविघट्टने ।
विघ्नितेच्छमपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्वधूरतम् ॥२७॥

दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीर्नर्मपूर्वमनुपृष्ठसंस्थितः ।
छायया स्मितमनोज्ञया वधूर्ह्रीनिमीलितमुखीश्चकार सः ॥२८॥

कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनं न्यस्तपादतलमग्रपादयोः ।
प्रार्थयन्त शयनोत्थितं प्रियास्तं निशाऽत्ययविसर्गचुम्बनम् ॥२९॥

प्रेक्ष्य दर्पणतलस्थमात्मनो राजवेषमतिशक्रशोभिनम् ।
पिप्रिये न स तथा यथा युवा व्यक्तलक्ष्म परिभोगमण्डनम् ॥३०॥

मित्रकृत्यमपदिश्य पार्श्वतः प्रस्थितं तमनवस्थितं प्रियाः ।
विद्म हे शठ! पलायनच्छलान्यञ्जसेति रुरुधुः कचग्रहैः ॥३१॥

तस्य निर्दयरतिश्रमालसाः कण्ठसूत्रमपदिश्य योषितः ।
अध्यशेरत बृहद्भुजान्तरं पीवरस्तनविलुप्तचन्दनम् ॥३२॥
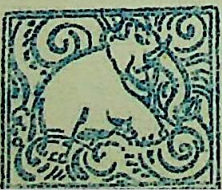
२५. अंगराग के चूर्ण से रंगीन, टूटी हुई मालाओं से भरी हुई, टूटी हुई करधनियों और महावर से अंकित उस विलासी की शय्या अनेक प्रकार के रतिविलास को स्पष्ट रूप से बताती थी।

२६. वह अग्निवर्ण स्वयं ही जब स्त्रियों के चरणों में महावर लगाता था तो उसके नेत्र उन सुन्दर नितम्बवाली स्त्रियों के प्रति लालच भरी दृष्टि से देखने लगते थे जिनके रेशमी वस्त्र खिसक जाते और वहां केवल करधनी की डोरी ही रह जाती थी। और इस प्रकार वह जैसा चाहिये, उस प्रकार से उस काम में अपना ध्यान नहीं लगा पाता था।

२७. स्त्रियों के साथ उसका वह विलास जिसमें चुम्बन में अधर हटा लिये जाते थे और करधनी को खोलते हुए हाथ रोक लिये जाते थे और इस प्रकार उसकी इच्छा में विघ्न पड़ जाता था, उसकी कामवासना को बढ़ाने वाला सिद्ध होता था।

२८. वह अग्निवर्ण दर्पणों में अपने विलास के चिह्न देखने वाली स्त्रियों के पीछे परिहासपूर्वक खड़ा हो जाता था जिससे उसका सुन्दर प्रतिबिम्ब वहां पड़ता था और स्त्रियों का मुंह लज्जा से झुक जाता था।

२९. उसकी प्रियायें गले में कोमल भुजा का बन्धन डाले हुए और पैरों के अगले भागों पर अपने तलुए रखे हुए सोकर उठने वाले उस राजा से रात बीतने पर विदाई के चुम्बन की प्रार्थना करती थीं।

३०. वह युवक अग्निवर्ण इन्द्र से भी बढ़-चढ़कर शोभा वाले अपने राजसी वेष को दर्पण में देखकर उतना प्रसन्न नहीं होता था, जितना स्पष्ट चिह्न वाले अपने रतिविलासी के वेष से होता था।

३१. मित्र के कार्य का बहाना करके दूसरे स्थान में जाने के लिये प्रस्थान करने के कारण उस अग्निवर्ण को उसकी प्रियायें सिर के बाल पकड़-कर रोक लेती थीं और कहती थीं कि हे शठ, तुम्हारे भागने के बहाने को हम खूब समझती हैं।

३२. निर्दय रतिविलास के श्रम से अलसाई हुई स्त्रियां अपने गले की जंजीर को उतारकर अलग रख देती थीं और अपने भारी स्तनों से पुंछे हुए चन्दन वाले उस अग्निवर्ण की विशाल भुजाओं के बीच सो जाती थीं।

सङ्गमाय निशि गूढचारिणं चारदूतिकथितं पुरोगताः ।
वञ्चयिष्यसि कुतस्तमोवृतः कामुकेति चकृषुस्तमङ्गनाः ।।३३।।

योषितामुडुपतेरिवार्चिषां स्पर्शनिर्वृतिमसाववाप्नुवन् ।
आरुरोह कुमुदाकरोपमां रात्रिजागरपरो दिवाशयः ।।३४।।

वेणुना दशनपीडिताधरा वीणया नखपदाङ्कितोरवः ।
शिल्पकार्य उभयेन वेजितास्तं विजिह्म नयनाव्यलोभयन् ।।३५।।

अङ्गसत्ववचनाश्रयं मिथः स्त्रीषु नृत्यमुपधाय दर्शयन् ।
स प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः सञ्जघर्ष सह मित्रसन्निधौ ।।३६।।

अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजस्तस्य नीपरजसाङ्गरागिणः ।
प्रावृषि प्रमदबर्हिणेष्वभूत्कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः ।।३७।।

विग्रहाच्च शयने पराङ्मुखीर्नानुनेतुमबलाः स तत्वरे ।
आचकाङ्क्ष घनशब्दविक्लवास्ता विवृत्य विशतीर्भुजान्तरम् ।।३८।।

कार्तिकीषु सवितानहर्म्यभाग्यामिनीषु ललिताङ्गनासखः ।
अन्वभुङ्क्त सुरतश्रमापहां मेघमुक्तविशदां स चन्द्रिकाम् ।।३९।।

सैकतं च सरयूं विवृण्वतीं श्रोणिबिम्बमिव हंसमेखलम् ।
स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं सौधजालविवरैर्व्यलोकयत् ।।४०।।

३३. दूसरी स्त्री से मिलने के लिये रात में गुप्त रूप से जाने वाले अग्निवर्ण को, जिसका पता गुप्तचर दूतियों ने स्त्रियों को दे रखा था, आगे आकर पकड़कर खींचने लगीं और कहने लगीं कि अंधेरे में छिपकर हे कामुक, तुम हमें कैसे धोखा दोगे।

३४. चांदनी के समान स्त्रियों के स्पर्श-सुख का आनन्द लेते हुए वह रात को जागता था और दिन को सोता था। इस प्रकार वह अग्निवर्ण कुमुद-समूह के समान हो गया।

३५. दांतों से कटे हुए अधर वाली और नख के चिह्नों से युक्त जांघों वाली संगीत कलाकार स्त्रियां बांसुरी और वीणा दोनों से ही पीड़ा का अनुभव करके उस अग्निवर्ण को जब टेढ़ी दृष्टि से देखतीं, तो वह मुग्ध हो जाता था।

३६. स्त्रियों को आंगिक, सात्विक और वाचिक नृत्य की शिक्षा देकर वह सहचरों के साथ नाट्य आदि के आचार्यों से होड़ करता था।

३७. वर्षा ऋतु में अपने गले में कुटज और अर्जुन की माला पहने और कदम्ब के केसर का अंगराग लगाये हुए मतवाले मयूरों से युक्त बनावटी पर्वतों पर उसने अनेक प्रकार के विहार किये।

३८. उस अग्निवर्ण ने प्रेमकलह के कारण सोने को तैयार न होने वाली स्त्रियों को मनाने में शीघ्रता न की। उसने चाहा कि मेघ के गर्जन से घबराकर अपने आप ही उसकी ओर अभिमुख हो वे उसकी भुजाओं के बंधन में आ जायें।

३९. कार्तिक की रातों में सुन्दर स्त्रियों के साथ उसने चंदोवा तने हुए भवनों में रतिविलास के श्रम को दूर करने वाली चांदनी का आनन्द लिया जो मेघ-मुक्त होने के कारण फैल गई थी।

४०. गोल नितम्बों के समान हंसों की करधनी वाले रेतीले तटों का दर्शन कराती हुई और उसकी प्रियाओं की चेष्टाओं का अनुकरण करने वाली सरयू को वह अपने महल के झरोखों के छेदों में से देखा करता था।

ममरैरगुरुधूपगन्धिभिर्व्यक्तहेमरशनैस्तमेकतः ।
जह्रुराग्रथनमोक्षलोलुपं हैमनैर्निवसनैः सुमध्यमाः ।।४१।।

अर्पितस्तिमितदीपदृष्टयो गर्भवेश्मसु निवातकुक्षिषु ।
तस्य सर्वसुरतान्तरक्षमाः साक्षितां शिशिररात्रयो ययुः ।।४२।।

दक्षिणेन पवनेन सम्भृतं प्रेक्ष्य चूतकुसुमं सपल्लवम् ।
अन्वनैषुरवधूतविग्रहास्तं दुरुत्सहवियोगमङ्गनाः ।।४३।।

ताः स्वमङ्कमधिरोप्य दोलया प्रेङ्खयन्परिजनापविद्धया ।
मुक्तरज्जु निबिडं भयच्छलात्कण्ठबन्धनमवाप बाहुभिः ।।४४।।

तं पयोधरनिषिक्तचन्दनैर्मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः ।
ग्रीष्मवेषविधिभिः सिषेविरे श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः प्रियाः ।।४५।।

यत्स लग्नसहकारमासवं रक्तपाटलसमागमं पपौ ।
तेन तस्य मधुनिर्गमात्कृशश्चित्तयोनिरभवत्पुनर्नवः ।।४६।।

एवमिन्द्रियसुखानि निर्विशन्नन्यकार्यविमुखः स पार्थिवः ।
आत्मलक्षणनिवेदितानृतूनत्यवाहयदनङ्गवाहितः ।।४७।।

तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः ।
आमयस्तु रतिरागसम्भवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत् ।।४८।।

४१. कलप वाले होने के कारण मर्मर शब्द वाले, अगरु के धूप से सुगन्धित और स्पष्ट दिखाई देने वाली सोने की करधनियों वाले अपने हेमन्ती परिधानों से सुन्दर कमर वाली स्त्रियों ने उस राजा को, जो उनके वस्त्रों के चुनाव की गांठों को खोलने के लिये लोलुप हो रहा था, एक ओर से अपनी ओर आकृष्ट किया ।

४२. जिनका भीतरी भाग हवा से रहित था, ऐसे भीतरी गृहों में सभी प्रकार की रति क्रीड़ाओं के भेदों के लिये उपयुक्त तथा अपनी दीपक रूपी निस्तब्ध दृष्टि डालकर शिशिर की रातें साक्षी बन गई ।

४३. मलयानिल द्वारा खिलाई गई पल्लव सहित आम की मंजरी को देखकर स्त्रियों ने अपना विरोध छोड़ दिया और कठिनाई से सहे जाने वाले वियोग से पीड़ित उस राजा को मनाने गई ।

४४. सेवकों द्वारा झुलाये गये झूले में उसकी गोद में बैठकर झूलती हुई स्त्रियों ने भय के बहाने रस्सी छोड़ दी और उनकी भुजाएं उसके गले का बंधन बन गई ।

४५. गरमी के अनुकूल वेष धारण करने वाली उसकी प्रिय स्त्रियों ने अपने स्तनों में चन्दन लगाकर, मोती को गूंथकर बनाये गये सुन्दर आभूषणों को धारण करके और नितम्ब तक लटकने वाली करधनियां पहनकर उसकी सेवा की ।

४६. उस अग्निवर्ण ने आम की मंजरी से सुवासित तथा लाल गुलाब के मिश्रण वाली मदिरा का पान किया जिससे वसन्त के चले जाने से दुर्बल हुआ कामदेव फिर नया हो उठा ।

४७ इस प्रकार उस राजा ने कामदेव से प्रेरित हो तथा दूसरे कार्यों से विमुख होकर इन्द्रिय-सुख का अनुभव करते हुए अपने लक्षणों से अपनी सूचना देनेबाली ऋतुओं को व्यतीत किया ।

४८. उसके प्रभाव के कारण उसके व्यसनों में बेसुध होते हुए भी दूसरे राजा उस पर आक्रमण न कर सके, किन्तु रतिराग से होनेवाले रोग ने उसे उसी तरह घुला दिया, जैसे दक्ष के शाप ने चन्द्रमा को घुला दिया था ।

दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्सङ्गवस्तु भिषजामनाश्रवः ।
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते ।।४६।।

तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना ।
राजयक्ष्मपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम् ।।५०।।

व्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा पङ्कशेषमिव घर्मपल्वलम् ।
राज्ञि तत्कुलमभूत्क्षयातुरे वामनार्चिरिव दीपभाजनम् ।।५१।।

बाढमेष दिवसेषु पार्थिवः कर्म साधयति पुत्रजन्मने ।
इत्यदर्शितरुजोऽस्य मन्त्रिणः शश्वदूचुरघशङ्किनीः प्रजाः ।।५२।।

स त्वनेकवनितासखोऽपि सन्पावनीमनवलोक्य सन्ततिम् ।
वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं न प्रदीप इव वायुमत्यगात् ।।५३।।

तं गृहोपवन एव सङ्गताः पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा ।
रोगशान्तिमपदिश्य मन्त्रिणः सम्भृते शिखिनि गूढमादधुः ।।५४।।

तैः कृतप्रकृतिमुख्यसंङ्ग्रहैराशु तस्य सहधर्मचारिणी ।
साधु दृष्टशुभगर्भलक्षणा प्रत्यपद्यत नराधिपश्रियम् ।।५५।।

तस्यास्तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोका-
दुष्णैर्विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तः ।
निर्वापितः कनककुम्भमुखोज्झितेन
वंशाभिषेकविधिना शिशिरेण गर्भः ।।५६।।

तं भावार्थम् प्रसवसमयाकांक्षिणीनां प्रजाना-
मन्तर्गूढं क्षितिरिव नभोबीजमुष्टिं दधाना ।
मौलैः सार्धं स्थविरसचिवैर्हेमसिंहासनस्था
राज्ञी राज्यं विधिवदशिषद्भर्तुरव्याहताज्ञा ।।५७।।

४९. वैद्यों की बात न सुनने वाले उस राजा ने व्यसन की उस वस्तु का त्याग नहीं किया जिसका दोष वह जान चुका था। क्योंकि आनन्ददायक विषयों से इन्द्रियों को अलग करना कठिन होता है।

५०. राजयक्ष्मा से होनेवाली उसकी दुर्बलता, जिसमें उसका मुख पीला पड़ गया था, वह थोड़े से आभूषण धारण करने लगा था और उसकी आवाज धीमी पड़ गई थी, विरही की अवस्था से समता करने लगी।

५१. राजा के क्षयरोग से पीड़ित होने पर रघु का कुल पिछली कलाओं में स्थित चन्द्रमा वाले आकाश के समान, केवल कीचड़ शेष बचे हुए गरमी के दिनों के तालाब के समान और छोटी सी लौ वाले दीपक के समान हो गया।

५२. राजा के सम्बन्ध में अशुभ की आशंका करने वाली प्रजा से मंत्री लोग राजा के रोग को छिपाकर यह कहा करते थे कि सचमुच राजा इन दिनों पुत्रोत्पत्ति के लिये अनुष्ठान कर रहे हैं।

५३. वह अग्निवर्ण अनेक स्त्रियों से युक्त होकर भी पवित्र करने वाली संतति का मुंह देखे बिना ही वैद्य के प्रयत्न से दबाये जाने वाले रोग पर किसी प्रकार काबू न पा सका, जैसे वायु पर दीपक।

५४. अन्त्येष्ठि की विधि के ज्ञाता पुरोहितों के साथ मन्त्रियों ने राजभवन के बगीचे में ही रोग की शान्ति के बहाने उस अग्निवर्ण को गुप्त रूप से जलती हुई चिता में रख दिया।

५५. मन्त्रियों ने शीघ्र ही प्रधान नागरिकों की सभा एकत्र की और राजा की धर्मपत्नी में शुभ गर्भ का लक्षण देख उसे ही रालज्यक्ष्मी का अधिकारी बना दिया।

५६. इस प्रकार राजा की मृत्यु रूपी विपत्ति से होने वाले शोक से गरम हुए आंसुओं से पहले तपा हुआ गर्भ सोने के घड़ों के मुखों से गिरे हुए शीतल अभिषेक की क्रिया से अभिषिक्त हुआ।

५७. सन्तान की उत्पत्ति की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने वाली प्रजा की भावना की रक्षा के लिये सावन के मुट्ठी भर बीज को भीतर छिपाये पृथ्वी के समान उस गर्भ को धारण करती हुई सोने के सिंहासन पर बैठी और अनवरुद्ध आज्ञावाली रानी ने कुल क्रमागत बूढ़े मन्त्रियों के साथ अपने पति राज्य पर विधिपूर्वक शासन किया।